महाभारत के पात्र

[चौथा भाग]

लेखक
आचाय नानाभाई भट्ट
अनुवादक
श्री शंकरलाल वर्मा
श्रीमती मंजुल अरोड़ा

हिंदी मंदिर, प्रयाग

हिंदी मंदिर, प्रयाग के लिए
नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर
द्वारा प्रकाशित,

पहली बार १९४७
मूल्य
पौने तीन रुपये

मुद्रक
अमरचन्द्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली, ९१-१९४७

पात्र-परिचय

१—द्रोण १—४१

१. द्रोण की गृहस्थी; २. मैत्री : वैर, ३. गुरु-दक्षिणा; ४. युद्ध-सभा में, ५ दुर्योधन के वाक्-प्रहार; ६. द्रोण-वध

२—अश्वत्थामा ४२—७३

१. संहार की प्रतिज्ञा; २. वैर की अग्नि; ३. अंधेरी रात में; ४. धुंधवाती आग

३—भीष्म १—५६

१. गगापुत्र; २. पिता की चिकित्सा; ३. भीष्म-प्रतिज्ञा, ४. वंश की रक्षा का प्रश्न; ५. विकर्ण की नज़र में; ६. दुर्योधन की सीख; ७. सेनापति के पदपर; ८. युधिष्ठिर को आशीर्वाद; ९. कुरुक्षेत्र का दसवां दिन; १०.पितामह बाणशैया पर।

४—धृतराष्ट्र ६०—६२

१. जीवन का निचोड़।

५—श्रीकृष्ण ६३—१७१

१. पाण्डवों के सलाहकार; २. जरासंध-वध; ३. शिशुपाल-वध; ४. द्वैत वन में; ५. संधि की बातें; ६. संधि या युद्ध; ७. अर्जुन का समाधान ८. भीष्म की दृष्टि से; ९. अवतार कृत्य; १०. परीक्षित का जन्म; ११. यादवस्थली।

द्रोण

: १ :

द्रोण की गृहस्थी

द्रोण भरद्वाज मुनि के पुत्र थे और उनकी पत्नी का नाम कृपी था। कृपी शरद्वान् मुनि की कन्या और कृपाचार्य की बहन थी। द्रोण और कृपी का पुत्र अश्वत्थामा था।

द्रोण की गृहस्थी अत्यन्त गरीब थी। जीवन की मामूली-से-मामूली बातों तक की उनके घर कठिनाई रहती थी। एक बार शाम के समय द्रोण जब घर पहुचे तब कृपी बाहर बरामदे मे बैठी थी। उसके बाल बिखरे हुए थे, मुह उतर रहा था, रोते-रोते आंखे सूज गई थीं और पास ही फटी-टूटी गद्दी पर अश्वत्थामा सो रहा था।

"कृपी! आज अश्वत्थामा को कुछ होगया है क्या? अभी से कैसे सो गया?" बरामदे मे घुसते ही द्रोण ने पूछा।

"न सोये तो जाय कहां? मेरे गर्भ से पैदा हुआ है इसलिए नींद आई हो तो, न आई हो तो, सोना ही पड़ता है।" कृपी ने टेढी नजर से देखते हुए जवाब दिया।

"कृपी! आखिर हुआ क्या है, यह तो बता। बालक के साथ किसी का कुछ लड़ाई-झगड़ा हो गया है क्या?" द्रोण ने सहज दु:खी स्वर से पूछा।

"लडाई-झगडा करने जैसा होने पायगा तब न! उससे

पहले वह मेरे हाथों ही समाप्त न हो जायगा।" कृपी ने हाथ झड़काते हुए जवाब दिया।

"लेकिन बात क्या हुई है, यह भी बतायगी या नहीं ?. क्या किसी ने इसे मारा है ?" द्रोण ने पूछा।

"और कौन मारेगा ? मारने वाली अकेली मैं ही तो हूं। तुम्हारे लिए तो तुम्हारी अस्त्र-विद्या भली और तुम भले। बच्चे को मुझे सौंपकर चलते बनते हो, फिर यह जानने की जरूरत ही नहीं रहती कि इसने कुछ खाया-पिया है या नहीं। इसकी जरूरत ही क्या है ? आखिर तुम लोग शादी करते ही क्यों हो और क्यों परमात्मा तुम्हे सन्तान देता है। बेचारे कितने लोग सन्तान के लिए तरसते रहते हैं!" कृपी आखों मे आंसू भरकर द्रोण की तरफ देखती हुई कहने लगी।

"यह सब तो ठीक।" द्रोण बोले। "लेकिन हुआ क्या है, यह तो बता।"

"देखो," कृपी हाथ का इशारा करते हुए कहने लगी। "मुहल्ले के सभी बालक दूध पी-पीकर खेलने के लिए आये। उन्होंने अश्वत्थामा को चिढ़ाना शुरू किया, इसलिए यह भी 'दूध-दूध' करता हुआ मेरे पास आया।"

"अच्छा, फिर ?"

"फिर क्या, अपने घर तो दूध की मथनिएं भर देने वाली गायें तुमने बांध रखी हैं न ! इसलिए अश्वत्थामा एक बड़ा-सा कटोरा भरा दूध गटगट पी गया !" द्रोण की ओर दृष्टिपात करते हुए कृपी ने कहा।

द्रोण सुनते रहे, लेकिन कुछ बोले नहीं। इसलिए कृपी ने अपनी बात आगे बढ़ाई "और थोड़ी ही देर में रोते-रोते वह वापस आया और कहने लगा, "सभी लड़के मुझसे कहते है कि तेरे घर दूध कहांसे आया ? देख, तेरे मुंह पर तो आटा लगा हुआ है।

तेरी मा ने तुझे आटा घोलकर पिला दिया मालूम होता है।" यह कहकर वह मुझे मारने लगा। लेकिन मैं दूध कहा से देती ? वह खूब रोने और मचलने लगा,इसपर मुझे गुस्सा आगया और मैंने उसे खूब मारा। आखिर गगाने छुडाया। तभी का वह सो रहाहै।

"कृपी !" आखों मे आंसू भरकर द्रोण बोले—"यह तुमने बहुत बुरा किया। तुमने इसे मारा क्यों ? शान्ति से समझाना चाहिए था।"

"किस मुंह से ऐसे कहते हो ?" कृपी ने आवेश मे भर कर कहा। "तुम्हे तो सिर्फ मु हसे कहना ही आता है। किसी दिन यह भी सोचते हो कि तुमने विवाह किया है और घरमें और भी दो जीव बैठे हैं ?"

"कृपी, कृपी !" द्रोण बोले "तू क्या कह रही है, ज़रा तो समझकर बोल। क्या तुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भरद्वाज का पुत्र मूर्ख है ?"

"अवश्य प्रतीत होता है।" जोश मे आकर कृपी ने कहा। "तुम लोगों को विवाह करना ही नहीं चाहिए। जिसे सच्चा शुद्ध ब्राह्मण-जीवन बिताना है और ससार की सेवा कर के कल्याण साधन करना है उसे गृहस्थी के जजाल में पड़ना ही नहीं चाहिए। विवाह करके तुम खुद झंझट मे पड़ते हो और साथ मे स्त्रियों को भी डालते हो और फिर सन्तान होने पर ब्राह्मण-जीवन की बातें करते-करते जजाल से मुक्त होने का दावा करके भागते फिरते हो !"

"कृपी ! ब्राह्मण-जीवन पर ऐसे प्रहार सुनता हूँ तो मेरे भीतर मे ज्वाला भभक उठती है।" दीन स्वर में द्रोण ने कहा।

"पतिदेव ! प्रहार तो तुम जैसों पर करती हू। ब्राह्मण-जीवन ऐसा उभय-भ्रष्ट नहीं होता, यह मैं जानती हू।" कृपी ने कहा।

द्रोण बोले "कृपी ! अग्निवेश के आश्रम से निकलते समय कैसे-

कैसे स्वप्न रचे थे, इसका तुझे पता नहीं। सोचा था, जन्म-भर ब्रह्मचारी रहूंगा और यदि विवाह करना ही पड़ा तो उच्च आध्यात्मिक विवाह कर जीवन अखिल विश्व की सेवा में बिताऊंगा। लेकिन मेरी यह आकांक्षा आकांक्षा-मात्र रह गई और इस घर मे द्रोण को आज यह व्यवहार देखना पड रहा है।"

"मैं भी यही कहती हूँ।" कृपी जरा शान्त होकर बोली—"विद्यार्थी अवस्था मे पोषित मनोहर स्वप्नों को जब हाड़-मांस से बने मानवों की दुनिया में चरितार्थ करने का अवसर आने पर ही तो मनुष्य की खरी कसौटी होती है। तुमने स्वप्न रचे होंगे, लेकिन तुम्हारा मन इतना दुर्बल है कि संसार की अटपटी घटनाओं मे तुम चक्कर खा गये। मैं तो छोटी-सी बात जानती हूं। तुमने गृहस्थी रची और सन्तान पैदा हुई। इसलिए सन्तान को देखते हुए जीवन के साधन पूरे करने ही चाहिए। गृहस्थी बसाते समय तो वैराग्य पैदा न हो और सन्तान के पोषण का प्रश्न सामने आते ही वैराग्य की धुन सवार हो इसी का ही नाम तो ढोंग और अधर्म है। अध्यात्मका रग चढ़ा हो तो सन्तानोत्पत्ति बन्द करो। यदि यह न कर सकते हो तो फिर सन्तान के भरण-पोषण जितनी कमाई तो अवश्य करनी ही चाहिए। मेरी अपनी बुद्धि के अनुसार तो जो व्यक्ति इतनी साधारण बात भी नहीं करता, वह पाप करता है।"

"तो मैं भी पाप करता हू ?" द्रोण ने पूछा।

"अवश्य ! तुम्हारा पाप वेश बदल कर आता है। इसलिए तुम्हे प्रतीत न होता हो तो बात दूसरी है।" कृपी ने जवाब दिया।

"कृपी ! तेरे शब्द तीर की तरह हृदय के आर-पार हो जाते हैं।" द्रोणाचार्य ने कहा—"घडी-भर तो ऐसा लगता है कि कहीं जाकर अपनी विद्या के प्रताप से एकाध देश का राज्य हस्तगत

कर लूं, जिससे कि तुम्हारी यह रोज-रोज की चख-चख मिट जाय। लेकिन ज्यों ही भरद्वाज मुनि का जीवन आंखों के सामना आता है त्यों ही हृदय मे एक अजोब शान्ति का अनुभव होता है और मन करता है कि जीवन-भर आश्रम में विद्यार्थियों को ही पढ़ाता रहू।"

"दूसरी बात यह है कि तुमने जो अपना यह पड़ौस ढूंढा है यह भी मुझे तो तुम्हारी भूल ही मालूम होती है।" कृपी ने जरा शान्त होकर कहा—"हमे ब्राह्मण रहना हो और बच्चों को भी ब्राह्मण रखना हो तो यह पड़ौस निभ नहीं सकता। यहा तो पैसे वाले रहते हैं। इसलिए सारे वातावरण में धनिक जीवन की रग-रेलिया मची रहती है। किसी को खुद मेहनत करनी नहीं पड़ती। दूसरे के पसीने की कमाई से पैदा हुए पैसे निगले जाते हैं। नित्य भाति-भाति के मेवा-मिष्टान्न उड़ाना, कला और धर्म के नाम पर स्वच्छन्दता से इन्द्रियों के भोग भोगना, बिना हाथ पैर हिलाये बैठे रहना और बुद्धि-विलास के नाम पर निकम्मी चर्चाएं करना, यह यहा का वातावरण है। ऐसे वातावरण में ब्राह्मण-बालकों के मन विचलित न हो जाय तो क्या हो? माल-दारों के बालक रोज नये-नये खिलौने लेते है, इसलिए अपने बालकों का मन भी चलता है। बालक कुछ समझते थोड़े ही हैं। असल मे तो ये लोग अच्छे-बुरे जीवन के ऐसे गलत मान-दण्ड सामने खड़े कर देते है कि हम बडी मुसीबत में पड़ जाते हैं। पड़ौसी होने के कारण न तो उनसे बिलकुल अलग रहा जा सकता है, न उनमें मिला ही जा सकता है। ऐसी हालतमें अपना अश्वत्थामा बिगडेगा ही, यह निश्चय जानो।"

"यह तो सब फुरसत के समय विचार करके तय करेंगे। दुनिया में इस तरह अकेले हम ही अच्छे और दूसरे सब निकम्मे हैं, यह सोचकर क्या जंगल मे रहा जा सकता है?

फिर भी तू जो कहती है वह ध्यान देने योग्य तो है ही। लेकिन अभी हमे क्या करना है ?" द्रोण ने कहा।

कृपी ने जवाब मे कहा—"देखो, मै तो लडके को मार कर रो ली और रोने के बाद अन्त मे मैंने मन मे यह निश्चय कर लिया कि जब तक एक गाय घर के आंगन में नहीं बध जाती तब तक चैन न लू गी। मेरा यह दृढ़ निश्चय है। इसलिए तुम गाय के बारे में सोच लो।"

द्रोण ने कहा—"अश्वत्थामा के लिए गाय कोई बडी बात नहीं है, लेकिन प्रश्न यह है कि तत्काल किसके पास से पाई जाय। कृपी! तेरी यह बात सुनने के बाद एक बात तो मेरे मन में बैठ गई है, वह यह कि मेरा अश्वत्थामा दूसरे लड़कों के साथ खेलते हुए नीचा देखे और झिझके यह हो नही सकता। मन मे ऐसा लगता है कि इस लड़के के लिए मुझे अपनी सब विद्या को भी बाजार में बेचना पडे तो बेच डालूं।"

"तुम कई बार मेरे सामने पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद की बात करते रहते हो। तब क्या यह राजा तुम्हे एक भी गाय नहीं दे सकता ?" कृपी ने कहा।

"कृपी! द्रुपद का तो मेरे मन में कभी से खयाल है।" द्रोण ने उत्साहपूर्वक कहा—"कृपी, मैं इस द्रुपद की तुझसे क्या बात करूं ? अग्निवेश के आश्रम मे विद्याभ्यास के दिनों में हमने जीवन के जो आनन्द लूटे, उनका जब खयाल करता हू तो आज भी रोमाञ्च हो आता है। द्रुपद तो द्रुपद ही है। हमारे शरीर दो हैं, लेकिन प्राण एक ही हैं। आश्रम के वृक्षों के नीचे बैठकर हम घण्टों बात करते और रात-की-रात बीत जाती। नदी के किनारे चादनी में चक्कर काटते हुए जीवन के अनेक प्रश्नों पर घौड़े दौडाते थे। गुरुदेव अग्निवेश की सेवा के विषय मे आपस में कैसी होड़ा-होड़ रहती थी! जब हम आश्रम से जुदा

हुए तो दोनों रो पडे। द्रुपद ने मुझे कस कर छाती से लगा लिया। हमारा रास्ता पलटने तक जब तक द्रुपद दिखाई देते रहे मैं उन्हे देखता ही रहा और द्रुपद बार-बार घूम कर मुझसे कहते रहे, "द्रोण, मैं राजा बनूंगा।तब तुझे कुछ कष्ट नहीं रहेगा।"

"इसीलिए तो मैं कहती हूँ कि तुम द्रुपद राजा के पास जाओ और एक गाय माग लाओ।" कृपी ने कहा।

द्रोण जरा सोच में पड गये और कुछ देर बाद बोले—"ठीक है, मैं वहां जाऊंगा। लेकिन कृपी, तुम भी साथ चलो तो कैसा हो?"

"मै! मैं वहा जाकर क्या करूंगी? तुम्हारे मित्र है तुम्हीं हो आओ।" कृपी ने जवाब दिया।

"कृपी, मेरी और द्रुपद की मैत्री क्या वस्तु है, इसका तुझे पता नहीं। मै गया और द्रोण को यह मालूम हुआ कि मैं अकेला ही आया हू तो वह मुझे कितना उलाहना देगा, इसका भी तुझे ध्यान है। हम कई वर्षों बाद मिलेगे, इसलिए द्रुपद मेरे गले से झूम जायगा और यदि अकेला हुआ तो बचपन की बातें याद करके एक-दो घूंसे भी जमा बैठे तो आश्चर्य नहीं। कृपी, यदि इस समय मेरे साथ नहीं चलोगी तो वहा पहुच कर मुझे तुझे बुलाने के लिए फिर वापस आना पड़ेगा, अथवा किसी को भेजना पड़ेगा। इससे तो अच्छा यही है कि तू मेरे साथ ही चल।" द्रोण ने कहा।

"मेरी और इस छोटे बालक की कहां गुजर होगी?" कृपी ने पूछा।

"इसमे गुजरकी बात ही क्या है? क्या द्रोण के घर रोटियों की कमी है?" द्रोण ने जवाब देते हुए कहा—"तुझे पता नहीं, द्रुपद तो तत्काल तुझे अपनी रानिया के पास ले जायगा, अश्वत्थामा उसके बालकों के साथ खेलेगा और तुझे पता लग जायगा

कि द्रोण की एक बडे राजा के साथ कैसी मित्रता है। इसलिए तू मेरे साथ अवश्य चल।"

"मेरा मन नहीं मानता। तुम जाओ और गाय ले आओ। वहां पहुचने पर द्रुपद बहुत आग्रह करे और मेरे बिना काम चलता ही न हो तो मुझे बुला लेना।" कृपी ने कहा।

"फिर क्या बुलाना ? अपने घर जाना और द्रुपद के यहां जाना बराबर ही है। इसमे तो द्रुपद के आग्रह की भी जरूरत नहीं है। मैं आग्रह की प्रतीक्षा करूं, मैत्री की दृष्टि से यह उचित नहीं कहा जा सकता। तू साथ ही चल।" द्रोण ने आग्रह-पूर्वक कहा।

"नहीं-नहीं, मुझ से व्यर्थ ही आग्रह न करो। मेरे मन में उत्साह नहीं होता।" कृपी ने जवाब दिया। "द्रुपद राजा कहलाता है। युवाकाल में की हुई मैत्री हवा मे उड़ भी सकती है। वहां सभी तरह का राजसी ठाठ-बाट होगा। राजमहल, रानियां, विविध भोग-विलास, राजकुमारों की चहल-पहल और नौकर-चाकरों का जमघट। तुम्हारे लिए तो यह ठीक है कि द्रुपद तुम्हारा मित्र है, इसलिए तुम्हे कुछ अटपटापन न लगेगा, लेकिन रानिया मुझे किस लिए बुलायंगी ! फिर हम ठहरे गरीब गृहस्थी के रानियों की रीति-रिवाज जानते नहीं, इसलिए उन्हे व्यर्थ ही मुंह मरोड़ना पडे, इसलिए मेरे लिए तो मेरा घर ही भला। अश्वत्थामा भी गड़बड़ करता रहता है, इसलिए मैं तो कहीं भी साथ में नहीं चलना चाहती।"

"नहीं-नहीं, तुझे चलना ही पड़ेगा।" द्रोण ने निश्चयपूर्वक कहा। मेरे घर तो तुझे जीवन को जीवन समझने का अवसर न मिला, लेकिन मित्र के यहां तो वह अनुभव कर सकेगी। सिर्फ दो ही दिन की तो बात है। तेरे भाई कृपाचार्य हस्तिनापुर रहते हैं, राजाओं की रीतिनीति का उन्हे तो पता होगा ही।

इसलिए कल सुबह हमें निश्चित रूप से वहां चलना है। उठ, अब अश्वत्थामा को जगा, अपन भोजन कर ले।"

अश्वत्थामा को जगाकर तीनों जने भोजन करने बैठे।

: २ :

मैत्री : वैर

"महाराज द्रुपद की जय हो ? जय हो।" द्रुपद के महल में घुसते ही द्रोण ने आशीर्वचन कहे और महल मे प्रवेश किया।

"महाराज, आप किस लिए पधारे हैं ?" द्रुपद के एक अंगरक्षक ने नम्रतापूर्वक पूछा।

"द्रुपदराज मुझे अच्छी तरह जानते हैं। मुझे उनसे बातें करनी हैं। इसलिए दूर से चलकर यहा आया हू।" द्रोण ने जवाब दिया।

अंगरक्षक बोला, "महाराज, द्रुपदराज की तबियत ठीक नहीं है, इसलिए आपसे मिल नहीं सकेंगे। आपका जो काम हो, वह मुझसे कहिए।"

द्रोण ने कहा, "पाञ्चालराज की तबियत ठीक नहीं है ? तब तो मुझे उनसे जरूर मिलना चाहिए।"

अंगरक्षक ने उत्तर दिया, "लेकिन आप मिल नहीं सकते।"

द्रोण ने कहा, "तुम मुझे पहचानते भी हो ? मैं भरद्वाज मुनि का पुत्र द्रोण हू। मैं और पाञ्चालराज अग्निवेश के आश्रम में साथ-साथ पढ़ते थे।"

अंगरक्षक बोला, "हां, आपके आने का समाचार सुनाने पर महाराज ने मुझे सब बताया था।"

द्रोणने कहा, "तब मेरे समाचार द्रुपदराज तक पहुच गये प्रतीत होते हैं।"

अगरक्षक बोला, "हां, उनके कहने से ही मै कह रहा हू कि आप मिल नहीं सकते।"

द्रोणने कहा, "भाई, तुम क्या कहते हो ? तुम्हारी बात सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। पाञ्चालराजने मेरा मजाक तो नहीं किया ? मै, और द्रुपद से मिल नहीं सकता ! क्षत्रियकुमार, मैं तो द्रुपद का गुरु भाई हू। द्रुपदराज बीमार हों, उस समय उनकी इच्छा के बिना चाहे वैद्यगण न मिल सके, लेकिन द्रोण उनसे न मिल सके, यह कभी सभव हो नही सकता। एक बार अग्निवेश के आश्रम मे द्रुपद का अगूठा पक गया था, उससे उनके बहुत जलन हो रही थी। उस समय जलन शान्त करने के लिए यह द्रोण अगूठा पकड कर सारी रात उसमे फूंक मारता रहा था। ऐसी और भी कई राते हमने बिताई है। हमारे इस स्नेह का तुम्हे क्या पता ! लेकिन द्रुपदराज यह सब जानते है। राज्य की सुविधा की दृष्टि से राजा की बीमारी की हालत मे किसी के उनसे न मिल सकने की व्यवस्था करनी पड़ सकती है, लेकिन मै तो द्रोण हू। जाकर महाराज द्रुपद से कहो।"

अगरक्षक ने कहा, "महाराज, मुझे क्षमा करो। मै जो कहता हू वह महाराज का ही आदेश है। महाराज आपसे मिलना नहीं चाहते। आप हमारी राजनैतिक भाषा मे नहीं समझे, इसलिए मुझे स्पष्ट शब्दों मे कहना पड़ रहा है।"

"महाराज स्वय मुझसे मिलना नही चाहते!" द्रोण को यह जानकर सहज ही आघात पहुचा। उन्होंने कहा—"उन्होंने मुझे पहचाना न होगा। भाई, मै तो उनका मित्र हू।"

अंगरक्षक बोला, "महाराज ने आपको पहचान लिया है। आपकी सूचना मिली, तभी महाराज कह रहे थे कि राजा-महाराजाओं की गरीब भिक्षुओं के साथ मित्रता कैसी ! अब आपको क्या कहना है ?"

अंगरक्षक के मुंह से यह शब्द सुनते ही द्रोण स्तब्ध रह गये ! उनका मुह फीका पड़ गया। उनके हाथ-पैर क्रोध के मारे कांपने लगे। उनके मनके महल सब एक साथ टूटकर गिर पडे। उन्होंने कहा—"भाई, द्रुपद कहां है ?"

अंगरक्षक ने जवाब दिया—"विश्राम कर रहे है।"

"इस पास के कमरे मे जो बैठे है, वही मुझे द्रुपद प्रतीत होते हैं। मुझे उनके पास जाना है"—यह कहते हुए द्रोण के पैर उधर को बढ़ने लगे।

"महाराज, आज्ञा नहीं है।" अगरक्षक यह कहकर उन्हें रोकने लगा। लेकिन द्रोण तो अग्नि रूप धारण करके सीधे कमरे मे जा पहुचे। महाराज द्रुपद एक बड़े सिंहासन पर बैठे-बैठे पास के कमरे की यह सब बातचीत सुन रहे थे। द्रोण ने कमरे में घुसकर एक बार फिर अभिवादन करते हुए कहा—"महाराज द्रुपद की जय हो, जय हो।"

द्रोण सिंहासन के निकट पहुचे और कहने लगे—"महाराज द्रुपद, क्या मुझे पहचाना ?"

"तुम्हे कहीं देखा तो प्रतीत होता है।" द्रुपद ने कहा।

"मै भरद्वाज का पुत्र द्रोण हू। अग्निवेश के आश्रम मे अपन साथ-साथ पढ़ते थे।" द्रोण ने याद दिलाई।

"हा, तुम कहते हो तब याद तो आती है। जहां इतने सारे शिष्य पढ़ते हों, वहा सबकी याद भी किस तरह रह सकती है ?" द्रुपद ने उपेक्षा भाव से कहा।

द्रोण ने सिंहासन के अधिक निकट जाकर कहा—"शिष्य इतने अधिक थे, यह तो ठीक। लेकिन द्रोण और द्रुपद घनिष्ठ मित्र थे, इतना अन्तर था।"

"महाराज, दूर खड़े रहो। राजा-महाराजाओं की गरीब भिक्षुकों के साथ मैत्री हो नहीं सकती।" द्रुपद ने रोष से कहा।

मणिधर सर्प को मानो किसी ने मंत्र से कील दिया हो और वह फुंकार मारता हो, द्रोण उसी तरह स्तब्ध हो गये और फुंकार मारने लगे। उनकी आखें लाल हो गई, भवे तन गईं और सारा शरीर कापने लगा। फिर भी शान्त भाव धारण करके उन्होंने कहा—"क्या यह द्रुपद बोल रहा है ? क्या यह वृषत् राजा का पुत्र बोल रहा है ? क्या यह अग्निवेश का शिष्य द्रुपद बोल रहा है ? अथवा मैं स्वप्न जगत् मे विचरण कर रहा हूं ?"

"द्रोण," द्रुपद ने सम्बोधन करके कहा–"हा, वृषत् राजा का पुत्र मैं द्रुपद ही बोल रहा हू। पाञ्चाल देश के स्वामी द्रुपद की ही यह वाणी है। द्रोण ! द्रुपद राजा द्रोण का मित्र हो नहीं सकता। मैत्री तो समान व्यक्तियों के बीच ही सम्भव हो सकती है।"

"पाञ्चालके स्वामी द्रुपद ! अग्निवेश के आश्रम में एक साथ विद्याभ्यास करते समय अपन ने जीवन के जो-जो स्वप्न रचे थे, क्या वह सब तुम्हे याद है ?" द्रोण ने जरा स्वस्थ होते हुए कहा।

"उन दिनों रचे होंगे। जवानी मे तो मनुष्य ऐसे रंग-बिरंगे कितने ही स्वप्न गढ़ता, रहता है।" द्रुपद ने उपेक्षा के साथ जवाब दिया।

"द्रुपद, द्रुपद ! आश्रम के वातावरण मे गढ़े हुए स्वप्नों का भी राज-हृदय मे इतना मूल्य होता होगा, यह आज ही मालूम हुआ।" द्रोण ने दु:खित हृदय से कहा।

"द्रोण तुम जैसा आवारा हमारे समान राजाओंके सोथ सम्बन्ध रखने में स्वार्थ-दृष्टि रखता होगा मुझे भी आज ही इसका अनुभव हुआ।"द्रुपदने उलट कर उत्तर दिया,"अरे,कभी गरीब और अमीर के बीच दोस्ती सुनी है ? विद्वान् और मूर्ख के बीच कभी मैत्री हुई है ? बहादुर और डरपोक में कभी दोस्ती होती सुनी है ? द्रोण

तुम भूलते हो। द्रुपद और द्रोण के बीच मैत्री हो नहीं सकती।"

द्रोणका क्रोध फिर भड़क उठा। उन्होंने लाल होकर कहा—"द्रुपद! तुममें राज्य-मद की इतनी अधिक खुमारी, सिंहासन का इतना अधिक अभिमान! तुम विधाता के किसी सयोग से वृषत् राजा के यहा पैदा हुए, इसी से इतने होगये और मैं भरद्वाज की झोंपड़ी मे पैदा होने के कारण छोटा हो गया! क्या राजाओं का रक्त लाल और ब्राह्मणों का काला होता है? द्रुपद, द्रुपद! जरा सोचकर देखो।"

"मै जो कहता हू, सोच-समझ कर ही कहता हूं। तुम्हें कुछ धन आदि मांगना हो तो खुशी से मांगो। लेकिन तुम्हारा मैत्री का दावा मैं स्वीकार नहीं कर सकता, वैसे कोई भी ब्राह्मण-पुत्र मेरे लिए वन्दनीय है।" द्रुपद ने कहा।

"द्रोण द्रुपद के पास भीख मांगने नहीं आया है। गरीब होते हुए भी वह भरद्वाज का पुत्र और अग्निवेश का शिष्य है। द्रोण की यदि द्रुपद के साथ मैत्री सम्भव नहीं हो सकती तो वह द्रुपद से किसी तरह की याचना भी नहीं कर सकता। द्रुपद, यह अच्छी तरह समझ रख, द्रोण की ब्राह्मण-जीवन की गरीबी सीमातीत कष्टदायक हो जायगी तो वह ब्राह्मण-जीवन का त्याग कर देगा, किन्तु द्रुपद जैसे राजा के सामने तुच्छता से हाथ न फैलावेगा।" द्रोण ने नि शक होकर जवाब दिया।

"यह तुम्हारी मरजो की बात है।" द्रुपद ने लापरवाही से कहा।

"द्रुपद, अपने आश्रम से जब अलग हुए थे उस समय तुमने अपने-आप मुझे एक वचन दिया था। वह याद है?" द्रोण ने पूछा।

"कहा होगा कुछ, इस समय तो मुझे कुछ भी याद नहीं आता।" द्रुपद ने जवाब दिया।

"याद नहीं आयगा, राजन्! याद नहीं आयगा। वह याद नहीं आता यह भी इस गद्दी का प्रताप है, मेरे पिता कहा करते थे कि मनुष्य को ब्राह्मण रहना हो तो ऐसी गद्दियों से सौ गांव दूर रहना चाहिए। द्रुपद! और कुछ नहीं, तुम जैसा राजा मुझ जैसे का ऐसा घोर अपमान करे और मैं उसे सहन कर चलता बनूं इसमे मुझे अपनी विद्या लजाती प्रतीत होती है। एक बार तो तुम्हारे जैसे राजाओं को ठिकाने लाने के लिये हमें ब्राह्मण जीवन को घडी-भरके लिए खूंटी पर टागकर हाथमे शस्त्र लेना चाहिए, और तुम्हे बताना चाहिये कि हम जो शस्त्र धारण नहीं करते वह अपनी इच्छा से ही नहीं करते, किसी कायरतावश नहीं। मनमें ऐसा लगता है कि तुम राजा लोग राजाओं के साथ ही मैत्री करते हो तो एक बार यह ब्राह्मण द्रोण भी राजा बनकर तुम्हारी मैत्री का दावा सिद्ध करे। द्रुपद! अब भी जरा सोच।"

"अब सोचना तो तुम्हे है।" द्रुपद ने तपाक से कहा।

"यह बात?" द्रोण गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए-से बोले, "तुमने सोच लिया है तो द्रोण ने भी सोच लिया। द्रुपद, तुम वृषत् राजा के पुत्र तो मैं भरद्वाज का पुत्र, तुम अग्निवेश के शिष्य तो मैं भी उनका शिष्य, तुम महाराज तो मैं शस्त्र-विद्या का आचार्य! द्रुपद, लो, तुम्हारे इस राज-दरबार मे ही मैं ब्राह्मण जीवन का त्याग करता हू। पिता भरद्वाज! गुरु अग्निवेश! क्षमा करना। ब्राह्मण जीवन के स्वप्न सिद्ध करने के लिए दूसरा जन्म लेना पड़ा तो लूंगा, किन्तु एक बार तो इस द्रुपद को ठिकाने लाने के लिए अपनी सारी शस्त्र विद्या का प्रयोग करके ही रहूंगा। द्रुपद! तुम्हारे दरबार मे आया तो था अपनी मैत्री के संस्मरण ताजा करने, लेकिन यहां से जाता हू तुम्हारे साथ दुश्मनी बढाने का निश्चय करके, राजाओं की मैत्री कैसी कपटपूर्ण होती है तुमने इसका

मान इतनी देर से कराया, यह भी एक उपकार ही है। अब विदा होता हूं।" यह कह द्रोण चलने लगे।

"महाराज द्रोण, राजा गद्दी पर बैठते हैं इससे उन पर तो गद्दी का मद सवार हो जाता है, लेकिन ब्राह्मणों को बिना गद्दी के किस चीज से मद चढ़ आता है? क्या विद्या का मद राज-मद अथवा धन-मद से कुछ अच्छी वस्तु है।" द्रोण के जाते-जाते द्रुपद ने कहा।

किन्तु उसके ये शब्द कानों मे पड़ते न पड़ते द्रोण महल से बाहर हो गये।

: ३ :

गुरु-दक्षिणा

आगे महाराज द्रुपद और उनके पीछे पाण्डुपुत्र अर्जुन चल रहे थे। द्रुपद के दाहिने हाथ में सुनहरी जंजीर पड़ी थी और अर्जुन अपने हाथ मे रत्न-जटित तलवार थामे हुए था। कपिलवस्तु नगर के बाहर, जहां द्रोणाचार्य कौरवों से घिरे हुए बैठे थे, अर्जुन पहुचा और द्रुपद से बोला, "महाराज, यह लीजिए अपनी गुरु-दक्षिणा।"

द्रोण के हर्ष का पार न था। महीनों की प्रतिज्ञा आज पूरी हुई। इसलिए वह उत्साहसे खडे हुए और "शाबाश, पुत्र अर्जुन! शाबाश! तूने आज मेरी विद्या सफल की।" यह कहकर उसे कसकर छाती से लगा लिया।

इसके बाद द्रुपद के पास जाकर द्रोण ने कहा—"पाञ्चाल-राज द्रुपद! मुझे पहचाना?"

द्रुपद ने छाती तानकर, आंखों मे रोष धारण कर, निर्भीक स्वर से जवाब दिया—"द्रोण, मैंने तो तुम्हें कभी का पहचान

लिया था। आज मुझे निश्चय हो गया कि उस दिन मैंने तुम्हे ठीक ही पहचाना था।"

द्रोण कहने लगे—"द्रुपदराज, अर्जुन ने तुम्हे बन्दी बनाया है और मुझे सौंपा है। अब तो द्रुपद और द्रोण के बीच मैत्री सम्भव हो सकती है? अब तो द्रुपद और द्रोण समान कोटि के समझे जा सकते हैं?"

द्रुपद सिर्फ खिलखिलाकर हंस पड़ा, कुछ जवाब नहीं दिया।

इस पर द्रोण अधीर हो उठे और पूछने लगे—"पाञ्चाल राज! बोलो, जवाब क्यों नहीं देते?"

"जवाब क्या दूं?" द्रुपद कहने लगे। "द्रोण! भरद्वाज का पुत्र और अग्निवेश का शिष्य तीन तस्सु जमीन के स्वामी द्रुपद जैसे निरे ठाकुर के समान होने के लिए अपने ब्राह्मण-जीवन का त्याग करे और हस्तिनापुर के दरबार मे अपनी प्रिय विद्या बेचे यह कितनी लज्जा की बात है! द्रोण, यह ठीक है कि तुम मेरे समान हो गये हो; लेकिन इस समानता के खरीदने मे तुमने बहुत महंगा मूल्य दिया है।"

द्रुपद का ऐसा अकल्पित उत्तर सुनकर द्रोण जरा स्तम्भित होगये, लेकिन फिर सम्भल कर बोले—"द्रुपद, एक बार तो मैंने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी कर ली और तुम्हे रास्ते पर ले आया। मुझे सन्तोष है कि अपने दरबार में तुमने मेरा जो अपमान किया था, मेरे शिष्य ने तुम्हे पराजित करके उसका बदला दे दिया।"

"कुंतीपुत्र अर्जुन ने मुझे इस जजीर से बाधा है इससे तुम्हे अपनी विजय प्रतीत होती हो तो भले ही हो।" महाराज द्रुपद ने छाती फुलाते हुए कहा—"लेकिन द्रोण, मुझे क्षमा करना यदि मै कहूं कि मै तो आज भी द्रुपद की ही विजय

देख रहा हूं। यह निश्चय रखो कि जिस दिन से तुमने कृपी तथा अश्वत्थामा के साथ कांपिल्य छोड़कर हस्तिनापुर की ओर कदम रक्खा तब से आज तक की तुम्हारी सब हलचलों से मै अच्छी तरह परिचित हू। इसलिए मैं कह सकता हूँ कि विजय यदि किसी की भी हुई है तो द्रुपद की हुई है और द्रोण तो विजय के बदले पराजय के पथ पर ही चल पड़े हैं!

पाञ्चालराज के ऐसे धृष्टतापूर्ण वाक्य सुनकर द्रोण आश्चर्य-चकित रह गये। उन्हे आशा थी कि द्रुपद उनके चरण पकड़ कर दीनता दर्शावेगा, गद्गद् हो जायगा, अपने मन में लज्जित होगा और अपनी भूल स्वीकार करेगा। लेकिन इसके विपरीत द्रुपद तो और भी दूने उत्साह से अपनी विजय का बखान करने लगा, इससे द्रोण जरा खिन्न हो गये। फिर भी वे बोले—'द्रुपद! मेरी इस प्रत्यक्ष विजय से इनकार करके तुम अपनी विजय के गीत गाते हो। क्या तुम मुझे समझा सकते हो कि इसमे तुम्हारी विजय किस तरह हुई ?"

"अभी द्रोण अपने विरुद्ध कोई कुछ कहता है तो उसे सुन सकते है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई।" द्रुपद ने तुरन्त ही जवाब देते हुए कहा—"आचार्य, सुनो! तुम स्वय भरद्वाज के पुत्र और अग्निवेश के शिष्य हो। जिस तरह भरद्वाज के बाद अग्निवेश ने आश्रम सम्भाला उसी तरह तुम भी अग्निवेश के बाद वह आश्रम सम्भाल सकते थे और भारतवर्ष के अनेकों क्षत्रिय-कुमारों को अस्त्र-विद्या सिखा सकते थे। यह करने के बजाय तुमने हस्तिनापुर के राज्य-परिवार में अपनी विद्या बेची और इस प्रकार तुम समस्त देश के आचार्य न रहकर गिने-चुने शिष्यों के आचार्य बने। यह हुई तुम्हारी पहली पराजय।"

"द्रुपद! तुमने मेरा अपमान किया इसलिए मेरे लिए और कोई दूसरा रास्ता ही नहीं था।" द्रोण बीच में ही कह उठे।

"मैं अपमान करने वाला कौन ?" द्रुपद ने जवाब दिया। "तुम्हारे ब्रह्मत्व मे तेज हो तो मैं तो क्या, संसार के सारे द्रुपद मिलकर भी अपमान करे तो भी वह मन्द नहीं हो सकता। मेरे जैसे तो कितने ही कुत्ते भौंकते रहते हैं,इससे क्या होता है। और फिर मेरी मैत्री ही क्या ! द्रोण जैसा ब्राह्मण, और मेरी मैत्री की याचना करने आवे ? आचार्यदेव ! तुम ऐसे ब्राह्मण हो कि हजारों द्रुपद तुम जैसे ब्राह्मणों के पैर दबाये तो भी उन्हे मैत्री प्राप्त न हो। लेकिन मेरे वचनों की मार के कारण तुम मेरे ही समान बनने की खोज मे निकले, इससे तो मुझे अपने समान उच्च बनाने के बजाय तुम स्वयं मेरी श्रेणी में नीचे उतर आये। राजगुरु बने रहने के लिए अपनी झोंपड़ी के बदले तुम्हे राजमहल मिला, अपने और कृपी के फटे चिथड़ों के बजाय वस्त्रों के थान के थान आये, तुम्हारे अश्वत्थामा को आटे के पानी की बजाय दूध के कटोरे मिले और आज मुझे बन्दी बनाया, इसलिये पाञ्चाल के राजा भी बन जाओगे। यह सब कुछ मिला, लेकिन द्रोण ! यह सब प्राप्त करने के लिए तुमने अपना ब्राह्मण-जीवन खर्च कर डाला, इसका भी तुमने कुछ खयाल किया है ? और द्रोण ! मुझ-जैसे पामर की वाणी सच मानो तो मैं कहूगा कि शुद्ध ब्राह्मण-जीवन के साथ अखिल विश्व के साम्राज्य को तराजू में रखा जाय तो वह भी बराबर उतर नहीं सकता। यह है तुम्हारी दूसरी पराजय।"

'द्रुपद, तुम्हारे शब्द हृदय मे बैठते ही दाह पैदा करते हैं। अब और क्या कहना है ?" द्रोणाचार्य ने कहा।

द्रुपद बोले—"सुनना हो तो कहने के लिए तो अभी भी बहुत कुछ है। क्या यह सच है कि भील राजकुमार एकलव्य तुम्हारे पास विद्याभ्यास के लिए आया था ?"

"हां, आया था। लेकिन मैंने स्वीकार नहीं किया।" द्रोण ने जवाब दिया।

"मै यही बात कहना चाहता हूं।" द्रुपद ने कहा—'मेरे महल मे तुमने ही पूछा था कि क्या क्षत्रिय का रक्त लाल होता है और ब्राह्मण का काला? द्रोण! अब वही बात मैं तुमसे पूछना चाहता हूं कि क्या पाण्डव और कौरवों का रक्त लाल था और भील-कुमार का काला? हम तो संसारी जीव ठहरे। क्षुद्र स्वार्थ के लिए रक्त रक्त मे भेद करते हैं,देश-विदेश मे भेद करते हैं,सस्कृत और असस्कृत मे भेद करते हैं और इस तरह की अनेक दीवारें खड़ी करते हैं। किन्तु तुम तो आचार्य हो! तुम्हे तो अधिकारी व्यक्ति को दीक्षा देनी चाहिए। ब्राह्मण ने ज्ञान की प्याऊ खोली हो, वहा जिस किसी को प्यास हो वह जी भरकर अपनी प्यास बुझा सकता है। लेकिन द्रोणाचार्य! तुमने खड़े होकर एकलव्य को अस्वीकार किया, यह तुम्हारी तीसरी पराजय है।"

"तुम कहते हो वह ठीक है, लेकिन पितामह के विचार ही ऐसे थे कि राजकुमारों को ऐसे-वैसे शिष्यों के साथ मिलाने से उनमें कुसस्कार पैदा हो जाते हैं, इसलिए मुझे उनके साथ और किसी को नहीं पढ़ाना चाहिए।" द्रोण ने अपना पक्ष समर्थन करते हुए कहा।

जवाब में द्रुपद ने कहा—"पितामह तो यह कहते ही। लेकिन तुम तो सच्ची बात देख सकते थे। राजकुमारों के संस्कार कैसे होते हैं, इसका पता मुझे भी है, इसलिए यह बात तो जाने ही दो। लेकिन तुम तो भीष्म से भी आगे बढ़ गये!"

"किस तरह?" द्रोण ने पूछा।

"जिस एकलव्य को तुमने हस्तिनापुर में विद्या पढ़ाना स्वीकार नहीं किया, बाद में उसी के पास खुद तुम अंगूठा लेने दौड़ गये।" द्रुपद हंस पड़ा। "क्या यह सच है? वह

तुम्हारा शिष्य नहीं था, तब तुम्हें उससे गुरु-दक्षिणा मागने का क्या अधिकार था ? लेकिन द्रोण ! तुम उसके गुरु भी बने, दक्षिणा भी मांगी और दक्षिणा मे मागा भी तो उसका अंगूठा ! तुम्हारा यह अर्जुन सर्वश्रेष्ठ धनुषज्ञ बने केवल इसी मोहवश एकलव्य का अंगूठा काटते हुए तुम्हे शर्म नहीं आई ? द्रोण ! तुम राजकुमारों के आचार्य बने, राजमहल में रहने लगे और मुझ जैसे राजाओं को दण्ड देने निकले, इससे तुम्हारे ब्राह्मण-जीवन के पाये धीरे-धीरे खिसकने लगे है और यदि समय रहते सावधान नहीं हुए तो परिणाम बुरा ही निकलने वाला है ।'

"द्रुपद, मैंने तुम्हारे वचनों से आहत होकर तुम्हारी पराजय करने की प्रतिज्ञा की थी, वह आज पूरी हो गई । अब आगे मुझे क्या करना चाहिए, यह मैं खुद सोच लूंगा ।' द्रोण ने कहा ।

"आचार्य ! तुम भूलते हो ।" द्रुपद ने जवाब देते हुए कहा । "यह बात तो बिलकुल ठीक है कि युद्ध मे तुमने मुझे पराजित किया , लेकिन मुझ जैसों की पराजय के परिणाम की कल्पना तुम कर नहीं सकते । क्या तुम यह समझते हो कि द्रुपद की हार हो जाने से सब कुछ ठीक हो गया ! मैंने राजमहल मे तुम्हे परास्त किया, इसलिए मुझे परास्त करने की धुन तुम मे सवार हुई । आज तुमने मुझे परास्त किया है, यह पराजय भी निर्बीज न रहेगी । इस पराजय के कच्चे-बच्चे पैदा होंगे, तब उन्हे सम्भाल सकना किसी को भी भारी पड़ सकता है । द्रोण ! तुम ब्राह्मण थे, फिर भी मेरे वचन सुनकर झुंझला गये और तुमने मेरे साथ शत्रुता की । तब मैं तो क्षत्रिय हूँ, मेरी नसों में पृषत् राजा का रक्त प्रवाहित हो रहा है, मेरे मानापमानों का विधान राजमहलों में गढ़ा गया है, इसलिए तुम्हे यह तो नहीं समझ लेना चाहिए कि द्रुपद इस पराजय को शान्ति से सहन

कर जायगा। हां, मुझे यह तो प्रतीत होता है कि मैंने तुम्हारा जो अपमान किया था, यदि तुमने उसे सह लिया होता तो मेरे मन मे विचार उत्पन्न हुआ होता और जीवन की किसी शुभ घड़ी मे मै तुम्हारे चरणों मे सिर झुकाता। किन्तु आज अब तुम मुझसे यह आशा न करना। मै समझ नहीं पा रहा हूँ कि कार्य-चक्र के किन प्रभाव से प्रेरित होकर उस दिन मैंने तुम्हारा तिरस्कार किया। लेकिन अब तो बाण धनुष पर से छूट चुका है। आचाय द्रोण ! किस सोच मे पड़ गये हो ?"

द्रोण स्वप्न से जाग्रत होने के समान सचेत होकर बोले—"इस समय मन मे ऐसा प्रतीत होता है मानो कितने ही वर्ष बीत जाने पर आज हम दोनों अग्निवेश के आश्रम के चरण पखारती हुई नदी के तट पर चादनी मे बैठे है और द्रुपदकुमार जीवन की कथाए सुना रहे हैं। द्रुपद ! कहां तो वह गुरुकुल का आवास और कहां द्रुपद का यह बधन ? अर्जुन, महाराज द्रुपद को बन्धन मुक्त करो। महाराज द्रुपद, मेरा चित्त स्वस्थ नहीं है, इसलिए मै जल्दी ही हस्तिनापुर वापस जाना चाहता हूं। तुम्हे तुम्हारी पांचाल की गद्दी पर पुन. अधिष्ठित करता हू। किन्तु इस विजय के अपने भाग के रूप में आधे पांचाल मे आज से मेरे नाम की दुहाई फिरेगी।"

"जैसी आचार्य की इच्छा।" द्रुपद ने कहा।

"महाराज द्रुपद ! अब तो प्रसन्न हुए ?" द्रोण ने पूछा।

"प्रसन्न तो तुम्हें होना है।" जवाब देते हुए द्रुपद ने कहा—"ब्राह्मणों की प्रसन्नता पर संसार का कल्याण निर्भर है। किन्तु द्रोणाचार्य ! यह निश्चय समझ रखो कि जब ब्राह्मण ब्राह्मण-जीवन का त्याग करके संसार के कीड़े बनने लगते है तब उनका वध करने वाले जीव भी पैदा हो ही जाते हैं। आज तो

तुम जाओ। कुमारो! तुम्हे भी जाना होगा। कुन्तीपुत्र अर्जुन आज मैं तुम्हारी बहादुरी से चकित हो गया हूं।"

द्रुपद महाराज सबको पहुँचा कर शहर मे वापस लौटे। द्रोणाचार्य और राजकुमारों ने अपने रथ हस्तिनापुर की ओर चलाये।

: ४ :

युद्ध-सभा में

दुर्योधन ने पांडवों की युद्ध की चुनौती स्वीकार की और कुरुक्षेत्र के मैदान पर ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होने लगी। दुर्योधन ने भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य को समस्त कौरव-सैना का अधिपति बनाने का निश्चय किया था। कर्ण ने युद्ध मे भाग लिया तो पितामह मन लगाकर सेनापति का काम नहीं करेंगे, इस डर से आरम्भ मे कर्ण को युद्ध से मुक्त कर रखा था। कुरुक्षेत्र के मैदान मे सेनाओं के पड़ाव की पूरी तैयारी हो चुकी थी, इसलिए हस्तिनापुर की सेना को कूच करने का हुक्म मिला।

सेना के अग्रभाग मे भीष्म और द्रोण जाने वाले थे, इसलिए कूच के अगले दिन रात को युद्ध के सम्बन्ध में अन्तिम विचार करने और समूचे युद्ध की योजना का कच्चा-पक्का ब्यौरा तैयार कर लेने के लिए दुर्योधन के राजमहल मे कौरवों की युद्ध-सभा हुई। भीष्म पितामह समस्त युद्ध-रचना के विलक्षण द्रष्टा की भांति इस सभा के अध्यक्ष के रूप में एक बड़े सिंहासन पर बैठे थे। द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, दु.शासन, शकुनी, दुर्योधन, आदि सब उपस्थित थे। राधा-पुत्र कर्ण एक ओर कोने में बैठा हुआ सब सुन रहा था।

पितामह के सभा का कार्य आरम्भ होने की सूचना देते ही द्रोणाचार्य अपने आसन पर से खड़े होकर सब सुन सके ऐसे धीर गम्भीर स्वर से बोले—"इस भारतीय युद्ध के नक्शे पर हम विचार आरम्भ करें, इससे पहले मुझे इस सभा के सामने कुछ बाते रखनी है। मै इस समय जो कुछ कहना चाहता हूँ वह अबतक अनेक अवसरों पर भिन्न भिन्न प्रकार से मैं कह चुका हूं। लेकिन आज मैं उन सब प्रसंगों को एक साथ मिलाकर सामने रखता हूँ, जिससे मेरे कथन का आशय अधिक स्पष्टता से सबकी समझ मे आ जाय। अवश्य ही, युद्ध का समय इतना निकट आ चुका है और सेना के कूच करने के आदेश इतना दबाव डाल रहे हैं कि मेरा इस समय का कथन अन्तिम क्षण की सी बात प्रतीत होगा। लेकिन जो बात सच हो वह किसी भी जगह और किसी भी समय कह ही देनी चाहिए, यह समझ कर, ऐसे समय में अपनी बात मैं कह रहा हूं।

"मैं कहना चाहता हूं कि पांडव-कौरवों का यह युद्ध किसी तरह रुक जाय और दुर्योधन तथा युधिष्ठिर आपस में समझौता कर ले, इस बात के प्रयत्न की कल्पना आवश्यक है। मैं इन भारत-कुमारों का आचार्य और जाति का ब्राह्मण हूं। दुनिया में इतने बड़े-बड़े ज्वालामुखी फूट निकलते हैं। उससे पहले पृथ्वी-तल पर रहने वाले लोगों को इस बात की जरा भी खबर न थी कि इस पृथ्वी के गर्भ में कितने ही वर्षों से अनेकानेक उष्ण धाराए जोरों से प्रवाहित हो रही हैं। किन्तु भूगर्भ विद्या विशारद ब्राह्मण इस बात को जान लेते हैं। भारत-वर्ष के क्षत्रिय समाज मे वर्षों से ऐसे धाराएं मै देखता आ रहा हूं। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि यह युद्ध ऐसे उष्ण प्रवाह का अवश्यम्भावी परिणाम है। इतने पर भी पितामह! मैं मानता हूं कि इस परिणाम को रोका जा सकता है, इसीलिए

कहता हूं कि दुर्योधन युधिष्ठिर के साथ समझौता कर ले।

"भीष्म ! आप कौरव-वश के पितामह है। समस्त कौरव वंश के हित-चिंतक हैं। ऐसी दशा मे आप आज उसी कौरव-वश के अमंगल स्वरूप इस युद्ध के साक्षी क्यों बनते है ? इस दुर्योधन ने पांडवों को परेशान करने मे कोई कसर बाकी नहीं रखी। मैंने तो यह अनुभव किया है कि दुर्योधन के जीवन का एक मात्र धन्धा पांडवों को परेशान करना रहा है। इसी दुर्योधन ने भीम को विष खिलाया, पांडवो को जला डालने की योजना बनाई, और जुए में छलकर के उन्हे जीता। इसी दुर्योधन ने मेरे और आपके देखते-देखते द्रौपदी की कितनी बेइज्जती की, इसी ने पाण्डवों को मृगचर्म और वल्कल वस्त्र धारण करवाकर जंगल में भेजा और आज वही दुर्योधन पाडुराज के पुत्रों को एक सूत बराबर भी भूमि न देने की जिद पकड़कर बैठा है।

"राजागण ! आप जानते है कि दूध के समान अमृत-वस्तु भी सांप के पेट में पहुचकर विष बन जाती है। महाराज युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं। उनकी किसी के साथ शत्रुता नहीं, इसलिए वे तो अजातशत्रु कहलाते हैं। पाण्डवों ने धृतराष्ट्र की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया, गंधर्वों ने दुर्योधन को पकडा उस समय पाण्डवों ने उसे छुडाया, जयद्रथ ने द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली तो भी दुःशला के पति उस जयद्रथ को युधिष्ठिर ने क्षमा कर दिया। लेकिन इन और ऐसे अन्य अनेक उपकारों को दुर्योधन पी गया है और इनके बदले मे उलटे वैर-विष ही बढ़ाया है।

"पितामह ! एक बात पर आपको और मुझे विचार कर लेना है। यह दुर्योधन आपके और मेरे बल पर युद्ध छेड़ बैठा है। उनके लिए ऐसा करना स्वाभाविक भी था, क्योंकि यद्यपि हम आजतक दुर्योधन के एक भी अधर्म कृत्य की निन्दा किये बिना नहीं रहे, फिर भी हमने उसका साथ नहीं छोड़ा। द्य त-

सभा मे हमारे देखते-देखते कौरवों ने पांचाली की लज्जा अप-हरण की और समग्र आर्य-संस्कृति के निधिपति भीष्म तथा समग्र शस्त्र-विद्या के आचार्य द्रोण मूढ की तरह बैठे देखते रहे। उस दिन बहादुर विकर्ण को तो पुण्य प्रकोप हो आया, लेकिन हमे नहीं हुआ। पितामह! मै यह खूब समझता हू कि अधर्मों के अधार्मिक कृत्यों के प्रति मौन साध लेना भी अधर्म ही है। इतने पर भी अपने मन की दुर्बलता के कारण मैं दुर्योधन का साथ छोड़ नहीं सका। पितामह! भरद्वाज के पुत्र और अग्नि-वेश के शिष्य द्रोण अपना इतना ब्रह्मचर्य हस्तिनापुर के राज-महल में गंवा बैठे यह बात मुझे लज्जापूर्वक स्वीकार करनी ही होगी। किन्तु भीष्म! जीवन-भर ब्रह्मचर्य की भीषण प्रतिज्ञा लेने वाले और अपनी आन की खातिर परशुराम—जैसे गुरुदेव के साथ तक युद्ध करने वाले तुम जैसे पुण्य-श्लोक महापुरुष मे पुण्य प्रकोप प्रज्वलित क्यों नहीं होता?

"भाई दुर्योधन! मै समझता हूं कि एक दूसरी बात की ओर भी तुम्हे ध्यान देना चाहिए। तू पितामह पर और मुझ पर युद्ध का आधार रखकर बैठा है। और इसमें सन्देह नही कि हम दोनों ही मन मे धार लें तो एक दिन मे सारी पृथ्वी को अपने वश मे कर सकते है। स्वयं देवराज इन्द्र तक को हटाना हो तो अवश्य हटा सकते है। किन्तु दुर्योधन! यहां तो पाडवों से निपटना है, और उनमे भी पांडु-पुत्र अर्जुन के साथ। दुर्यो-धन! तू अर्जुन को अच्छी तरह पहचानता नहीं है। तुझे तो यही प्रतीत होता है कि भीष्म और द्रोण को पाण्डवों के प्रति पक्षपात है इसलिए ये लोग सदा इसी तरह की बातें किया करते हैं। निश्चय ही अर्जुन के प्रति मेरे मन मे पक्षपात अवश्य है इसमे कोई सन्देह नहीं। अर्जुन—जैसे शिष्य के प्रति जिस गुरु के मन मे पक्षपात न हो वह गुरु विद्या का सच्चा उपासक नहीं

हो सकता। किन्तु दुर्योधन! यह केवल पक्षपात का ही प्रश्न नहीं है। भीष्म और मैं, दोनों ही वृद्ध हैं, इसलिए युवक अर्जुन के मुकाबले और दृढ़ता की हम बराबरी नहीं कर सकेंगे। जिस समय अर्जुन हम सबके हाथ पर ताली बजाकर अकेला ही विराट के युद्ध-क्षेत्र पर चला गया था, उस समय तू इस बात का अनुभव कर चुका है। इसके सिवा यह वृद्धावस्था तथा जवानी केवल आयु की ही नहीं है। सारी शस्त्र-विद्या मे मैं और पितामह वृद्ध हैं और अर्जुन जवान। आज से बीस वर्ष पहले हम सचमुच ही जवान थे। उस समय के नये-नये शस्त्रास्त्रों तथा उनकी कला हमसे अपरिचित नहीं थी। किन्तु आज इस युग के नवीनतम शस्त्रास्त्रों का हमे बहुत कम परिचय है। हमारी शस्त्र-विद्या सामर्थ्यवान् तो है, लेकिन जितनी समर्थ है उतनी आधुनिक नहीं। अर्जुन तो शस्त्र-विद्या के आधुनिक आचार्य पशुपति से नई विद्या सीखकर आया है, इसलिए यह निश्चय है कि उसकी जवानी और शस्त्रास्त्र विद्या की नवीनतम शोधों का उसका ज्ञान मुझे और भीष्म को उसके मुकाबले मे टिकने न देगा। विश्व के ब्राह्मण यह बात आरम्भ से ही कहते आये हैं कि जो विद्या पुरानी पड़ गई है और जिसे नित्य निरन्तर होती रहने वाली नवीनताओं का पुट नहीं लगा है, वह चाहे जितनी समर्थ हो तो भी नवीन युग के सामने टिक नहीं सकती।

"पितामह! फिर दुर्योधन एक खास बात और भूल जाता है। अर्जुन के रथपर श्रीकृष्ण सारथी होकर बैठनेवाले है। मालूम होता है,इसकी ओर उसका लक्ष्य नहीं रहा है! पितामह! इन श्रीकृष्ण को आप तो अच्छी तरह जानते है। राजसूय यज्ञ के समय इन श्रीकृष्ण ने आपको ही प्रथम अर्घ्य का अधिकारी माना था, और आपका विरोध करने वाले शिशुपाल का सिर धड़ से जुदा करके पृथ्वीपर नीचे गिरा दिया था। विदुर आदि तो श्रीकृष्ण को साक्षात्

ईश्वर का अवतार मानते है। मै इस सरल बात को सीधे-सादे शब्दों में यों रखता हू कि श्रीकृष्ण हमारे आज के युग-पुरुष हैं। अपने वर्त्तमान युग के भीतरी-बाहरी प्रवाह, इस युग का समस्त जीवन श्रीकृष्ण के जीवन मे मूर्त्तरूप होता दिखाई देता है। और आज यदि कोई एक पुरुष सम्पूर्ण भारत का जीवन गढ़ रहा है तो वह यह श्रीकृष्ण ही है। ऐसा युग-पुरुष सारथी बनकर रथ को गतिवान् करे, उस रथ को रोकने की शक्ति किसमे है ? भीष्म ! आपका और मेरा बल चाहे जितना हो, फिर भी हम अर्जुन के रथ के सामने टिक न सकेंगे। अर्जुन नवयुवक है, इसकी विद्या सर्वथा नूतन है, उसके पक्ष मे धर्म है और भारत के सारे समाज की नाड़ी की गति क्या बताती है यह जानकर देखो तो प्रतीत होगा कि समाज के सम्पूर्ण हृदय का अन्तर-प्रवाह पाण्डवों के पक्ष मे ही जाता है।

"पितामह ! हमे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पाण्डव युद्ध-क्षेत्र मे उतरते है तो अपने निज की खातिर। इस युद्ध के पीछे उनके अन्तरतम की बात है, उनके अपने दुःखों की स्मृति है और है राज्य के अपने निज के हिस्से की कसक। मेरे और आपके इस युद्ध में भाग लेने के पीछे भी क्या ऐसे कोई प्रबल कारण हैं ? दुर्योधन और कौरव-बन्धुओं के मन में सच्ची कसक है, किन्तु अपने मन मे वह बात नहीं। इस हद तक कौरव-सेना दुर्बल रहेगी। अर्जुन को हम पर तीर चलाते समय जो जोश आ सकता है वह हमको नहीं आ सकता। अपने मन मे तो अर्जुन के प्रति सहानुभूति होगी, इसलिए सम्भव है कि अपने हाथ ढीले पड़ जांय, और ढीले न भी पड़े तो भी हम कोरे कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से लड़ेंगे, आंतरिक उत्साह से नहीं।

"दुर्योधन ! अर्जुन के सब साधन संसार की सर्वश्रेष्ठ शस्त्रास्त्रशाला के बने हुए है। उसका रथ, रथ पर उड़ती हुई

पताका, उसका गाण्डीव, उसके तीर और उसके शस्त्र सभी वरुणदेव की विशिष्ट प्रयोगशाला मे तैयार हुए है, और उन के निर्माण मे जरा भी कोई कसर नही रही है। भीष्म के या मेरे पास इन साधनों की समानता करने वाले कोई साधन नही है।

"पितामह! मैं बहुत कुछ कह गया। मुझे ऐसा लगता है कि युद्ध के नक्शों पर विचार होने से पहले इन बातो पर विचार होकर अब भी यदि काल की इच्छा हो और युद्ध बन्द हो सके तो बडा अच्छा हो।"

यह कहकर द्रोण अपने आसन पर बैठ गये। इसके बाद तुरन्त ही दुर्योधन खंखारता हुआ उठा और कौरवों की तालियों की गड़गड़ाहट मे उसने कहना शुरू किया—"पितामह! द्रोणाचार्य ने जो कुछ कहा, वह मैंने सुना है। जो लोग बूढ़े हो जाते है, वे किसी भी कार्य में प्रेरणा देने के बदले निरर्थक दोष निकालने मे ही अपना समय गवाते है। इस दृष्टि से द्रोण सचमुच वृद्ध हो गये है। मै तो अपनी बात सक्षेप में ही कह देना चाहता हूँ। दुर्योधन ने जो युद्ध रचा है वह बन्द नहीं हो सकता। आप और आचार्य चाहे उसमे भाग न ले और दूसरे राजा भी मेरा साथ छोड़ दें तो भी मैं, शकुनि, दु शासन और कर्ण ये चारों जन लड़ लेंगे। पितामह! लम्बी-लम्बी बाते तो अब बहुत हो चुकीं हैं। उनसे मेरा कोई मतलब नहीं। अब आप और आचार्य मिलकर निश्चय कर ले, जिससे युद्ध का विचार आगे बढ़ सके। आचार्य जैसे ब्राह्मण विद्या सम्बन्धी उपदेश देने के लिए अच्छे होते हैं, किन्तु जीवन मे उस विद्या का यथाविधि उपयोग करने का क्षात्र-बल ये बिचारे कहां से लावे?"

"कुमार! लड़ना ही हुआ तो द्रोण तुम्हारे साथ ही है; किन्तु अपने बिचार तो मुझे तुम सबके सामने रखने ही चाहिए।" आचार्य ने व्यथित होकर कहा।

"अवश्य। मेरे साथ रहना न रहना यह तुम्हारी न्याय-बुद्धि पर निर्भर है। किन्तु निरी मन्त्रणा के समय तो मैंने द्रोण से और ही आशा रखी थी।" दुर्योधन ने तत्काल उत्तर देते हुए कहा—"लेकिन खैर, तुम्हे पहचानने में मैंने भूल की हो तो उसका फल भी मुझे ही भोगना चाहिए। पितामह! मैं अपने सबकी तरफ की कहता हूँ कि युद्ध का जो पासा हमने फेका वह फेका जा चुका है। मै समझता हूँ कि आप हमारे साथ है। हस्तिनापुर के सिंहासन का भीष्म के बल पर इतना तो अधिकार है ही। अब आचार्य अपना निर्णय प्रकट करे और अपनी मन्त्रणा आगे शुरू हो।"

"द्रोणाचार्य! आप जो कहते है वह सब यथार्थ है।" पितामाह बोले—"दुर्योधन समझ जाय तो अब भी क्षत्रियों का विनाश टल सकता है। लेकिन दुर्योधन समझने का नहीं। इसलिए अपने से जितना हो सके उतना कर देना चाहिए। अपन युद्ध मे सम्मिलित हुए तो युद्ध आरम्भ होने के बाद भी मौका पाकर समझौता करा सकेंगे। इसलिए युद्ध के कच्चे-पक्के ब्यौरे मे अपने ज्ञान और अनुभव का योग दो।"

भीष्म के वचन सुनकर कौरव हर्षित हो उठे। इसलिए द्रोण खड़े होकर बोले—"पितामह! जैसी काल की इच्छा। दुर्योधन! समझ में नहीं आता कि भीष्म पितामह के साथ तेरी पीठ पर खड़ रहने के लिए मुझे कौन धकेल रहा है। लेकिन कुछ भी हो, विनाश के गहरे-से-गहरे गढ़े में गिरने में भीष्म जैसे पितामह के साथ रहना हो तो यह भी जीवन का एक सौभाग्य ही है।"

"आचार्य! यह आपके योग्य ही है।" भीष्म ने पूर्ति की और इसके बाद सारी सभा युद्ध के नक्शों पर विचार करने में संलग्न होगई।

: ५ :

दुर्योधन के वाक्प्रहार

द्रोणाचार्य को सेनापति हुए आज चार दिन हो चुके हैं। युद्ध का चौदहवा दिन होने के कारण कौरवों के लिए वह एक काल-दिवस था। इस चौदहवे दिन की शाम को अर्जुन ने सिन्धुराज जयद्रथ का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी। दुःशला का पति होने के कारण जयद्रथ दुर्योधन के सगे भाई के समान था। अभी अगले ही दिन जिस समय अभिमन्यु कौरवों का चक्रव्यूह तोड़कर भीतर घुस गया था उस समय उसके पीछे घुसती जाने वाली सारी पाण्डव-सेना को अकेले जयद्रथ ने रोक रखा था और भीम, धृष्टद्युम्न आदि सिरतोड़ प्रयत्न करके भी उसे डिगा न सके थे। उसी जयद्रथ को अर्जुन ने धराशायी कर दिया। तब कौरव-सेना में भगदड़ मची, किन्तु तुरन्त ही सम्भलकर क्रोध के आवेश मे वापस झपटी। सामान्यतया भारत का यह युद्ध दिन-भर जारी रहता और सूर्यास्त के बाद दोनों सेनाएं अपने-अपने शिविर (छावनी) में वापस लौटतीं। इस युग के युद्ध के शिष्टाचार के अनुसार दोनों सेनाएं अपनी शत्रुता को एक ओर रखकर भाई-भाई के रूप में मिल भी सकती थीं। किन्तु आज तो सूर्यास्त के बाद भी युद्ध जारी रहा और अधिक रात बीते तक लड़ने के बाद थके हुए योद्धाओं ने अधिकतर नींद भी वहीं निकाल ली। आज के रात्रि-युद्ध में भीमसेन का पुत्र घटोत्कच कौरवों की सेना में खूब हलचल मचाने के बाद अन्त में कर्ण के हाथों मारा गया।

युद्ध समाप्ति के बाद महाराज दुर्योधन रथ में बैठकर आचार्य के तम्बू में आये। आज उनके मन में चैन नहीं था।

"महाराज, इस समय कैसे? विश्राम का जो थोड़ा बहुत

समय मिला है, वह तो ले लिया होता। अभी भोर हो जायगा।" आचार्य ने कहा।

"आचार्य! इस काल-रात्रि मे से दुर्योधन के लिए प्रभात की एक भी किरण चमकेगी मुझे यह प्रतीत नहीं होता।" हताश व्यक्ति की भांति दुर्योधन बोला। "द्रोणगुरु! मैं तो अब जीवन से तग आ गया हूँ। विजय की कैसी कैसी आशा करके मैंने आपको सेनापति बनाया था! और गुरुदेव! आप सेनापति हुए उस समय मैंने जो मांगा था उसकी याद है? न हो तो सुनिये, मेरी मांग थी युधिष्ठिर को जीवित पकड़कर सौंपने की।"

"हां, तुमने यह मांग की थी और मैंने उसका जवाब भी दिया था।" आचार्य ने उत्तर दिया।

"आपकी शर्त के अनुसार मैंने अर्जुन को युद्ध से दूर रखा है। अर्जुन सग्राम मे हो तो युधिष्ठिर का पकड़ा जाना सम्भव नहीं हो सकता। मैंने इसके लिए त्रिगर्त के युद्ध की अलग ही योजना की है, इसलिए अर्जुन तो नित्य वहां जाता है। फिर भी आप युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सके। आचार्य, सुनते हैं आप?" दुर्योधन ने पूछा।

"सुनता हूँ राजन्! सुनता हूँ। और अन्तर में खूब व्यथा अनुभव करता हूँ।" आचार्य ने जवाब दिया। "दुर्योधन! मनुष्य अपना सिर काटकर तेरे सिरहाने रखे तो भी तू 'बार-बार कोसते हैं' यही कहेगा। तू मुझ-जैसे को जिम्मेदारी के काम सौंप सकता है, लेकिन इन कामों को सौंपने के साथ-साथ जो विश्वास रखना चाहिए वह रख नहीं सकता। इसके विपरीत शङ्का की ही दृष्टि से देखा करता है। इसलिए तेरा सौंपना भी मिट्टी में मिलता है और हमारा उत्साह भी धूल में मिल जाता है। तेरे ऐसे शङ्काशील स्वभाव से

भीष्म भी तंग आ गये और अन्त मे मारे जाने पर ही छुटकारा पाया। यह ठीक है कि मै युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सका। लेकिन उन्हे पकडना कितना कठिन काम है, इसका भी तुझे कुछ खयाल है ?"

"खयाल तो है, लेकिन आपने पाण्डवों के प्रति अपने पक्षपात के वशीभूत होकर जितना प्रयत्न किया जा सकता था, उतना अधिक प्रयत्न आपने क्यों नहीं किया।" दुर्योधन ने तनककर कहा, "देखिए, अभिमन्यु आपका चक्रव्यूह तोड़कर अन्दर प्रवेश करने के लिए आगे बढ़ा, उस समय आप चाहते तो उसे रोक सकते थे। किन्तु अभिमन्यु तो ठहरा अर्जुन का पुत्र इसलिए पूंजी के ब्याज की तरह आपको प्रेम था। उसे आप किस तरह रोकते ?"

"अरे मूर्ख ! कौरव-सेना का सेनापति पद देने के कारण ही तू इस प्रकार की भाषा बोल रहा है ? दुर्योधन ! तेरी विजय ही असम्भव है।" आचार्य ने आवेश मे भरकर कहा।

"आचार्य ! क्रोधित क्यों होते हैं। मेरे मन का समाधान कर दीजिए, बस इतना ही तो चाहिए। मुझे जैसा प्रतीत होता है, वही मै कहता हू ! आपसे कहना ही यदि आपको अच्छा न लगता हो तो फिर मै मन पर गहरा अकुश लगाकर कोई बात मुंह से निकलने ही न दूंगा।" दुर्योधन ने कहा।

"दुर्योधन ! अभिमन्यु तो सिंह-शावक है, श्रीकृष्ण का भानजा और अर्जुन का पुत्र है। और गर्भ में से ही उसने यह विद्या ग्रहण की थी। यह तो तेरे भाग्य की बात है कि व्यूह में से बाहर निकलने की कला वह सीख नहीं सका, अन्यथा हम सबको लेने के देने पड़ जाते। और फिर जरा सोच तो सही, उस अकेले ने हम इतने सारों को किस तरह खेल खिलाये।" द्रोण ने जवाब देते हुए कहा।

"आचार्य ! सिंधुराज जयद्रथ ने सबको रोका। इसलिए उसमें सफल भी हुए।" दुर्योधन बोला।

"ठीक है। फिर भी दुर्योधन ! एक बात तो मेरे मन मे अब भी खटकती रहती है। अभिमन्यु का वध करने मे हमने युद्ध-विद्या के सारे शिष्टाचार और धर्म को एक ओर उठाकर रख दिया। अकेले अभिमन्यु को मारने के लिए हम छः महारथी इक्ट्ठे हुए ! अभिमन्यु के पास न तो रथ था, न घोड़ा न सारथी। और तो क्या, आक्रमण का जवाब देने के लिए उस समय उसको धनुष-बाण अथवा ढाल तलवार तक प्राप्त न थी। क्या ऐसे साधन-विहीन और निहत्थे व्यक्ति को मारकर हमने धार्मिक विजय प्राप्त की है ? फिर भी राजन् ! तुम्हारी खातिर मैंने यह सब कुछ किया।"

"आचार्य ! आपने जयद्रथ की रक्षा करने की बात कहकर उसे सिंध जाने से रोका और फिर भी अन्त मे उसे बचा तो नहीं सके !" दुर्योधन ने ताना मारते हुए कहा।

"दुर्योधन ! जिसकी मृत्यु आ पहुची हो उसे बचाने की शक्ति न तो द्रोण मे है, न किसी और में। अर्जुन और श्रीकृष्ण ने जिसको काल-कवलित करने का निश्चय कर लिया हो, उसे बचाने में मैं किसी को समर्थ नही पाता। दुर्योधन ! तुम्हें समझ लेना चाहिए कि जयद्रथ ने जिस दिन द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली, उसी दिन से वह मरा हुआ ही था।" आचार्य ने जैसे-को-तैसा जवाब देते हुए कहा।

"गुरुवर द्रोण ! अर्जुन की अनुपस्थिति मे युधिष्ठिर को पकड लेना सरल था। अकेला सात्यकि उनकी रक्षा कर रहा था। उसे भी आपने नहीं रोका। ऐसी दशा में युधिष्ठिर को पकड़ने की बात तो अब समाप्त हुई ही समझनी चाहिए। उनके पकड़े जाने पर ही मैंने अपनी सारी बाजी लगाई थी, वह अब

सारी पलट गई।" दुर्योधन ने कहा।

"दुर्योधन, दुर्योधन! किसी ने क्या-क्या नही किया, यह गिनाकर दोष निकालना तो बडा आसान काम है, लेकिन जिन महापुरुषों के हाथ में समाज-संचालन के बडे-बड़े तन्त्र होते हैं, उन्हे तो किसने क्या-क्या किया यह तोलकर उसकी कद्र करनी चाहिए। दूसरों के दोष ढूंढने की तेरी यह बुद्धि ही तेरे हाथ मे आया हुआ राज्य गुमावेगी और तेरे अपने आदमी तेरा कभी भी हृदय से साथ न देगे। अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु समाप्त हुआ, महाराज द्रुपद का अंत हुआ, महाराज विराट् मारे गये और सारी सेना को हिला डालने वाला वह घटोत्कच भी खत्म हुआ। लेकिन यह सब कुछ तेरी किसी गिनती मे ही नहीं आता!" आचार्य ने जरा रोष से कहा।

"आचार्य! निरर्थक-सी बातों के पूरा हो जाने पर भी जब-तक तथ्य की कोई एक बात भी न हो जाय तबतक मुझ-जैसे को सन्तोष कैसे हो सकता है?" दुर्योधन ने रूखेपन से जवाब दिया।

"दुर्योधन! बहुत हो चुका, अब चुप रह। जा, मैं तुझे वचन देता हूँ कि द्रोण कल पाचालों का वध करके ही रहेगा। दुर्योधन! मन में तो यह आता है कि तुझ जैसे कृतघ्न की सेवा करने के बजाय इन सारे शस्त्रास्त्र को तिलांजलि देकर किसी जंगल मे चला जाऊं और वहां और कुछ न हो सके तो हरिणों को घास खिलाते-खिलाते ही मृत्यु का आलिंगन करूं। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि द्रोण के भाग्य मे यह नहीं बदा है। जब से अकेले एक अश्वत्थामा की खातिर अपनी ग़रीब झोंपड़ी छोड़कर बाहर निकला हू तब से उस झोंपड़ी के लिए बराबर तरसता रहा हूं, लेकिन वह झोंपड़ी निरन्तर दूर-ही-दूर होती गई है। और दुर्योधन! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूं वह मै ही नहीं, मेरा

काल बोल रहा है। जा, कल सुबह द्रोण को देख लेना।

मेरे सिर का यह सेनापति का ताज अब चुभने लगा है, यह कवच भार रूप प्रतीत होने लगा है और हाथ इन सब शस्त्रास्त्रों को छूना नहीं चाहते। आज तेरे वचनों से घायल होकर मुझे अग्निवेश के आश्रम के दिन याद आ रहे है। अच्छा दुर्योधन, अब जा और निश्चय रख कि कल द्रोण तेरे कहने योग्य कोई बात बाकी न रख छोड़ेगा। इससे अधिक मेरी आंखों के सामने अब और कुछ दिखाई नहीं देता। इसलिए कह नहीं सकता।"

यह कहकर द्रोण चुप हो गये और दुर्योधन प्रसन्न होता हुआ डेरे से विदा हुआ।

: ६ :

द्रोण-वध

कुरुक्षेत्र के मैदान पर पन्द्रहवा दिन हुआ और द्रोण कौरव-सेना के मोरचे पर चले। युद्ध को चलते हुए चौदह दिन बीत चुके थे और अक्षोहिणी-पर-अक्षौहिणी समाप्त होती जा रही थी, किन्तु इतने पर भी युद्ध का अन्त दिखाई नहीं पड रहा था। दुर्योधन के मन मे अत्यन्त उद्विग्नता रहती थी। इसलिए आचार्य अपने मन में यह निश्चय करके निकले थे कि आज या तो वह स्वय समाप्त हो जायगे या पाचालों को समाप्त करके रहेगे।

युद्ध आरम्भ हुआ और उसके साथ ही द्रोण की घोर संहार-क्रिया भी आरम्भ हुई। पाण्डव योद्धा एक के बाद एक धराशायी होने लगे। सारे युद्ध-क्षेत्र में रथों के साज-बाज, टूटे हुए पहिए, हाथी-घोड़ो के सिर और धड, योद्धाओं के कटे हुए हाथ, पैर, धड और सिर चारों ओर फैलने लगे। आचार्य द्रोण पाडव-सेना को आज इस तरह अपने सपाटे में ले रहे थे मानो

शिशिर ऋतु के अन्त मे विंध्याचल के किसी जगल मे लगा हुआ दावानल वहां के घास, वृक्ष, पशु और पक्षियों को अपने सपाटे मे ले रहा हो। उनका रूप भी आज प्रलय काल की अग्नि के समान प्रतीत होता था। रथ मे बैठकर सारे युद्ध-क्षेत्र मे घूमते हुए वे किस समय तरकस मे से बाण निकालते हैं, किस समय उसे धनुष पर चढ़ाते हैं, कब धनुष की प्रत्यचा खींचते हैं और कब बाण छोड़ते हैं, यह कोई समझ नहीं पा रहा था।

द्रोण के हाथों इस सहार को देखकर पाडव आश्चर्य-चकित रह गये। इसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—"अर्जुन! अपने आचार्य को देख। ऐसा प्रतीत होता है मानो आज साक्षात् धनुर्वेद मनुष्यरूप धारण करके युद्ध-क्षेत्र मे अवतीर्ण हुआ हो। द्रोण इस समय द्रोण नहीं, साक्षात् काल से दिखाई दे रहे हैं।"

"नि सन्देह आज आचार्य अपने वास्तविक रूप मे चमके हैं। इस समय उनके सामने सेना किस तरह टिक सकती है?" अर्जुन ने कहा।

"टिकने की बात ही कहां है! यदि आधा दिन भी द्रोण इसी तरह लड़ते रहे तो तुम सबको युधिष्ठिर को राज-मुकुट पहनाने की आशा छोड़ देनी होगी। इसलिए अर्जुन, अब विचार करने का समय नहीं है। जल्दी ही ऐसा उपाय होना चाहिए, जिससे कि द्रोण हथियार छोड़ बैठे। यदि उनके कानों मे, 'अश्वत्थामा मारा गया'। ये शब्द पड जायं तो निश्चय ही वे हथियार छोड़ देंगे। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

श्रीकृष्ण का कहना तो ठीक था, लेकिन अर्जुन को यह मार्ग उचित प्रतीत नहीं हुआ। जिन आचार्य से जीवन की अत्यन्त दुर्लभ विद्या प्राप्त की, जिनकी कृपा से सर्वश्रेष्ठ धनु-र्धारी की पदवी प्राप्त की और नित्य जिनके चरणों में प्रणाम

करके युद्ध को आरम्भ करता था, उन्हीं आचार्य को इस तरह छल से मारना उसे नहीं भाया।

किन्तु भीम श्रीकृष्ण की बात सुन चुका था। इसलिए उसने मन मे धर ली। पाण्डव-सेना मे अश्वत्थामा नाम का एक हाथी था, तुरन्त ही उसे मारकर द्रोण के रथ के निकट पहुच जोर से चिल्ला उठा। 'अश्वत्थामा मारा गया, अश्वत्थामा मारा गया।'

द्रोण के कानों मे "अश्वत्थामा मारा गया" इन शब्दों की झनकार पडी, इसलिए एक क्षण के लिए तो वह स्तब्ध हो गये, किन्तु तुरन्त ही सावधान हो गये और सोचने लगे कि 'अश्वत्थामा इस तरह मर कैसे सकता है? भीमसेन के कहने का क्या भरोसा? अभी जो उनका मन क्षुब्ध हो उठा था, इस खयाल के आते ही वह फिर स्थिर हो गया और उन्होंने पहले से भी अधिक वेग से सहार-कार्य शुरू कर दिया। आज पांचालों को समाप्त कर देने का उनका संकल्प था। इसलिए उन्होंने अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, जिससे तुरन्त ही अनेक शस्त्रास्त्र एक साथ पाण्डव-सेना पर टूट पड़े।

लेकिन ब्रह्मास्त्र के छूटते ही द्रोण की आंखों के सामने ऋषि-मुनियों की मूर्त्तिया आकर खड़ी हो गईं और उनसे कहने लगीं, "भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य! आपने आज यह क्या किया? ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किस अवस्था मे होता है अपने इस आवेश मे आप यह तक भूल गये? जिन शत्रुओं के विरुद्ध ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना हो उनके अधिकार का आपने विचार तक न किया? मुनि अग्निवेश के शिष्य द्रोण! क्या आपको हमें यह बताने की भी आवश्यकता है कि विद्या-ससार के कल्याण के लिए है, सहार के लिए नहीं।" आप तो ब्राह्मण-जीवन के स्वप्नो का पोषण करने वाले

ठहरे, तिस पर भी आज अस्त्र-विद्या का ऐसा दुरुपयोग कर रहे हैं, जैसा कोई आर्य क्षत्रिय भी करना पसन्द न करेगा! आचार्य! जरा सोचो! जरा अपने अन्तर मे दृष्टि करके देखो। आपकी तो ऋषि-मुनियों के सघ में ही शोभा है, जगली-पशुओं की तरह एक-दूसरे को फाड़-खाने वाले इन योद्धाओं के बीच आप नहीं सोहते। लोक-सहार का यह घोर कृत्य आपको शोभा नहीं देता। इसलिए अपने ब्रह्मास्त्र को वापस लो और युद्ध के इस दारुण कृत्य से निवृत्त होओ।"

ऋषि-मुनियों के शब्द मानों वायु से झंकृत होकर द्रोण के कानों में पहुँच रहे हों इस प्रकार द्रोण ने उन्हे सुना और गहरी निःश्वास ली। पिता भरद्वाज और गुरु अग्निवेश का ब्राह्मण-जीवन उनकी आंख के सामने मूर्तरूप धारण करके खडा हुआ दिखाई देने लगा। जिस दिन द्रुपद के पास जाने के लिए घर से निकले थे, उस दिन की याद हो आई और उसके बाद से वह किस तरह ब्राह्मण-जीवन से दूर-से-दूर हटते गये इसके अनेक चित्र उनके स्मृति-पटल पर आने लगे। उनके शरीर से पसीना बहने लगा और हाथ धीमे पड़ गये।

इसी बीच भीमसेन उनके रथ के पास पहुचकर कहने लगा—"द्रोणाचार्य! धिक्कार है आपको! आपका प्यारे से प्यारा पुत्र अश्वत्थामा मारा गया और फिर भी आप शस्त्र नहीं छोड़ते! गुरुदेव! ब्राह्मण होकर भी आप इन शस्त्रास्त्रों से लिपटे हुए है? अश्वत्थामा तो गया। यदि सचमुच ही वह आपको प्यारा था तो अब लड़ना छोड़िये और अपने प्यारे पुत्र की याद मे भगवान् का स्मरण कर कृतार्थ हूजिए।"

ऋषि-मुनियों के वचनों से शिथिल हुए द्रोण भीम के ये शब्द सुनकर और भी शिथिल हो गये। "क्या सचमुच मेरा

झूठ कहे भी क्यों ? तब क्या मेरा अश्वत्थामा गया ? पुत्र ! तुझे अपने इस वृद्ध पिता की भी दया नहीं आई ? किन्तु, नहीं। अश्वत्थामा इस तरह मेरे पहले मर नहीं सकता। फिर भी भीम कहता है कि वह मर गया। लाओ, जरा युधिष्ठिर से पूछूं। युधिष्ठिर अजातशत्रु हैं, अखिल विश्व का साम्राज्य मिलने पर भी वे असत्य भाषण न करेंगे। इसलिए उनसे पूछना ठीक होगा। यह सोचते हुए वह युधिष्ठिर के पास पहुँचे और कहने लगे— "युधिष्ठिर ! भीमसेन कहता है कि अश्वत्थामा मारा गया। तू मेरा शिष्य है और संसार तुझे अजात शत्रु कहता है। अत. मैं तुझसे जानना चाहता हूँ कि सच बात क्या है।"

आचार्य का प्रश्न सुनकर युधिष्ठिर उलझन मे पड़ गये। उनके सिर पर बडा धर्म-संकट आ पड़ा। एक ओर द्रोण सूखी घास को जला डालने वाले दावानल की भांति सारी पाण्डव-सेना को जलाये डाल रहे थे और आधे दिन भी उनका यह संहार-कार्य जारी रहता तो सारी पाण्डव सेना के समाप्त हो जाने कीस्थिति आ सकती थी। इसलिए युधिष्ठिर के सामने यह प्रश्न था कि उन्हे इस संहार-कार्य से किस तरह रोका जाय ? अपने लिए प्राण-त्याग करने के लिए आये हुए योद्धाओं की रक्षा वे न करे तो और कौन करे ? दूसरी ओर उनके सामने प्रश्न था अपने प्रिय सत्य की रक्षा का–शरीर से ही प्रिय नहीं, प्राणों से भी अधिक प्रिय, भाई-बन्धुओं से ही नहीं, हस्तिनापुर के राज्य से ही नही, इन्द्र के इन्द्रासन और अखिल विश्व के साम्राज्य से भी अधिक प्रिय सत्य की रक्षा का। क्या ऐसे प्रिय सत्य को छोड़ा जाय ? उनके हृदय में भयंकर मन्थन शुरू हुआ।

इतने मे ही श्रीकृष्ण ने उनके पास पहुच कर धीमे से कहा— "महाराज युधिष्ठिर आपको मालूम होगा कि अभी भीम अश्वत्थामा नामक हाथी को मार चुका है। अत. आप यह तो कह

ही सकते हैं कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोणाचार्य आज जिस तरह लड़ रहे हैं, यदि थोडी देर उसी तरह और लड़ते रहे तो आपको हस्तिनापुर के राज्य की आशा सर्वथा छोड़ देनी होगी। मैं यह समझ सकता हू कि द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा नहीं मारा गया। इसलिए आपको यह असत्य भाषण करते हुए असमजस हो रहा है, किन्तु आपको युद्ध मे विजय प्राप्त कर हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठना हो, और इससे भी अधिक यदि आपको अपने लिए प्राणों का विसर्जन करने के लिए आये हुए इन योद्धाओं के प्राणों की जरा भी परवाह हो तो 'अश्वत्थामा मारा गया' यह कहे बिना आपकी गति नहीं है। फिर जैसा आप उचित समझें करें।"

महाराज युधिष्ठिर कभी के इधर-उधर झुकने लगे थे। सत्य और सांसारिक लाभों के बीच उनका अन्तरात्मा कभी का झोके खाने लगा था। इसलिए श्रीकृष्ण के वचन सुनकर उनका हृदय और भी आगे बढ़ा और उनके मुंह से निकल गया "अश्वत्थामा मारा गया।"

किसी जीवित व्यक्ति पर बिजली गिरने पर जिस तरह निमिष-मात्र मे ही उसकी स्थिति बदल जाती है उसी तरह द्रोण के कानों में युधिष्ठिर के शब्द पड़ते ही उनकी स्थिति बदल गई—उनके हाथों में से शस्त्र छूटकर नीचे गिर पडे और सारी इन्द्रिया शिथिल हो गईं। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो उनका प्राण गहराई में नीचे उतर गया हो, और वे मूढ़ की तरह रथ में बैठे रह गये। भरद्वाज के पुत्र, अग्निवेश के शिष्य, कृपी के प्रिय पति, द्रुपद के आरम्भ के मित्र और बाद के कट्टर शत्रु, पाण्डव-कौरवों के आचार्य, शस्त्रास्त्र विद्या के मूर्तिमान अवतार और अश्वत्थामा के लिए जीवन धारण कर रहने वाले द्रोणाचार्य को इस स्थिति में देखकर द्रुपद का पुत्र और पांचाली का

भाई धृष्टद्युम्न, जो द्रोण के वध के लिए ही महाकुण्ड से उत्पन्न हुआ था, तत्काल उनके रथ पर जा चढ़ा, उनके सारथी को मार दिया और दूसरे ही क्षण उनके सिर के बाल पकड़कर सिर धड़ से अलग कर दिया और जोरों से जयघोष किया।

युद्ध के दसवें दिन पितामह मारे गये, पन्द्रहवें दिन द्रोणाचार्य का वध हुआ और उसके साथ ही दुर्योधन की विजय की आशा भी टूट गई।

अश्वत्थामा

: १ :

संहार की प्रतिज्ञा

द्रोणाचार्य का वध होते ही सारी कौरव-सेना में हाहाकार मच गया। द्रोण एक प्रकार से धनुर्वेद की साक्षात् मूर्ति थे, क्षात्र तेज के मूर्तिमान अवतार थे, शत्रु के लिए स्वयं काल रूप थे, वे चाहते तो कुछ क्षणों मे ही पांडव सेना को ठिकाने लगा देते और निमिष मात्र मे ही शत्रु को परास्त कर दुर्योधन को विजय-छत्र पहना देते। पाचालकुमार धृष्टद्युम्न ने उन्हीं द्रोणाचार्य का सिर धड़ से जुदा कर दिया, इस समाचार से कौरवों के हौसले पस्त हो गये और सब अपनी-अपनी जान बचाने के लिए भागने लगे। कर्ण अपनी सेना लेकर युद्धक्षेत्र छोड़ गया, शकुनि ने भी अपना रथ छावनी की तरफ बढ़ा दिया, दुःशासन हक्का-बक्का होकर बड़े भाई को ढूंढ़ने लगा, अनेक सैनिक अपने-अपने रथ और हाथी-घोड़ों पर से उतर-उतर कर भाग गये, अनेक भयभीत होकर भागे तो बहुत-से दूसरों को भागते देखकर भाग खडे हुए। अमावस्या के भाटे के बाद समुद्र का पानी जिस तरह एक साथ उतरने लगता है उसी तरह घड़ी-भर पहले शौर्य से उभरती हुई कौरव-सेना द्रोण का वध होते ही मैदान छोड़कर तेजी से छावनी की तरफ भागने लगी।

कौरव-सेना की इस भगदड़ की ओर अश्वत्थामा की नजर पड़ी। अभी तक वह उसके एक पार्श्व मे रहकर शत्रुओ का सहार कर रहा था। अपने पिता द्रोण के वध का उसे पता न था। आसपास की भगदड़ देखकर वह अधीर हो उठा और अपनी ओर आते हुए दुर्योधन को देखकर कहने लगा—"राजन्! यह कौरव-सेना इस तरह क्यों भागी जा रही है? पिता द्रोण के हाथ मे शस्त्रास्त्रों के रहते यह भागने का विचार तक कैसे कर पा रही है? कम-से-कम मैं तो इस भगदड़ को सहन नहीं कर सकता।"

"अश्वत्थामा! मेरे हृदय मे इस समय कितने घाव लगे हैं, यह मैं तुम्हें किस तरह बताऊं!" दुर्योधन ने जवाब देते हुए कहा। "आह! आज मुझ जैसे ग्यारह अक्षौहिणी सेना के अधिपति की अपेक्षा एक सामान्य सैनिक तक कितना अधिक सुखी है? मेरा हृदय भर आया है, इसलिए कृपाचार्य, आप अश्वत्थामा की बातों का जवाब दे तो अच्छा हो।"

"राजन्! आप के हृदय पर आज कितना भार है, यह मैं अच्छी तरह समझता हूँ। इसलिए जिस समाचार के कहने मे आपकी जिह्वा नहीं खुलती, वह दु.खद समाचार मै कड़ा हृदय करके अपने भानजे अश्वत्थामा को सुनाता हू।" कृपाचार्य ने धीमे स्वर मे कहा।

"कौन-सा समाचार, मामा?" अश्वत्थामा ने पूछा।

"तेरे पिता द्रोण के वध का।" कृपाचार्य ने कह डाला।

"मामा, क्या कहते हो! मेरे पिता द्रोण मारे गये?" अश्वत्थामा ने व्याकुल होकर पूछा।

"हां, मारे तो गये ही, लेकिन इस तरह मारे गये कि सारी कौरव-सेना के हृदय मे तीर-सा चुभ गया।" कृपाचार्य ने जवाब दिया।

"सो, किस तरह ?"

"पाचाल-पुत्र धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया !"

"मामा, आपकी बात मेरी समझ में नहीं आती। द्रोण के हाथ में शस्त्रास्त्र रहते। और तो क्या, स्वयं काल की भी इतनी शक्ति नहीं कि उनकी तरफ नजर उठा सके।" अश्वत्थामा ने कहा।

"अश्वत्थामा, तू सच कहता है। द्रोणाचार्य तो आज प्रात. से ही किसी महारण्य में दावानल के घास को जलाने की भांति सारी पाण्डव-सेना को भस्मीभूत कर रहे थे। इससे स्वय श्रीकृष्ण को ऐसा लगने लगा था कि यदि द्रोण इसी तरह कुछ और समय तक लड़ते रहे तो सारी पाण्डव सेना एक-दो दिन में ही समाप्त हो जायगी।" कृपाचार्य ने कहा।

"तब फिर ? अश्वत्थामा ने पूछा।

"फिर क्या।" पाण्डवों की विजय के उत्सुक श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—अर्जुन, जरा आचार्य की ओर तो देख। प्रज्वलित दावानल मे जलने वाले कीट पतंगों की तरह अपने सैनिक आचार्य की तेजोग्नि मे पड़कर मौत के मुंह मे जा रहे है। आचार्य यदि आधा दिन भी इस तरह लड़ते रहे तो तुम पांडवों को विजय की आशा छोड़ देनी होगी।" कृपाचार्य ने जवाब दिया।

"श्रीकृष्ण ने ठीक ही कहा। लोग चाहे जो कुछ कहे, श्रीकृष्ण अपने इस युग के महापुरुष हैं। अच्छा, फिर क्या हुआ ?" अश्वत्थामा बोला।

"इसके साथ ही श्रीकृष्ण ने यह भी कहा कि आचार्य के हाथ में शस्त्र रहने तक किसी की हिम्मत नहीं कि उनकी तरफ देख सके। उनके हाथ से शस्त्रास्त्र छुड़ाने हों तो ऐसा उपाय

करना चाहिए जिससे 'अश्वत्थामा मारा गया' ये शब्द उनके कानों में पडे ।" कृपाचार्य ने बतलाया ।

"अश्वत्थामा तो अमर है ।"

"किन्तु श्रीकृष्ण का मत यही था कि अश्वत्थामा की मृत्यु के शब्द आचार्य के कान में पडने पर ही वे शस्त्रास्त्र छोड़ेंगे, और किसी उपाय से नहीं ।" कृपाचार्य ने कहा ।

"बहुत खूब ?" अश्वत्थामा बोला ।

"लेकिन श्रीकृष्ण की यह बात अर्जुन को अच्छी नहीं लगी और उसने उसे सुनकर अपना मुंह फेर लिया" । कृपाचार्य ने आगे कहा ।

"यह बात सव्यसाची अर्जुन के योग्य ही थी ।" अश्वत्थामा ने कहा ।

"किन्तु भीमसेन पास ही था । उसने यह बात सुन ली और सुनते ही नजदीक जाकर अश्वत्थामा नाम के एक हाथी को मार कर 'अश्वत्थामा मारा गया, अश्वत्थामा मारा गया' यह शोर मचा दिया ।"

"मामा जी ! भीमसेन जैसे लोग जब इस तरह की गड़बड़ करते हैं तो बड़ी परेशानी हो जाती है" अश्वत्थामा ने कहा ।

"परेशानी क्यों हो ?" कृपाचार्य ने पूछा ।

"परेशानी हुई । भीमसेन का कोलाहल जब आचार्य के कानों में पड़ा तो उन्हे बहुत क्षोभ हुआ, फिर भी उनका सहार-कार्य तो जारी ही रहा ।" कृपाचार्य बोले ।

"पिता ऐसे शोर से कैसे घबरा गये ?" अश्वत्थामा ने पूछा ।

"घबरा कैसे गये, उनका काल उन्हे बुला रहा था । भीमसेन ने उनके पास आकर जोर से आवाज लगाई 'अश्वत्थामा मारा गया । और पुत्र के मारे जाने पर भी लड़ने पर आचार्य को धिक्कारा ।" कृपाचार्य ने जवाब दिया ।

"लेकिन पुत्र के जीवित होते हुए आचार्य को फटकार बताने

वाला भीम होता कौन है ?" अश्वत्थामा ने आवेश मे कहा।

"कुछ भी हो, भीम की फटकार सुनकर आचार्य कुछ सहम गये और उसका कहना ठीक है या नहीं, इसका निश्चय करने के लिए वे युधिष्ठिर के पास गये।" कृपाचार्य ने बतलाया।

"सत्यवादी युधिष्ठिर के पास ?" अश्वत्थामा ने पूछा।

"हां।" कृपाचार्य ने जवाब दिया।

"फिर ?" अश्वत्थामा ने पूछा।

"आचार्य ने जब युधिष्ठिर से अश्वत्थामा के मारे जाने के सम्बन्ध में पूछा तब श्रीकृष्ण उनके पास ही थे। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की तरफ देखा और कभी स्वप्न में भी झूठ न बोलने वाले कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का संकेत पाकर कह दिया—"हां, अश्वत्थामा मारा गया।" कृपाचार्य ने जवाब देते हुए कहा।

"मामाजी! युधिष्ठिर झूठ बोले, यह तो गजब हो गया! कुरुक्षेत्र के युद्ध का परिणाम चाहे जो कुछ हो, साम्राज्य का मुकुट दुर्योधन के सिर पर रखा जाय अथवा युधिष्ठिर के, लेकिन युधिष्ठिर झूठ बोले इससे उनकी पराजय तो आज हो चुकी। आह! बेचारे युधिष्ठिर! मेरे और भीमसेन-जैसों के जीवन में तो सरल और सीधा सत्य ढूंढने से भी मुश्किल से मिलेगा, लेकिन वह तो आज ठेठ अन्तिम सीढी पर पहुच कर उससे फिसल पडे। खैर! फिर, पिताजी का क्या हुआ ?" अश्वत्थामा ने कहा।

"आचार्य ने युधिष्ठिर के शब्द सुनते ही हाथ से हथियार छोड़ दिये और आख मूंदकर रथ पर बैठ गये।" कृपाचार्य ने जवाब देते हुए कहा।

"शस्त्र छोड़ दिये ?"

"हां।"

"आह, पिताजी! आपने शास्त्र क्यों छोड़ दिये? आपका प्रिय पुत्र अश्वत्थामा तो यहां जीवित बैठा है।" अश्वत्थामा ने व्यथित हृदय से कहा।

"द्रोण के हाथ से हथियार रखते ही धृष्टद्युम्न रथ पर चढ़ दौड़ा और उनके बाल पकड़कर सिर धड़ से जुदा कर दिया।" कृपाचार्य ने बतलाया।

"पिता का सिर धृष्टद्युम्न ने काटा? धृष्टद्युम्न ने! आह, पाञ्चालकुमार! आज तूने गुरु-हत्या का महापाप किया। किन्तु क्या तुझे पता नहीं कि अश्वत्थामा अभी जीता है? पापी कहीं के! तूने अधमतापूर्वक पिता की हत्या की और अर्जुन यह सब देखता रहा? पाण्डव भी देखते रहे? श्रीकृष्ण ने भी उसे न रोका?" अश्वत्थामा आवेश में कहता गया।

"अर्जुन ने तो जोर देकर धृष्टद्युम्न से कहा था कि गुरुजी का वध नहीं करना है, इन्हें जीवित पकड़ लाना है।" कृपाचार्य ने बताया।

"और तिस पर भी उस नीच पाञ्चालकुमार ने उनका वध कर डाला? धृष्टद्युम्न! तुझे इस बात का जरा भी खयाल न आया कि द्रोण के एक सिर के बदले कितने पाण्डवों के सिर तराजू में तौलने पड़ेंगे? द्रुपद के छोकरे! याद रखना, द्रोण के भी एक लड़का है और वह भी पिता का बदला लेना जानता है।" यह कहता हुआ अश्वत्थामा क्रोध से फुंकार मारने और आँखें चढ़ाने लगा।

"अश्वत्थामा! शान्त हो, शान्त हो!" कृपाचार्य ने उसे समझाने की चेष्टा करते हुए कहा।

"मामा! पिता की मृत्यु के समाचार ने मुझे व्याकुल कर दिया है। मैं सुध-बुध गवा बैठा हूँ और मेरी आँखें धृष्टद्युम्न को ताक रही हैं। युद्धस्थल में उसे देखकर मैं क्या कर डालूंगा,

कुछ कहा नही जा सकता।" अश्वत्थामा ने रोषपूर्वक कहा।

"प्रिय अश्वत्थामा! इतना उतावला न हो, तेरे रोम-रोम मे आग बरस रही है। जरा उसे शान्त कर। द्रोण तो अब स्वर्ग को सिधारे। तू मन को विह्वल न कर।" कृपाचार्य ने उसे शान्त करने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"मामा! मामा! पिता मुझे छोड़कर स्वर्ग-धाम को चले गये, इस विचार-मात्र से ही मै विकल हो उठता हूं। पिता! मेरे जन्म के आरम्भ काल से ही आप मेरे लिए जिये, मेरे लिए हस्तिनापुर की खाक छानी; मेरे लिए दुर्योधन का साथ दिया और अन्त में मेरे लिए ही प्राण त्यागे! पिता! हा, पिता! आपके ऋण से मैं किस प्रकार उऋण हो सकूंगा!" अश्वत्थामा ने विलाप करते हुए कहा।

धृष्टद्युम्न का वध करके तुम उस ऋण से उऋण हो सकते हो।" कृपाचार्य ने कहा।

"इतना ही काफी नहीं है। द्रोण और पाञ्चाल वशों के बीच परम्परा से वैर चला आ रहा है। आज धृष्टद्युम्न ने पिता का वध करके इस जलती हुई अग्नि में फूंक मारकर उसे और भी भड़काया है। अश्वत्थामा अकेले धृष्टद्युम्न का ही नहीं, सारे पाञ्चाल-परिवार के सिर धड़ से जुदा करके ही अपनी आत्मा को तृप्त कर सकता है और तभी उसका पितृ-तर्पण पूरा हो सकता है। अश्वत्थामा यह न कर सका तो मामा, तुम समझना कि तुम्हारी बहन के गर्भ से पत्थर पैदा हुआ था, अश्वत्थामा नहीं।" अश्वत्थामा ने आवेश के साथ कहा।

"अश्वत्थामा, यह प्रतिज्ञा बड़ी कड़ी है। जरा विचार कर मुंह से शब्द निकालो।" दुर्योधन ने कहा।

"राजन्! पिता ने तो मेरे लिए प्राण तक गवा दिये और मैं पाञ्चालों का वध करने में सोच-विचार करूं? राजन्!

मेरे लिए तो आश्चर्य की बात यही है कि इस प्रकार पिता का सिर काटने वाला अभी तक अपना सिर धड़ पर धारण किये जीवित मौजूद है । और हाँ, मामा ! तुम तो मुझे पागल ही कहा करते हो ?"

"मैं तो अभी भी वही कहता हूँ । पाण्डवों के वध का विचार करना कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है ।" कृपाचार्य ने कहा ।

"किन्तु मामा ! धृष्टद्युम्न ने बाल पकडकर पिता का सिर काट लिया क्या यह बात ऐसी-वैसी है ! आप याद रखना, आपका यह भानजा पाण्डवों मे ऐसा तहलका मचायगा कि उनके सिर तो धड़ से जुदा होंगे ही, साथ अश्वत्थामा का नाम सुनकर पाञ्चाल स्त्रियों के गर्भ गिरने लगेंगे और एकाध बचा-खुचा पाञ्चाल-वंशी बाकी रहा भी तो संसार के किसी कोने-कचरे में लुक-छिपकर उसे अपना जीवन बिताना होगा ।" अश्वत्थामा ने दृढ़तापूर्वक कहा ।

"आचार्यसुत ! यदि ऐसा हुआ तब तो बहुत भारी काम होगा। तब तो युधिष्ठिर को भी पता चल जायगा कि सत्य का त्याग करके भी वह पृथ्वी का साम्राज्य प्राप्त न कर सके ।" दुर्योधन ने बढावा देते हुए कहा ।

"राजन् ! वही होगा । मैं तो हृदय से इस बात की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ।" अश्वत्थामा ने कहा ।

: २ :

वैर की अग्नि

कुरुक्षेत्र से कुछ ही दूरी पर एक मोटे बरगद के पेड़ के नीचे रात को पहरा लगा हुआ था ।

"कौन वहाँ घूम रहा है ?" बरगद के नीचे लेटे हुए कृपाचार्य ने आवाज देकर पूछा ।

"मामा ! मैं हूँ अश्वत्थामा"

"बेटा, अभी तू सोया नहीं ?" कृपाचार्य ने बैठे होते हुए पूछा। इतने ही मे पास मे सोते हुए कृतवर्मा ने पूछा—"अश्वत्थामा ! वहाँ रथ के पास क्या कर रहे हो, क्या भोर हो गई ?"

"दिन निकलने में तो अभी बहुत देर है।" अश्वत्थामा ने जवाब दिया।

"तो फिर रथ किस लिए जोड रहा है ? यहाँ आ, मेरे पास सो जा।" कृपाचार्य बोले।

"मामा ! आप ही के पास तो सो रहा था। बहुत देर तक करवटें लेता रहा, लेकिन नींद आती ही नहीं।" अश्वत्थामा ने जवाब दिया।

"हृदय मे आग जल रही हो तब नींद आवे भी तो कैसे ?" कृतवर्मा ने कहा।

"आग तो हमारे हृदय मे भी जल रही है।" कृपाचार्य बोले।

"मामा ! आग-आग में भी अन्तर होता है।" मुँह फेरते हुए अश्वत्थामा ने कहा।

"अश्वत्थामा ! क्या तू समझता है कि हमारे हृदयों मे पाण्डवों और पाञ्चालों के प्रति कुछ कम दाह है ? क्या तू यह समझता है कि महाराजा दुर्योधन की अन्तिम इच्छा की पूर्ति के लिए हमारे मन मे कम लगन है ?" कृपाचार्य सहन न कर सके हों इस प्रकार बोले।

"मामा इसमे समझने को तो कोई बात ही नहीं है। महाराज दुर्योधन के पास से विदा होकर इस पेड़ के नीचे पहुँच कर आप दिन निकलते ही पाञ्चालों की छावनी पर धावा कर देने का निश्चय करके दोनों जने सो गये और मैं विकलता के मारे करवटें बदलता-बदलता अन्त में उठकर रथ जोडने के लिए चल दिया। मै अभी तो पांचालों की छावनी पर जाता हूँ।" अश्वत्थामा ने ज़रा कटाक्ष करते हुए कहा।

"अभी, इतनी रात को ?" कृपाचार्य ने आश्चर्य से कहा।

"मामा! अश्वत्थामा के लिए तो अब रात और दिन एक समान ही है।

"अश्वत्थामा! तेरा सिर फिर गया मालूम होता है।" कृपाचार्य ने कहा।

"आप सच कहते है मामा! अजातशत्रु युधिष्ठिर गुरु की हत्या के लिए असत्य बोलते हैं, पिता द्रोण ऐसे वचन पर विश्वास कर शस्त्र छोड़ बैठते हैं, पांचालकुमार धृष्टद्युम्न शस्त्र-रहित गुरु का सिर काट लेता है, बलराम और श्रीकृष्ण के देखते-देखते भीमसेन महाराज दुर्योधन की जंघा पर गदा का प्रहार करता है, और जिस मस्तक पर हस्तिनापुर का राज-मुकुट शोभित होता है उस पर चोट पहुँचाता है, इन सब दृश्यों से अकेले अश्वत्थामा का ही नहीं बल्कि सारे मानव-समाज का सिर चक्कर खाने लगा है। इतने पर भी पाडव और पांचाल अभी तक किस के भाग्य से जीवित है।" अश्वत्थामा ने आवेश के साथ जवाब दिया।

"भाई, दिन निकलते ही मै और मामा तेरे साथ चलेंगे। हम ने पाचालों को परास्त करने का महाराज दुर्योधन को बचन दिया है, यह बात मै भूल नहीं गया हूँ।" कृतवर्मा ने कहा।

"कृतवर्मा, मुझे क्षमा करो। अश्वत्थामा दिन निकलने तक की प्रतीक्षा करने की स्थिति मे नहीं है। यह रात्रि मुझे बुला रही है; यह अन्धकार अपना सहयोग देने के लिए हाथ बढा रहा है, इस पेड़ पर का घुग्घू सोते हुए सब कौओं को मारकर मुझे कभी का गुरुमत्र पढा रहा है और वहाँ उस भूमि पर जीवन के अन्तिम साँस लेते हुए महाराज दुर्योधन मझे फट-

कार रहे हैं। मामा! आप जानते हैं कि आज तो इन महाराज के एक श्वास का भी मूल्य है। इसलिए मैं रात को व्यर्थ ही गँवा नहीं देना चाहता।" अश्वत्थामा ने कहा।

"अश्वत्थामा! तू कहता है वह सब कुछ सच है, किन्तु रात्रि के समय शत्रु पर धावा बोलना उचित नहीं। हम आर्यों के और राक्षसी आदि के युद्धों में यह भी एक भारी अन्तर है। हम आर्य युद्ध तो करते हैं, किन्तु अपना मनुष्यत्व गँवाकर, पशु न बन जाने की दृष्टि सामने रखकर, युद्ध समाप्ति के बाद हम सब खिलाड़ियों की तरह आपस मे मिल-जुलकर रहते हैं। इस प्रकार रात्रि हमारा युद्ध-विराम है। हमारे युद्ध-शास्त्रों ने युद्ध के समय उत्पन्न पशु-वृत्ति को मिटा देने और मानव-हृदय के उच्च अंकुरों को विकसित करने के समय को पवित्र समय माना है। इसलिए इस समय युद्ध करके हमें उसे अपवित्र न कर देना चाहिए।" कृपाचार्य ने खिन्न होते हुए कहा।

"मामा! आप कैसी बात करते हैं? यह सारा युद्ध ही अपवित्रता की मूर्ति है।" अश्वत्थामा ने ज़रा हँसते हुए कहा।

"अश्वत्थामा! यह ठीक है कि जहाँ चचा भतीजे का सिर काट रहा है, मामा भानजे को पृथ्वी पर लिटा रहा है और भाई भाई के प्राण ले रहा है वहाँ मानव-हृदय की पवित्रता के लिए स्थान नहीं है। किन्तु आपसी झगड़ों को सुलझाने के लिए जब तक हमारे पास कोई दूसरा उपाय न हो, तब तक ऐसा युद्ध अनिवार्य ही है। किन्तु इसमें भी मनुष्य ने मानवता के कतिपय तत्त्वों को स्थान देने का प्रयत्न किया है। उन्हीं में से युद्ध का शिष्टाचार पैदा होता है। युद्ध में शत्रु का वध तो किया जाय, किन्तु वह भी वीरता के अमुक मान का पालन करके। उदाहरण के लिए, गदा-युद्ध तो किया जाय, किन्तु उसमें किसी की नाभि के नीचे प्रहार न किया जाय—यह गदा-युद्ध का शिष्टाचार है।

इस प्रकार के शिष्टाचार युद्ध की भीषणता मे भी मानव-हृदय का सन्देश पहुँचाते है, और मनुष्य चाहे जितना पशु ही बन जाय, फिर भी अन्त में है वह मनुष्य ही, यह सिद्ध करता है।" कृपाचार्य ने जवाब देते हुए कहा।

"मामा! मुझे तो ये सब बाते मनुष्य की निरी पशुता को ढकने के लिए शास्त्रकारों का कोरा ढकोसला प्रतीत होता है।" अश्वत्थामा ने सिर खुजाते हुए कहा। "मनुष्य पशु ही है और पशु ही रहेगा। इस प्रकार के शिष्टाचारों से उसके पशुत्व को ढककर धर्माधर्म के ये ढोग क्यो खडे करते हो? पशु तो पशु ही है। वह एक दूसरे का शिकार करता है और जब मौत आती है तो मर जाता है। आपके इन युद्ध-विराम, रात, धर्मयुद्ध और शिष्टाचार आदि सबको धता बताकर मनुष्य एक बार पूरा पशु बन जाय तो ही अच्छा है। मनुष्य यदि सचमुच मनुष्य ही होगा, पशु नही, तो अन्त मे थक जायगा, और अपनी पशुता को और उसी तरह इस प्रकार के युद्धों को छोड़ भी देगा। किन्तु आप शास्त्रकार लोग, एक बार मनुष्य को जी भरकर पशु बन जाने दो न?"

"अश्वत्थामा! कैसी मूर्खता-भरी बाते करता है।" कृपाचार्य से न रहा गया और बीच में ही बोल पडे। "तेरे हिसाब से तो फिर धनुर्वेद की ये सब मर्यादाए निरी मूर्खता ही होंगी? मेरे मत से तो पाडव और पाचाल निश्चिन्त होकर सोते हो उस समय उनपर धावा करना सुस्पष्ट अधर्म है।"

"मै भी इन्कार कहा करता हूँ। मै तो मानता हूँ कि यह युद्ध, यह मार-काट यह कटा-कटी स्वय अधर्म है।" अश्वत्थामा ने कहा। "किन्तु, साथ ही मैं मानता हूँ कि जब हमने इस महान् अधर्म को अङ्गीकार किया, इतना ही नही, धर्म समझा, तब ऐसे छोटे-छोटे अधर्म तो उसके निरे बच्चे हैं। शत्रु को जब

मारना ही है तो फिर दिन को ही मारिये या रात को, दोनों समान ही है। रात को मारने से बिचारा सोते हुए ही प्राण गॅवा देगा, इससे उल्टे और दुःख से बच जायगा।"

"अश्वत्थामा! ऐसा प्रतीत होता है कि द्रोणाचार्य की सारी विद्या का तुझपर उलटा असर हुआ है। शास्त्रकारों ने तो सोते हुए सिंह तक के शिकार को वर्जित ठहराया है।" कृपाचार्य ने कहा।

अश्वत्थामा इस पर फिर हॅस पड़ा और कहने लगा—"यह तो इसलिए है कि सोते हुए सिंह को मारने मे वीरता कम रहती है। इसलिए जिसे अपनी बहादुरी दिखानी हो वह सिंह को जगाकर उसका शिकार करे। किन्तु जिसके लिए वीरता-अवीरता का कोई प्रश्न न होकर केवल सिंह के प्राण लेने का ही प्रश्न हो, वह उसे सोते हुए को मारे या जगाकर, दोनों एक-सा ही है। अश्वत्थामा को अपनी वीरता दिखानी हो तो वह सोते हुए शत्रुओं को न मारे। किन्तु आज मेरे लिए तो वीरता का कोई प्रश्न ही नहीं है। इस बात को तो संसार आज तक कई बार देख चुका है कि अश्वत्थामा वीर है और वीर-पुत्र है। इस समय तो मेरे सामने पांचालों के वध का प्रश्न है। इस काम के लिए मुझे दिन की अपेक्षा रात अधिक अनुकूल प्रतीत हो रही है। इसलिए, मामा! आपको वीरता दिखानी हो तो भले ही आप दोनों सुबह आना, मै तो इसी समय जा रहा हूॅ।"

"अश्वत्थामा! हमे भी कोई वीरता का ढिंढोरा नहीं पीटना है।" कृतवर्मा ने कहा। "किन्तु हमारे लिए शोभा की बात यही है कि हम मारे तो उसे ललकार कर मारे। सोते हुए पर आक्रमण करना तो निरे कायर का काम है।"

"तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है, किन्तु अश्वत्थामा आज ऐसी स्थिति पर पहुँच गया है कि कायर कहलाकर भी वह आज

रात को ही आक्रमण करेगा। इन पांचालों के नामों का खयाल करता हूँ तो मेरे रोएँ खड़े हो जाते हैं और उनमें से आग झड़ने लगती है।" अश्वत्थामा ने रोषपूर्वक कहा। "मामा! मामा! मैं आपसे क्या कहूँ? कोई ऐसा वेग मुझे ढकेले दे रहा है जिसे मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, इसलिए मैं बिवश हो गया हूँ। आप मुझे रोकेंगे तो आत्म-हत्याके सिवा मेरे लिए कोई दूसरा मार्ग न बचेगा।"

"अश्वत्थामा! तू पागल हो जायगा।" कृपाचार्य ने कहा।

"मामा! यही चाहता हूँ।" उसने कहा। "आज ये शस्त्रास्त्र, यह ज्ञान, यह यज्ञोपवीत, सब भाररूप प्रतीत होते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि यह सिर भी धड से उतर जाय तो बोझ हलका हो जाय। मामा! इस समय मै आपकी रात-दिन अथवा धर्माधर्म की झंझट मे पड़ना नहीं चाहता। जिस तरह भी हो पाचालों की जड खोद फेंकूँ, बस मेरे मन मे तो आज यही एक बात, यही एक काम और यही एक ध्येय समा रहा है। फिर चाहे यह धर्म हो या अधर्म, यह रात मे हो या दिन मे, पांचालों को नाश किये बिना हृदय की आग नहीं बुझेगी।"

"अश्वत्थामा!" कृपाचार्य ने सम्बोधन करते हुए कहा, "मनुष्य के हृदय मे तो ऐसी न मालूम कितनी आगें जलती रहती हैं, सिर्फ हमे उनका ज्ञान नहीं होता। आज एक को बुझाने के लिए पीछे पडने पर कई दूसरी धधकती हुई प्रतीत होंगी। अश्वत्थामा! मैंने तेरी अपेक्षा दो चौमास अधिक देखे हैं। तुझे यह न समझ बैठना चाहिए कि हृदय की आग यों ही बुझ जाती है। कई बार तो एक को बुझाने का प्रयत्न करते हुए मनुष्य दूसरी दस नई आग भडका बैठता है और अन्त मे अपने चारों ओर धधकती अग्नि मे स्वयं ही जलकर भस्मीभूत होजाता है।"

"मामा! मुझे न रोको।" अश्वत्थामा ने व्यग्रतापूर्वक कहा। आज आपके शब्द मेरे कानों में गूँजते है, किन्तु फिर भी मेरा मन उन्हें सुनना नहीं चाहता। आज तो आपका भानजा जाकर ही रहेगा। मुझे आशीर्वाद दीजिए।"

"किन्तु हम आ ही रहे हैं न ?" कृतवर्मा ने कहा।

"तुम पीछे आना, मुझे आगे जाने दो। ऐसा प्रतीत होता है पाचालों का काल मुझे बुला रहा है।" यह कहते हुए अश्वत्थामा ने अपना रथ पूरे वेग से पांचालों की छावनी की ओर हाँक दिया।

: ३ :

अंधेरी रात में

कुरुक्षेत्र इस समय भारतवर्ष का हृदय बना हुआ है। आज अठारह दिनों से वहाँ भारत के धर्माधर्म का लेखा लिखा जा रहा है, अठारह दिनों से हस्तिनापुर का राज-मुकुट वहाँ अपने लिए योग्य मस्तक की खोज कर रहा है। कुरुक्षेत्र के इसी मैदान पर संसार के अंधकार को वेधता हुआ अश्वत्थामा का रथ धृष्टद्युम्न की छावनी की तरफ बढा जा रहा है।

अश्वत्थामा जन्म से ब्राह्मण है और परमात्मा ने ब्राह्मण के मस्तक में इसलिए विद्यारत्न पैदा किया कि वह अपनी इस विद्या से संसार की सेवा करे। किन्तु अश्वत्थामा के भाग्य में कुछ और ही बदा था। द्रोण को वह प्राणों से भी अधिक प्रिय था, उसके दूध का प्रश्न हल करने के लिए द्रोण ठेठ द्रुपद के पास तक गये और द्रुपद को नीचा दिखाकर चैन ली; अश्वत्थामा के प्रति प्रेम के कारण ही उन्होंने उसे चुपचाप शस्त्र-विद्या की शिक्षा दी, उसकी ममता के कारण ही द्रोण ने हस्तिनापुर रहना स्वीकार किया और अन्त में उसी की ममता के मारे शस्त्र छोड़कर मृत्यु का वरण किया।

द्रोण का ऐसा लाड़ला अश्वत्थामा जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी, ब्राह्मण न रहा था। उसका सारा जीवन हस्तिनापुर के प्रपञ्चों और शस्त्रास्त्रों की झनकार के बीच ही बीता था। द्रोण की प्रतिभा और गौरव ने अश्वत्थामा को कुछ अभिमानी भी बना दिया। आज वह उन्ही पिता के वध के कारण पागल हो उठा था। पिता के वध से चक्कर खाया हुआ उसका मस्तिष्क कुछ विकृत-सा हो गया था, उसका सारा शरीर कॉपने लगा था, उसकी रक्ताभ आँखे देखते हुए भी मानो देख नहीं पाती थी, घोडे की लगाम, हाथ का चाबुक, अपना रथ और सारा मार्ग कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था, उसकी आँखे देख रहीं थी केवल सुदूर छावनी में अपने पलंग पर सोये हुए एक-मात्र धृष्टद्युम्न को।

पाञ्चालों की छावनी के पास पहुँचते ही अश्वत्थामा रथ पर से उतर पडा, घोड़ों को खोल दिया और स्वयं छावनी का एक चक्कर लगाने के लिए चल पडा। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी, दीपक मन्द-मन्द जल रहे थे, रात्रि ने सारे डेरों पर अपना लिहाफ उढ़ा रखा था, केवल दूरी पर एकाध शृगाल बोल रहा था, बीच-बीच में पहरूवे का पगरव सुनाई पड़ता था, और दूर से—बहुत दूर से महाराज दुर्योधन की आँखे अन्धकार को वेधकर अश्वत्थामा के सारे शरीर में व्याप्त व्यग्रता को टिकाये हुए थी।

अश्वत्थामा ने घूमते हुए छावनी का चक्कर लगाया और उसके सारे डेरों की गिनती की, पहरेदार को अच्छी तरह देखा और तुरन्त ही तरकश मे से तीर निकालकर उस पर चलाया। रात की शान्ति को वेधता हुआ तीर सन-सन करता हुआ चला, किन्तु पहरेदार का पहरा यथावत् जारी रहा। अश्वत्थामा जरा रुका और फिर तुरन्त ही दूसरा तीर चलाया। उसका भी कुछ असर न हुआ और पहरेदार के कदम वैसे ही पड़ते रहे।

यह क्या बात है ? अश्वत्थामा उत्तेजित हो उठा, और एक के बाद एक तीर चलाने लगा। दो चार, दस, बीस, पच्चीस, पचास, अनगिनत तीर चला डाले, लेकिन ऐसा मालूम होता था मानो पहरेदार उन सबको निगल जाता हो।

"अवश्य ही, यह पहरेदार कोई साधारण व्यक्ति नहीं है।" अश्वत्थामा ने निमिष-मात्र में ही कल्पना कर ली। वह सोचने लगा "जब कि अर्जुन तक मेरा एक भी तीर विफल नहीं कर सकता, वहाँ इस चौकीदार ने मेरे इतने तीर हवा मे चलाये गये तीरों की तरह बेकार कर दिये।"

उसने फिर तीर चला चलाकर अपना तर्कश खाली कर दिया, किन्तु व्यर्थ।

"क्या अकेला यह पहरेदार ही मेरा सारा समय खा जायगा और दिन निकलने से पहले धृष्टद्युम्न को समाप्त करने का मेरा सङ्कल्प निरा सकल्प ही रह जायगा ? पिता द्रोण! आपका पुत्र आज अवश्य ही आपका वैर चुका कर रहेगा। महाराज! दुर्योधन! विश्वास रखिये जीवन के अन्तिम तट पर बैठे हुए आपको मै धोखा कभी न दूँगा। यह किसकी आवाज़ सुनाई दे रही है ? क्या पहरेदार ने किसी को जगा दिया ? नहीं, नहीं, यह तो मेरा निरा भ्रम है।"

अश्वत्थामा इस तरह मन में सोचता-विचारता हुआ छावनी की सीमा के पास पहुँच गया और चौकीदार को सचेत कर कहने लगा—"भाई मै नहीं जानता कि मेरे सारे बाणों की परवा न करने वाले तुम कौन हो। आज मेरे लिए एक-एक पल का भी मूल्य है, इसलिए तुमसे जानना चाहता हूँ, अन्यथा तुमसे पूछता तक नही। तुम जो कोई भी हो, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं अपने बारे मे बता देना चाहता हूँ कि मैं आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा हूँ और मैंने पाञ्चालों का वध करने की प्रतिज्ञा की है

इसलिए छावनी के अन्दर प्रवेश करना चाहता हूँ।"

"खबरदार, आगे कदम न रखना।" पहरेदार ने शान्त किन्तु दृढ़ता लिये हुए स्वर में कहा। अश्वत्थामा के पैर न चाहते हुए भी पीछे को खिसक गये। "अश्वत्थामा! तूने मुझे नहीं पहचाना। मै कैलाशवासी शङ्कर हूँ।" पहरेदार ने कहा।

"देवाधिदेव महादेव! मै अत्यन्त दीनता-पूर्वक आपसे भिक्षा मांगता हूँ कि आप मुझे अन्दर प्रवेश करने दे।" अश्वत्थामा ने अत्यन्त नम्रता-पूर्वक कहा।

"मूर्ख ब्राह्मण! शङ्कर के पहरे को तूने यों ही समझ लिया है।" महादेव खिल-खिलाकर हँसते हुए बोले—"तुझे पता नहीं, मै तो श्रीकृष्ण के साथ के अपने मैत्री सम्बन्ध के कारण ही आज की रात पहरा देने आया हूँ, अन्यथा मै तो अस्त्र-विद्या का जगद्गुरु हूँ, मैंने ऐसे अनेकों युद्ध देखे है और आगे देखूँगा। क्या तुझे पता नही कि तेरे पिता और स्वय अर्जुन को पाशुपत जैसे अस्त्रों की शिक्षा के लिए हिमालय की शरण लेनी पडी थी?"

"देवाधिदेव! आपके प्रभाव को मै अच्छी तरह जानता हूँ।" अश्वत्थामा ने फिर गिडगिडाते हुए कहा—"आज अन्तर की ज्वाला से तपता हुआ मै पाञ्चालों का संहार करने के लिए आया हूँ। दिन का उजाला होने से पहले-पहले मुझे अपना काम पूरा कर लेना चाहिए। आपके इजाजत देने पर ही मैं छावनी के अन्दर प्रवेश कर सकता हूँ। मेरे हृदय मे आज जो अग्नि धधक रही है, वह शान्त होने जैसी नहीं है। आपने मुझे अन्दर प्रवेश न करने दिया तो मैं यहीं इसी जगह जलकर भस्म हो जाऊँगा। प्रभो! मेरे मन को और कोई रास्ता सूझ ही नहीं रहा है।"

यह कहकर अश्वत्थामा ने तुरन्त ही अग्नि प्रज्वलित की और उसमे जल मरने के लिए तैयार हुआ।

यह देख महादेव कहने लगे—"अश्वत्थामा! क्या तुझ-जैसे व्यक्ति का इस प्रकार आत्महत्या करना उचित है?"

"भगवन्! अब भी मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे भीतर प्रवेश करने दे।" अश्वत्थामा ने कहा। "आपके सामने मेरी शस्त्रास्त्र विद्या कुण्ठित हो गई है, इसलिए मेरे लिए अन्त मे एक यही उपाय बच रहता है। इस समय आपके सामने इस प्रकार हतवीर्य हो जाने के बाद मै मरूँ नहीं तो जीकर भी क्या करूँ?"

"ब्राह्मण के छोकरे, अश्वत्थामा! देख, मेरा पहरा तो अब पूरा होने आया, इसलिए मै तो यह चला, किन्तु तुझे यह बता जाना चाहता हूँ कि तेरा यह मार्ग अधर्म का है।" शङ्कर ने कहा।

"भगवन्! मेरे सामने इस समय धर्म-अधर्म जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। आपने मुझ पर अत्यन्त कृपा की, अब आप पधारे। मै छावनी मे प्रवेश करता हूँ।" अश्वत्थामा ने कहा।

"अश्वत्थामा! अश्वत्थामा। सम्भलकर जाना। कहीं दूसरों की मौत बुलाते-बुलाते तू खुद ही उसका ग्रास न बन जाय।" शङ्कर ने जाते-जाते कहा। "लेकिन तू भी करते क्या करे? तुम सब तो काल के चक्र मे पड़कर दीपक मे पतङ्ग की तरह मृत्यु के मुँह मे पड़ते हो। तुम्हे खुद को इस बात की सुधि ही कहाँ है कि तुम सब क्या करना चाहते हो और कहां जा रहे हो। अच्छा, अब तू जा। आज मेरी बात पर ध्यान नहीं दे रहा है, लेकिन एक दिन आयगा जब तुझे इसकी याद आयगी।"

शङ्कर विदा हुए और अश्वत्थामा भूखे भेड़िये की तरह पांचालों पर टूट पड़ा।

× × ×

पांचालों के शिविर मे एक ऊँचे पलग पर धृष्टद्युम्न सो रहा था। उसके विचार मे आज कोई उसकी निद्रा के भग करने वाला न था, आज रात को न तो युद्ध-समिति की कोई बैठक होने वाली थी, न सैन्य-निरीक्षण के लिए ही उसे जाना था, आज उसे किसी महारथी के साथ कोई खास मन्त्रणा भी नहीं करनी थी, न किसी नये व्यूह की रचना पर ही विचार करना था, आज कोई सवाद देने वाले भी आनेवाले नही थे, इसलिए अठारह दिन की मार-धाड़ और कटाकटी के बाद वह गहरी नींद मे सोया हुआ था। दूसरे दिन महाराज युधिष्ठिर के विजय-जलूस मे आगे-आगे चलकर हस्तिनापुर का स्वागत ग्रहण करने के वह मनसूबे बाँध रहा था।

चाँदनी के समान श्वेत बिछौने पर श्यामवर्ण धृष्टद्युम्न सोया हुआ था, पास ही द्रौपदी के पांच लाडले पुत्र और एक तरफ को पांचाल वीर थे, ऊपर अंधेरे मे होने वाले ससार भर के काले कृत्यों के सनातन साक्षी रूप तारे छिटक रहे थे और आस-पास शान्ति, असाधारण शान्ति, मृत्युरूप शान्ति व्याप रही थी। कभी-कभी उलूक की आवाज इस शांति को भग करती हुई सुनाई पड़ जाती थी।

अश्वत्थामा ने शिविर में पैर रखा। उसके हाथ में नगी तलवार थी, सिर के बाल बिखरे हुए थे, मस्तक पर सिन्दूर का टीका लगा हुआ था, चेहरे से विह्वलता झलक रही थी, आखों से खून चू रहा था और उसके पैरों में किसी महान हत्यारे का-सा आतङ्क और दृढ़ता थी।

वह सीधा धृष्टद्युम्न के पलग के पास जा पहुँचा। धृष्टद्युम्न

को देखते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। उसके हाथ की तलवार ऊँची हो गई और उसके चेहरे पर आनन्द की मन्द मुस्कान झलकने लगी। होंठ दबाता हुआ वह मन मे गुनगुनाने लगा "पाञ्चाल बच्चे, प्रभु को याद कर ले!"

अश्वत्थामा अपने मन में कल्पना कर ही रहा था, इतने ही मे आकाश से टूटते हुए एक तारे का प्रकाश धृष्टद्युम्न के मुँह पर पड़ा। इस प्रकाश मे अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न का मुँह देखा और तत्काल ही वर्षों पहले धृष्टद्युम्न के शिष्य-भाव से द्रोणाचार्य के पास आने का दृश्य उसकी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ, उसके मन में उस समय का बाल-भाव लहरें लेने लगा और इसलिए तलवार का प्रहार करने के लिए उठाया हुआ हाथ सहज ही धीमा पड गया और न जाने किस तरह आँखों के सामने अंधेरा छा गया।

एक क्षण मे ही यह सब कुछ हो गया और दूसरे ही क्षण वह अपनी दुर्बलता को झंझोड़कर सिंह की भांति जाग्रत हो गया, दुर्योधन के सामने की हुई प्रतिज्ञा फिर से मन मे ताजी की, धृष्टद्युम्न के विरुद्ध अपने वैर को फिर से जगाया, पिता का वैर लेने का अपना निश्चय फिर से दृढ़ किया और आँखे मींच-कर सोते हुए धृष्टद्युम्न पर खड्ग का प्रहार किया।

एक प्रहार से पाञ्चाल-पुत्र के दो टुकडे हो गये, दूसरे प्रहार में पाञ्चाली के पुत्रों के सिर धड़ से जुदा हो गये, और अगले प्रहारों से पाञ्चाल वीरों के टुकडे होने लगे। इस प्रकार जहाँ एक क्षण पहले असाधारण शांति व्याप्त हो रही थी वहाँ भयं-कर घमासान मच गया; एक क्षण पहले जहाँ चांदनी की तरह बिछे हुए सफेद बिस्तर शोभा दे रहे थे, वहाँ रक्त से भीगी हुई चादरें रक्त चुआने लगीं, एक क्षण पहले जो पाञ्चालों का शिविर था, वह इस समय उनका वध-स्थल बन गया।

और अश्वत्थामा।

पाञ्चालों का विनाश करने के दूसरे ही क्षण उसके सिर का भूत उतर गया। एक क्षण पहले सिंह के समान प्रतीत होने वाला अश्वत्थामा दूसरे ही क्षण बकरी के समान दिखाई देने लगा। दूर-दूर हवा मे उसे गाण्डीव की ध्वनि और द्रौपदी की चीत्कार सुनाई देने लगी,स्वयं अपनी ही अन्तरात्मा मे उसे हृदय की फटकार सुनाई देने लगी, इससे वह भयभीत हो उठा और उसी भयभीत अवस्था में दिन निकलने से पहले ही वह भाग खड़ा हुआ।

: ४ :

धुंधवाती आग

"भाई, तुम घडी-भर के लिए जरा सो जाओ।" व्यास भगवान् के शिष्य गौतम ने अश्वत्थामा से कहा। "गगा के तीर पर ऋषि मुनियों का एक भारी सम्मेलन हो रहा है, पिताजी उसमे सम्मिलित होने गये है।"

"ऋषि-मुनियों का सम्मेलन ?" अश्वत्थामा ने पूछा।

"हाँ, तुमने यह सुना कि नही, हस्तिनापुर के राज-मुकुट के लिए कौरव-पांडवों के बीच आज कई दिनों से युद्ध चल रहा है ? गौतम ने कहा—

"इसका ऋषि-मुनियों से क्या सम्बन्ध ? ससार आज तक इसी तरह लड़ता आया है और आगे भी लड़ता रहेगा। ऋषि-मुनि तो हिमालय की गुफाओं मे बैठकर समाधि लगाते रहा करे, उनका और लड़ाई का परस्पर क्या सम्बन्ध ?" अश्वत्थामा ने कहा।

"यह कैसे कहा जा सकता है।" गौतम ने तेजी से कहा। "मेरे पिताजी के लिए यह न समझ बैठना कि वह अपने आश्रम मे वृक्ष के नीचे बैठे हुए निरी आँखें बन्द किये रहते हैं। समस्त मानव-समाज का कल्याण उनका जीवन-व्रत है। जिस समय

संसार वैर-विष की अग्नि मे जलने लगता है, क्या उस समय उस वैर-विष को मिटाने के उपाय सोचना इन ऋषि-मुनियों का कर्त्तव्य नहीं है ? पिताजी लौटकर सम्मेलन का हाल सुनायगे तब तुम्हे पता चलेगा कि इन ऋषि-मुनियों और नामधारी ऋषि-मुनियों के बीच कितना अन्तर है। अच्छा, अब सो जाओ। पिताजी आयंगे उस समय मैं तुम्हे जगा दूँगा।'

"मुझे सोना नहीं है।" अश्वत्थामा ने कहा।

"मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारी आखों में नींद घुट रही है। हमारी किसी की भी ऑखे ऐसी हों तो कुछ भी होता हो हमे नींद आ ही जाती है।" गौतम ने कहा।

"गौतम ! तुम्हें पता नहीं, आज कितने ही दिनों से मै तो अपनी नींद गॅवा बैठा हूँ।" अश्वत्थामा ने बताया।

"नींद गॅवा दी ?" गौतम ने अश्वत्थामा की आँखों से ऑखे मिलाते हुए कहा। "पिताजी तो कहा करते हैं कि या तो चक्रवर्त्ती राजा की नींद जाती रहती है या फिर हत्यारे की। तुम कोई बड़े भारी चक्रवर्ती तो नहीं हो ?"

"नहीं भाई।" अश्वत्थामा निश्वास लेता हुआ बोला।

"तब सो जाओ ?" गौतम हाथ से कंकड़ उछालता हुआ बोला। "भाई, तुम लोग तो बडे आदमी ठहरे, इसलिए नींद तुमसे चौककर भागती फिरती है। और हमारे पास तो यह वृक्ष की छाया है, दिन-भर के परिश्रम की थकावट है, ऊपर आकाश की छाया और नीचे भली पृथ्वी माता है। इसलिए हम नींद को छोड़ना चाहे तो भी वह हमे न छोडेगी।"

'गौतम ! मै जब तुम्हारे जैसा था उन दिनों भी मेरे भाग्य मे ऐसी कोई बात न थी।" अश्वत्थामा ने निराशा के स्वर में कहा।

"क्या तुम भी आश्रम में रहते थे ?" गौतम ने कौतूहलपूर्वक पूछा। "तुम्हारे भी पिताजी थे ? तम भी इसी तरह हिरनों के

साथ खेला करते थे ? तुम भी ऐसे कुञ्जों में अध्ययन करते थे ? तब तो पक्षियों की यह मधुर किलकिलाहट तुमने बहुत सुनी होगी। देखो न यह कैसी मधुर और मन्द पवन चल रही है। जरा लम्बे तो हो जाओ। भाई तुम्हारे लिए मैंने अपनी दरी बिछाई है, वह मैंने आज ही धोई है। उसमे एक बदबूदार बड़ा-सा दाग़ था वह किसी तरह छूटता ही नहीं था, इसीलिए मैंने इसे आज़ ख़ूब पछीटी, फिर भी देखो इसमे जरा-सा निशान बाकी रह ही गया। तुम बड़े लोगों के बिछौने तो नौकर चाकर धोते होंगे ? और उनमे तो दाग़ रहते ही क्यों होंगे ?"

"गौतम ! गौतम ! तुम आगे और कुछ न कहो तो कितना अच्छा हो ?"

"क्यों, क्या तुम्हे नींद आने लगी ?"

"नींद तो नहीं आई, लेकिन तुम जब ज्यों-ज्यो ये बाते करते है त्यों-त्यो मेरे मन में न मालूम क्या होने लगता है। तुम्हारे शब्द सुनते ही मेरे हृदय की अनेक पीड़ाएँ जाग उठती हैं।" अश्वत्थामा ने व्यथित स्वर से कहा।

"तुम्हारे शरीर में पीड़ा है। यह कहो न कि तुम बीमार हो इसलिए नींद नहीं आती।" गौतम ने अपना कहना जारी रखा "पिताजी केवल ऋषि ही नही है, असाध्य रोगों को मिटा सकने-वाले वैद्य भी हैं। तुम्हे ठीक ही सूझा कि यहाँ आगये। यहाँ की हवा ही ऐसी है कि मनुष्य निरन्तर अपने फेफड़ों मे उसे खींचे तो सब बीमारियाँ अनायास ही दूर हो जाती हैं। अच्छा, अब तुम्हे नहीं छेड़ूँगा। जरा लेट जाओ मेरी तो नीद उचट गई है, इसलिए जरा उधर गौओं को घास के दो पूले डाल आऊँ।" यह कहता हुआ गौतम वहाँ से उठकर चलता हुआ। अश्वत्थामा भूमि को कुरेदता हुआ वहीं बैठा रहा।

× × ×

आश्रम में व्यास भगवान् अपने शिष्य-मण्डल के साथ बैठे थे और संसार-भर के वैर-विष के विनाश के लिए आश्रम-वासियों को क्या करना चाहिए इसकी चर्चा चल रही थी। अश्वत्थामा वल्कल वस्त्र धारण कर व्यास मुनि की ओट मे छिप गया था।

इतने ही में सड़क पर मे रथ की गड़गड़ाहट सुनाई दी। गडगड़ाहट सारी शिष्य-मण्डली के कानों में पड़कर शान्त हो गई, किन्तु अश्वत्थामा के कान चौकन्ने हो गये, उसका शरीर तन गया, उसकी आँखे जमीन से हटकर सडक की ओर जा लगीं, और पलक मारते ही वह आम्र-कुञ्ज से बाहर निकलकर रास्ते के खेतों में उगी हुई दूब पर जा खड़ा हुआ।

आश्रम के पास की सड़क पर दो रथ दौडते हुए आ रहे थे। आगे के रथ मे भीमसेन बैठा हुआ घोड़ों को तेजी से हाँकता ला रहा था, उसके पीछे के रथ के घोडों की लगाम श्रीकृष्ण के हाथों मे थी।

"यह रहा वह दुष्ट।" भीमसेन रथ में से ही चिल्ला उठा और तत्काल उस पर से नीचे कूद पड़ा। श्रीकृष्ण ने भी अपना रथ ठहरा दिया और अर्जुन तथा युधिष्ठिर को साथ लेकर नीचे उतरे।

"अर्जुन! देख ले उस दुष्ट को। केवल वल्कल धारण किये हुए है।"

"अश्वत्थामा जरा घबराया। उसे निश्चय था कि भीम उसका वध किये बिना न रहेगा। किन्तु द्रोण का पुत्र यों ही मृत्यु को गले लगा लेने वाला न था। पल-भर मे ही उसके मन में कई उपाय आये और चले गये। उधर भीम और अर्जुन की ललकार उसका हृदय नोंच रही थी। उसके पास कोई साधन नहीं था, रथ-जोतने योग्य धैर्य नहीं था और कपड़े बदलने की सुधि नहीं थी। वह बड़े चक्कर मे पड़ गया। एक क्षण मामा कृपा-

चार्य का खयाल करने लगा, और फिर तत्काल ही दूब के एक तिनके को मंत्रित कर सङ्कल्प किया—"शत्रु पर आज मैं इस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता हूँ। यह ब्रह्मास्त्र पाण्डव-कुल को निर्बीज कर दे।"

दूब का तिनका फेंकने-भर की देर थी कि दिशाएं चारों ओर से काली होने लगीं, एक तिनके में से जलते हुए अनेक शस्त्रास्त्र छूटने लगे, प्रलय काल की पवन चलने लगी, आकाश में अभूत-पूर्व गडगड़ाहट होने लगी और आश्रम के पशु-पक्षी त्रस्त हो इधर-उधर रक्षा-स्थल ढूंढने लगे।

"अर्जुन! इस दुष्ट ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया है। तू भी तो यह प्रयोग जानता है। अतः जल्दी कर।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"महाराज श्रीकृष्ण! आचार्य द्रोण का तो यह आदेश है कि ऐसे अवसर पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग नहीं होना चाहिए।" अर्जुन ने कहा।

"रहने दो ऐसे आचार्य के आदेश। द्रोण के वध के साथ ही उनके आदेश भी समाप्त हो गये। श्रीकृष्ण! अर्जुन से यह कुछ न होगा। अश्वत्थामा का काम मैं पूरा करूँगा।" भीमसेन ने कहा।

"अर्जुन! तू भूल करता है।" श्रीकृष्ण ने सम्बोधन करते हुए कहा। "ब्रह्मास्त्र जैसे शस्त्रास्त्रों का प्रयोग इसीलिए निषिद्ध माना गया है कि लोग उनका उपयोग दूसरों के संहार के लिए करते हैं। ऐसे अस्त्रों की शोधकर मानव-समाज को स्वयं ही पश्चात्ताप करना पड़ा है। द्रोण ने यह समझकर कि लोगों के अन्तःकरणों के अच्छी तरह निर्णय होने से पहले इस प्रकार के अस्त्रों की शोध का उपयोग समाज के कल्याण की अपेक्षा अक-ल्याण के लिए ही अधिक होगा, तुझे यह आदेश दिया होगा। किन्तु सखा! इस समय तुझे लोक-कल्याण की दृष्टि से ब्रह्मास्त्र

का प्रयोग करना है; अश्वत्थामा के वध की दृष्टि से नहीं।"

"श्रीकृष्ण! तुम्हें ऐसे समय में अर्जुन के साथ मगज़-पच्ची करना कैसे अच्छा लगता है। मुझे इनके जितनी विद्या प्राप्त होती तो आज मैं संसार को दिखा देता।" भीम ने उतावलेपन से कहा।

"अर्जुन!" श्रीकृष्ण ने सम्बोधन करते हुए कहा—"जल्दी करो। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को और अधिक फैलने का अवसर मिल गया तो हम सबको भारी पड़ेगा।"

"अच्छी बात है" अर्जुन ने कहा। और तुरन्त ही ब्रह्मास्त्र का स्मरण कर सङ्कल्प किया—"अश्वत्थामा के कल्याण के लिए हमारे अपने कल्याण के लिए और अखिल मानव-समाज के कल्याण के लिए मैं ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता हूँ।" इस सङ्कल्प के साथ उसने ब्रह्मास्त्र चलाया।

व्यास के आश्रम पर दो ब्रह्मास्त्र आमने-सामने टकराये इसलिए कुछ देर के लिए अन्धकार और सघन हो गया और पृथ्वी काँपने लगी। साथ ही ऐसा प्रतीत होने लगा मानो आश्रम की वायु में विष व्याप्त हो गया हो!

व्यास भगवान् अपने कुञ्ज में बैठे थे;वहाँ से उठ खड़े हुए। हाथ में पलाश-दण्ड और दूब ली और अपनी योग-दृष्टि से आकाश की ओर देखकर वहाँ आ पहुँचे।

उन्हें आया देखकर युधिष्ठिर "प्रभो, पुराण ऋषि! आपको अनेक नमस्कार" इन शब्दों के साथ उनका अभिवादन कर उनके चरणों में लेट गये।

व्यास भगवान् ने अश्वत्थामा की ओर भृकुटी चढ़ाते हुए रोष के साथ कहा—"अच्छा अश्वत्थामा, मैंने तुझे अपने आश्रम में आने दिया, क्या वह इसीलिए ? तूने ये वल्कल वस्त्र इसीलिए धारण किये हैं ? तूने कुञ्ज में बैठकर ऋषि-मुनियों के

सम्मेलन की चर्चा सुनी क्या उसका यही परिणाम है ?"

"भगवन् ! ये लोग मेरा वध करने के लिए आये है।" अश्वत्थामा घबराता हुआ बोला।

"तूने इनके पुत्रों का वध किया उस समय इस बात का खयाल नही किया ?" व्यास ने आँख लाल करते हुए कहा।

"भगवन् ! इन शत्रुओं के शस्त्र से मारे जाने मे मुझे अब कुछ हिचकिचाहट न होगी। किन्तु आपके लाल-लाल नेत्र मै देख नहीं सकता। मुझे क्षमा कीजिए।" अश्वत्थामा ने काँपते हुए कहा।

"अश्वत्थामा ! मुझे दु.ख इस बात से होता है कि तू अपने ब्राह्मणत्व से इतना नीचा गिर गया है।" व्यास ने कहा—"जिस दिन स्वयं ब्राह्मण की ब्राह्मण-जीवन से श्रद्धा मिट जाय, उसी दिन समझ लेना चाहिए कि ससार के अकल्याण का श्रीगणेश हो गया। वैर के मारे तेरे पिता ने ब्राह्मण-जीवन को उठाकर खूँटी पर लटका दिया था और तूने तो उसे तिलाञ्जलि ही दे डाली।"

"भगवन् ! यह ठीक है कि मै आज ब्राह्मण नहीं रहा। मेरी आपसे अब यही प्रार्थना है कि आप इन लोगों से मेरी रक्षा करो, जिससे मै आपकी सेवा मे रह सकूँ।

"तो फिर यह ब्रह्मास्त्र किसलिए चलाया था ?"

"अपने बचाव के लिए।"

"किन्तु क्या तुझे पता नहीं कि कोई भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग इस तरह नहीं कर सकता ?" व्यास ने पूछा।

"मुझे अपने सामने मौत खड़ी दिखाई दे रही थी, इसलिए मुझे इस बात का कुछ विवेक नहीं रहा।" अश्वत्थामा ने जवाब दिया।

"और अर्जुन! तूने भी भारी भूल की है।" अर्जुन की ओर फिरते हुए व्यासजी ने कहा। "ब्रह्मास्त्र के प्रयोग सम्बन्धी विधि-निषेध का तुझे पता है। उनका तो तूने ध्यान न रखा सो तो है ही, पर, साथ ही इस बात का भी ख़याल न रक्खा कि यह मेरा आश्रम है।"

"भगवन्! मैंने किसी के प्रति द्वेष-भावना से नहीं, प्रत्युत संसार-मात्र और स्वय अश्वत्थामा के कल्याण की दृष्टि से इसका प्रयोग किया है। तिस पर यह बात तो स्पष्ट ही है कि हमे उसके ब्रह्मास्त्र से अपनी रक्षा करनी थी।" दोनों हाथ जोड़ते हुए अर्जुन ने कहा।

"चिरञ्जीव! इन अठारह दिनों के युद्ध के बाद भी एक बात तेरी समझ मे नहीं आई। मनुष्य-मात्र शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करने के समय यही कहते है कि हम तो अपनी रक्षा के लिए उनका प्रयोग करते है और साथ मे संसार के कल्याण की भी डींग हाँकते हैं। किन्तु दूसरों को मारने से मनुष्य स्वयं अपनी रक्षा तक नहीं करता और ससार का कल्याण तो निश्चित रूप से नहीं करता। तुम्हारे ये शस्त्रास्त्र क्या करते हैं और क्या कर सकते हैं इस बात का इतना भारी प्रदर्शन हो चुकने पर भी, तुम्हारा यह भ्रम अभी ज्यों-का-त्यों बना ही हुआ है। अर्जुन! जिसके रथ की बागडोर श्रीकृष्ण के हाथ में हो उसकी समझ में तो यह बात कभी की आ जानी चाहिए थी।"

"मुनिराज! रथ की बागडोर तो अवश्य ही मेरे हाथ में है, लेकिन हाँकता तो जहाँ के लिए यह कहता है उधर ही हूँ।" श्रीकृष्ण ने हँसते हसते कहा।

"अच्छा अर्जुन! तू अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले ले।" व्यास

मुनि ने अपना दाहिना हाथ ऊँचा उठाते हुए आदेशात्मक स्वर में कहा।

"जैसी आपकी आज्ञा।" यह कहकर अर्जुन ने अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले लिया।

"अश्वत्थामा! अब तू भी अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले ले" व्यास मुनि ने अश्वत्थामा की ओर मुड़कर कहा।

"भगवन्! मुझे वापस लेना नहीं आता।" अश्वत्थामा ने काँपते हुए कहा।

"हैं! वापस लेना नहीं आता! तब मूर्ख तूने इसका प्रयोग किया ही क्यों?" व्यास ने चकित होते हुए पूछा।

"भगवन्! वापस लेना आता नहीं और प्रयोग करते समय सङ्कल्प यह किया है कि पाण्डव-कुल का नाश हो।" अश्वत्थामा ने जवाब देते हुए कहा।

"अरे दुष्ट!" व्यास ने खिन्न स्वर से कहा—"तुम लोगों ने हम ऋषि मुनियों को भारी चिन्ता में डाल दिया है। द्रोण ने यही सबसे बड़ी भूल की कि पुत्र-स्नेह से प्रेरित होकर तुझे यह अस्त्र सौंप दिया। तूने उस भूल का खूब लाभ उठाया। ब्राह्मण का जब पतन होता है तो उसका अन्त कहाँ जाकर होगा यह कोई नहीं कह सकता। अच्छा बता, अब तेरा ब्रह्मास्त्र अन्त में कहां जाकर गिरेगा?"

"उत्तरा के गर्भ पर।" अश्वत्थामा ने कहा।

"जो फल सड़ गया है, उसमें गन्ध आये बिना कैसे रह सकती है?" व्यास ने दुःख से कहा।

भीमसेन से न रहा गया। उसने कहा—"मुनिवर! मैं इस अश्वत्थामा का बध करने आया हूँ। इसका वध न किया गया

तो द्रौपदी अनशन करके अपने प्राण त्याग देगी। आपकी आज्ञा से अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र तो वापस ले लिया, किन्तु अब मैं अश्वत्थामा को न छोड़ूँगा।"

"भीम! अश्वत्थामा को मारकर क्या करेगा?" व्यास ने पूछा।

"अपने और द्रौपदी के मन को शान्त करूँगा।" भीम ने जवाब दिया।

"यह केवल विडम्बना है।" व्यास ने कहा—"इस प्रकार मन शान्त होता होता तो अठारह अक्षौहिणी सेना का वध करके शान्त हो जाता। मनों को सच्ची शान्ति तो तब होगी जब सारा संसार इन शस्त्रास्त्रों का त्याग कर देगा। प्रभो, श्रीकृष्ण! आप इस समय कुछ बोलते क्यों नहीं?"

"पुराण मुनि! जहा आप जैसे मुनि रात-दिन संसार के कल्याण का चिन्तन करते रहते हों वहाँ मेरे कहने योग्य बात ही क्या रह जाती है?" श्रीकृष्ण ने कहा।

"भीम! यह अश्वत्थामा तुम सबके गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र है। इसमे सन्देह नहीं कि इसने जैसी भूल की है, उससे तुम इसका सिर काट सकते हो। किन्तु भूल का बदला मृत्यु से पूरा नहीं होता। कहो, युधिष्ठिर! तुम्हें यह बात कैसी प्रतीत होती है?" व्यास मुनि ने कहा।

"मुनिराज! आप ठीक ही कहते है।" युधिष्ठिर ने कहा—"छावनी से चलते समय तो मैं भी अश्वत्थामा के वध का निश्चय करके ही चला था; किन्तु अब मेरा मन उससे पीछे हटता है। गुरु-पुत्र का वध करके मैं प्रसन्न नहीं होना चाहता।"

"तब क्या द्रौपदी को गँवाकर प्रसन्न होंगे।" भीम ने रोष से पूछा।

"भीम ! इस तरह उतावले न होओ।" श्रीकृष्ण ने कहा। "अश्वत्थामा ब्राह्मण है, इसके मस्तिष्क में मणि है। उस मणि को ले लेना उसका वध करने के समान ही है। हम अश्वत्थामा को द्रौपदी के पास ले जायंगे। द्रौपदी भी पाञ्चालराज की पुत्री है। उसके हृदय में भी क्षत्रियत्व की उदारता है। गुरु-पुत्र को क्षमा कर अपनी महत्ता सिद्ध करना उसे भी रुचिकर प्रतीत होगा। धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हारी क्या राय है ?"

"तुम्हारा कहना ठीक है ?" युधिष्ठिर ने कहा।

"अच्छा तो अश्वत्थामा ! अब तू रथ पर चढकर इनके साथ चलना और द्रौपदी मांगे तो बिना किसी आनाकानी के अपने सिर की मणि निकालकर उसे दे देना। यदि वह तेरा शरीर मागे तो उसके देने में भी मत हिचकिचाना। तू देने में नहीं हिचकिचावेगा तो उसे लेने में हिचकिचाहट जरूर होगी। और यदि तू देने मे हिचकिचाया तो उसे उसके लेने का अधिक आग्रह होगा। ससार का यही सनातन नियम है।" श्री व्यास ने कहा।

"प्रभो ! आप पर श्रद्धा रखकर मै रथ पर सवार हो इनके साथ जाता हूँ। वहां से वापस लौटकर आपके पास ही रहूँगा।"

"द्रोण-सुत !" व्यास ने जवाब दिया · "पीछे की बात पीछे होंगी। मस्तक की मणि गवाने के बाद तो तुझे कुछ दिन पृथ्वी पर इधर-उधर भटकते ही फिरना होगा, तेरा चित्त किसी एक ठिकाने पर जम ही न सकेगा। सारे जीवन को विकृत कर देने पर उसके अच्छे होने में भी समय तो लगेगा ही। तू जब कभी भी आयगा, तेरे लिए आश्रम के द्वार खुले होंगे। किन्तु अश्वत्थामा ! ऐसे आश्रम मे रहने का उफान तो बहुतों के मन में पैदा होता है किन्तु वह निरा उफान न रहकर निश्चय के रूप मे

परिणत हो इसके लिए ईश्वर की कृपा की आवश्यकता है। अच्छा आज तो तू जा! प्रभु तेरा कल्याण करे, तुम सबका कल्याण करे। प्रभु कृष्ण! संसार का कल्याण हो।"

अश्वत्थामा को लेकर भीमसेन आदि विदा हुए और व्यास भगवान् आश्रम की ओर लौटे।

भीष्म

: १ :

गंगा-पुत्र

"देवी, जरा ठहरो !"

गंगा माता का गहन जल मन्द-मन्द बह रहा था। चारों तरफ अंधेरा छाया हुआ था। किनारे के वृक्ष धीरे-धीरे हिल रहे थे। दूर से ठहर-ठहर कर गीदड़ों की बोली सुनाई देती थी। प्रवाह की सीमा के बाहर रेत का लम्बा मैदान पसरा पड़ा था।

किनारे पर बसी राजधानी में से एक स्त्री सनसनाती हुई आई। उसके शरीर का रंग गोरा था, सिर के बाल बिखरकर छाती पर फैल रहे थे, उसके पैरों मे तेजी और हाथों में तुरत का पैदा हुआ एक बच्चा था।

वह किनारे पर पहुंची, बालक को रूमाल में लपेटकर नीचे रखा; अपने बाल ठीक किये, कपड़े की लंगोट लगाई और बालक को उठाने को झुकी ही थी कि पीछे से किसी ने आवाज दी—"देवी, जरा ठहरो !"

मानो बिजली का झटका लगा हो इस प्रकार वह स्त्री चौंक उठी और तुरन्त ही पीछे की ओर देखकर बोली—"महाराज शान्तनु, आप यहां कहां ?"

"देवी, इस बालक को तुम नहीं मार सकतीं" शान्तनु ने हस्तिनापुर के स्वामी के-से, स्वर में कहा।

"महाराज, यह रहा आपका पुत्र। अपना सह-जीवन इसी

क्षण से समाप्त होता है। बोलते क्यों नहीं ?" देवी गंगा ने कहा।

"गंगा, गंगा ! यह बालक अपनी आठवीं सन्तान है। अपने एक-को नहीं सात-सात पुत्रों को तुमने जल-समाधि दे दी। यह सब मैं गूंगा बना देखता रहा। देवी ! हस्तिनापुर के महलों मे फूलने-फलने के लिए उत्पन्न हुए पुत्रों को अपने से जुदा करते हुए मेरे मन पर क्या-क्या बीती होगी, क्या तुम्हे इसका ध्यान आता है ? आज इस आठवें पुत्र को भी जब तुम पानी में प्रवाहित करने निकलीं तो मैं अपना धीरज कायम न रख सका। और जीवन के सार रूप अपने प्रिय पुत्र के लिए इतना-सा अनुभव करना भी क्या कोई अपराध है ?" महाराज शान्तनु ने व्यथित हृदय से कहा।

"महाराज, इस दृष्टि से देखा जाय तो आपने आज तक कुछ नहीं कहा यही अपराध है। आज तो आपने अपना कर्तव्य-पालन किया है।" गंगा ने शान्ति से जवाब दिया।

"तब तुम यह कहकर, कि अपना सह-जीवन आज से समाप्त होता है, मुझे व्यर्थ ही दुखी क्यों करती हो ?" शान्तनु ने पूछा।

"महाराज, आपने मेरा आशय नहीं समझा।" गंगा ने कहा। "अपना विवाह हुआ, उससे पहले ही मैंने आपसे शर्त की थी कि मैं जो-कुछ भी करूं आप उसमें बाधा न देंगे, और उसी प्रकार आप उस विषय में मुझसे कुछ पूछेंगे भी नहीं। कहिये, यह बात ठीक है या नहीं ?"

"हां, तुम्हारी यह शर्त जरूर थी। किन्तु तुम जैसी धर्मपत्नी पुत्रों को ही मार डालेगी और मुझे अपनी जबान पर ताला लगा देना पड़ेगा इस बात की तो मुझे स्वप्न में भी कल्पना नहीं हुई थी। इसकी कल्पना हुई होती तो शर्त करने से पहले ही उसका

विचार करता।" महाराज शान्तनु ने जवाब देते हुए कहा।

देवी गगा ने कहा—"महाराज, यह सब तो आज कहा जाता है। उस दिन तो आपका मन मुझ पर मोहित था इसलिए शर्त के परिणाम की आपके दिमाग मे कल्पना हो ही नहीं सकती थी। कामी पुरुष यदि शान्ति के साथ पूर्वापर का विचार कर सकते होते तो मानव-समाज कभी का बदल गया होता। किन्तु महाराज, आपने शर्त की, अत' अब तो उसका पालन होना ही चाहिए। अब आगे पहले से सोच-समझकर शर्त करना।"

शान्तनु से रहा न गया। उन्होंने कहा—"आज तक कभी जबान न खोली और आज एक बार बोला उसी पर सह-जीवन समाप्त? बस इतना ही। तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह अंधा है, कहीं इसीसे डरा तो नहीं रही हो?"

गंगा ने कहा—"निश्चय ही नही। महाराज! मैं कितनी ही कठोर क्यों न होऊं, फिर भी हू तो स्त्री ही, हमारी छाती मे कितना कोमल हृदय धबकता है, कठोर-हृदय पुरुषों को इसका पता न तो कभी लगा था और न आगे ही लगने वाला है। महाराज! आपने तो आठवें पुत्र के लिए धीरज गंवाया, किन्तु इन हाथों से सात-सात पुत्रों को जल में सुलाते हुए मेरे—उनकी जननी के—हृदय पर क्या-क्या बीती होगी इसकी भी आप कल्पना करते हैं? महाराज शान्तनु! मैं देव-पुत्री हू, हमारे देवकुलों में बालक कितने महंगे मोल के होते हैं, आपको इसका पता नहीं। आप आर्यों को इन बालकों का महत्त्व तो अभी सीखना है। किन्तु महाराज मेरे वचनों पर विश्वास रखिये; किसी गूढ़ ईश्वरीय संकेत से प्रेरित होकर ही मैंने अपने सात पुत्रों को जल-समाधि कराई; उसी गूढ़ संकेत से प्रेरित होकर मैंने आपसे विवाह किया था और उसी गूढ़ संकेत से प्रेरित होकर मैं आज आपसे

विलग हो रही हूं।"

"देवी, देवी! तुम यह क्या कहती हो?" महाराज शान्तनु ने विह्वल होकर कहा। "तुम्हारे बिना यह शान्तनु किस तरह जीवित रह सकेगा? तुम कहो तो मै अपनी कही हुई बात को वापस ले लूं और इस पुत्र का भी तुम्हे जो-कुछ करना हो खुशी से करो। किन्तु देवी! मुझे इस तरह न छोड़ो।"

गंगा ने गम्भीर स्वर से जवाब दिया—"महाराज, इस तरह क्यों घबराते हैं? मैं तो गगा हू। वह सामने बरफ के पहाड़ दिखाई देते है, वहां से मेरा जन्म हुआ है। इस जगह मनुष्य का नाम-निशान न था, उस समय से मैं इस प्रदेश मे विचरती हूं। आज आप जहा खडे हैं और जिस जगह आपका हस्तिनापुर बसा हुआ है, वहा एक समय समुद्र लहरे मारता था। एक बार परमात्मा का आदेश हुआ और समुद्र वहा से हटा, जिससे वहा एक गढ़ा हो गया। पिता की गोद मे से खिसकती-खिसकती मै इस भारी गढ़े मे गिरी तो वर्षों तक निकल न सकी। ओ हो, कितना गहरा गढ़ा था! पिता के घर से ला-ला कर मैंने वर्षों तक इसमे मिट्टी पूरी तब कहीं मै गढ़े मे से बाहर निकल सकी। यह तो युग-युगांतर की बात है। उसके बाद तो इस प्रदेश मे मनुष्य आये, कितने ही आये और कितने ही गये। उनके आवागमन का लेखा मेरे गर्भ में सगृहीत है, उसे समझने वाला कोई पैदा होगा तो पढ़ सकेगा। महाराज, आंखें क्यों बन्द कर दी हैं?"

"देवी, तुम जो कुछ कह रही हो उसे समझने के लिए मैं आंखें बन्द करके गहराई मे उतरता हूं। तुम आगे कहो। मैंने तो तुम्हे अपनी ही तरह हाड़-मास की पुतली-मात्र समझा था।" शान्तनु ने कहा।

"इसमे आपका क्या दोष?" गंगा ने कहा। "हाड़-मांस की पुतली तो हूं ही न, नहीं तो तुम्हारी चमड़े की आंखों को आकर्षित

क्यों होना पड़ता ? किन्तु महाराज, इस बात को जाने दो।"

"तुम जो कह रही थी, उसे जारी रखो।" शान्तनु ने कहा।

गंगा ने कहना शुरू किया—"महाराज, हम सभी बहनें इसी श्वेत पर्वत पर से निकली है। इस सारे प्रदेश पर आप जो सिद्ध, ऋषि-मुनी, दानी और पण्डित आदि देखते हैं, यह सब हमारे ही पानी का प्रताप हैं। मैं समूचे आर्यावर्त को माता के समान हूं फिर भी सदा कुंवारी हूं। करोड़ों मानव-प्राणी मेरे तट पर जिये और मरे हैं, हजारों महाराजाओं के रथों ने इस प्रदेश के चक्कर काटे हैं और चकनाचूर हुए हैं, लाखों सैनिक इस प्रदेश पर घूमे है और धूलि-धूसरित हुए है। किन्तु इन सबको काल अपने उदर में समा गया है। केवल मैं कुमारी बची हूं और बची रहने वाली हू। अपने गर्भ में कितनी ही संस्कृतियों को मैंने पोषण दिया है और इन सबका तेज आप आर्यों को सौंप देने का मुझे ईश्वरीय आदेश है। महाराज, आपका यह पुत्र मेरा तेज इस प्रदेश मे फैलावेगा। लीजिये इस पुत्र को। जाओ, चिरंजीव।" यह कहते हुए गगा ने बालक को हाथ में लेकर आगे किया।

शान्तनु ने कहा—"देवी, मैंने तुम्हारी इस महिमा को पहचाना नहीं और केवल वासना की दृष्टि से ही तुम्हें देखा, इसके लिए मुझे क्षमा करो। तुम आर्यावर्त की माता हो तो इस पुत्र को तुम्हीं पाल-पोस कर बड़ा करो, तुम्हारे अमृत-पान से मेरा यह पुत्र देश को प्रकाशमान करेगा।"

गंगा ने जवाब दिया—"अच्छा तो ऐसा ही करूंगी महाराज, आप इसका नाम देवव्रत रखिये। इसे पाल-पोसकर मैं आपको सौंप दूंगी। आप पधारो।"

"किन्तु गगा!" शान्तनु ने आर्द्र स्वर से कहा। "तुम्हारे बिना मैं सूने महल मे किस तरह कदम रखूंगा ? मेरी एक भूल को तुम छोड़ नहीं सकतीं ?"

गंगा ने जवाब दिया—"महाराज, इसमे भूल का कोई प्रश्न ही नहीं है। अपना वचन अब पूरा हुआ। अपन ने इतने समय तक गृहस्थ-जीवन बिताया इतने पर भी यदि काम वासना ज्यों-की-त्यों रही हो तो अब उसे जीतने के लिए दूसरा उपाय ढूंढ़ना होगा। महाराज, खिन्न न होओ, प्रसन्न होकर जाओ।"

शान्तनु ने कहा—"तब फिर जैसा मेरा भाग्य। देवी, शान्तनु का अन्तिम नमस्कार स्वीकार करो और अपने इतने लम्बे सहवास के अन्त में मुझे कुछ आज्ञा दो, जिससे कि मैं तुम्हें पहचान न सका उसका प्रायश्चित्त हो जाय।"

गंगा ने जवाब मे कहा—"महाराज, मै तो आपकी दासी ठहरी। आपके पैर की धूलि सिर पर चढ़ाकर जीवित ही मुक्ति पा सकती हूं। किन्तु एक बात कहने को जी करता है।"

"कहो, जरूर कहो।" शान्तनु ने कहा।

गंगा ने कहा—"महाराज, मनुष्य विवाह करते समय चाहे जैसा घुमा-फिराकर बातें करता हो, वह विवाह करता है अधिकतर वासना-तृप्ति के लिए। आपने भी इसी तरह विवाह किया। किन्तु एकाध व्यक्ति भाग्यवश इस विवाह से वंचित रह जाता है, और उसकी वासना के शान्त न होने के कारण उसे इधर-उधर भटकते फिरना पड़ता है। महाराज, तुम्हारी भी ऐसी ही दशा न हो, मैं ईश्वर से यही चाहती हूं।"

"हा, देव!" शान्तनु ने कातर स्वर से कहा। "हा, देव-वेव कुछ नहीं। इस समय आपका मनोभाव कैसा है यह मैं समझती हूं। किन्तु काम ऐसे मनोभावों को हड़प जाता है यह भी मैं उतनी ही अच्छी तरह समझती हूं। महाराज, जिस दिन आपके मन से ऐसी वासना का उदय हो उस समय सावधान रहना और मेरे साथ बिताये दिनों की याद कर मन को बहलाने का प्रयत्न करना। मेरे चिह्न के रूप में यह पुत्र तो आपके पास है ही।

इतने वर्ष आपके पास रहकर मैं आपसे इतना भी न मांगू तो मेरी आत्मा को शान्ति न मिलेगी, इसलिए यह मांगे लेती हूं।"

शान्तनु ने कहा—"हमसे तुमने मांगा क्या है ? यह तो मुझे जो करना चाहिए, यह तुमने पहले से ही कह बताया है, बस इतना ही तो है। शान्तनु अब और किसी पर नजर न डालेगा।"

"महाराज अब मैं आपसे आज्ञा लेती हू।"

गंगा के इतना कहते ही प्रवाह के बीच पर्वत-जैसी लहर उठी और किनारे आकर गंगा और देवव्रत को लेकर वापस लौट गई।

शान्तनु किनारे पर खड़े-खड़े देखते रहे।

: २ :

पिता की चिकित्सा

"कहिये मन्त्रीजी, आ पहुचे क्या ?" महल के एक विशाल कक्ष में घुसते हुए कुमार देवव्रत ने पूछा।

"जी, हां" मन्त्री ने आसन पर से खड़े होते हुए जवाब दिया। "आपने आदमी न भेजा होता तो भी आज तो मैं आने वाला था ही।"

दोनों के आसन पर बैठने पर देवव्रत ने कहा—"पिताजी की बीमारी के बारे मे अपनी बात तो हो ही चुकी है। उसके बाद आपने क्या किया इसका मुझे कुछ पता नहीं। किन्तु मेरी चिन्ता दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है।"

"कुमार, आपसे बात होने के बाद मैं उस विषय मे पूरा प्रयत्न कर चुका हू।" मन्त्री ने जवाब दिया।

"किन्तु उस प्रयत्न का परिणाम मुझे पिताजी के चेहरे पर आज सुबह तक दिखाई नहीं दिया।" कुमार ने बताया। "उनको

शरीर दिन-पर-दिन क्षीण होता जाता है; चेहरा सफेद होता जा रहा है, आंखे और नीचे को धसकती जाती हैं। मैं जब-जब उनसे मिलता हूं तब-तब न जाने क्यों वे मेरी ओर देखकर नीचे पृथ्वी की ओर आंखें गड़ा देते हैं, और जब मैं पूछता हूं तो बड़ी मुश्किल से आंखें ऊची करके मेरे सामने गूंगे की तरह देखते रहते हैं। मैं आपसे बहुत समय से कहता आ रहा हूं कि अपने राजवैद्य कहलाने वाले वैद्यों की बुद्धि इस रोग में कुछ काम न आयगी। इस रोग की जड़ गहरी होनी चाहिए। क्या हस्तिनापुर मे कोई ऐसा वैद्य नहीं है जो महाराज के अन्तस्तल की गहराई में उतरकर थाह लावे ?"

"कुमार, आप जैसा कहते हैं उसी तरह मैंने प्रयत्न करके देख लिया है।" मन्त्री ने जवाब दिया।

"तब फिर बताओ रोग का कुछ पता लगा है। रोग का निदान हो जाने के बाद इलाज तो बहुत कठिन नहीं होता।" कुमार ने कहा।

मन्त्री ने गम्भीर स्वर में कहा—"कुमार, पता तो अवश्य लगा है, किन्तु मेरे उसे बताने पर कुछ समय तक तो आप सिर रहेंगे और बात मानेंगे नहीं।"

"मन्त्रीजी, वैद्य ने शास्त्रीय विधि से पूरी खोज करके जो बात निश्चित की हो, उससे मैं इनकार कैसे कर सकूंगा ?" देवव्रत ने कहा।

मन्त्री ने जवाब दिया—"कुमार, वैद्य मुझसे कहते थे कि समाज के परम्परागत सम्बन्ध कुछ ऐसे हो जाते हैं कि हमारे मन अमुक सम्बन्धी के विषय में अमुक प्रकार का विचार करने से ही इन्कार कर देता है। कुमार, क्या आप इस बात को मान सकेंगे कि महाराज का मन एक मछुवे (धीवर) की पुत्री में उलझ गया है ?"

कुमार ने सिर हिलाते हुए कहा—"महाराज शान्तनु के विषय मे यह बात सम्भव नहीं हो सकती।"

मन्त्री तुरत ही बोले—"देखो, राजकुमार, मैं कहता था न? किन्तु कुमार, इस बात को कौन जान सकता है कि मनुष्य के हृदय मे कैसे-कैसे विकार खोये पड़े हैं और उनमे से कौन-कौन-से कब-कब जागकर उस पर सवार हो जायंगे।"

"तब फिर वैद्य ने यह बात किस तरह जानी?" कुमार ने शान्त होकर पूछा।

मन्त्री ने कहा—"सुनिये। वैद्य ने लगातार दस दिन तक महाराज के मुंह से स्वप्न मे निकले हुए वचन सुने, चेष्टाएं देखीं; दिन के समय महाराज के साथ देश-विदेश की अनेक बाते कीं, उनके अंग-रक्षकों के साथ कई तरह के सवाल-जवाब किये और अन्त में इन सबके आधार पर निर्धारित अपना निर्णय मुझे कह सुनाया।"

"तब फिर महाराज स्वयं ही हम से यह बात क्यों नहीं कहते?" कुमार ने पूछा।

"कहे किस तरह?" मन्त्री ने कहा। "लोक-लाज वस्तु ही ऐसी है कि मानव-हृदय के स्वाभाविक प्रभाव को रोक देती है। और कुमार वैद्य के कहने के बाद मैंने निजी तौर पर जांच की तो पता लगा कि महाराज ने उस कन्या की मांग तक की थी।"

"यह बात? फिर क्या हुआ?" कुमार ने पूछा।

"किन्तु, कन्या के पिता ने आपत्ति की।" मन्त्री ने जवाब दिया।

"अपनी कन्या के रानी बनने पर मछुआ आपत्ति करता है?" कुमार ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"कर सकता है।" मन्त्री ने जवाब दिया। "यह तो अपनी मरज़ी की बात है। मछुवे ने महाराज से साफ ही कहा कि वह इस बात का वचन दे कि उसकी कन्या से उत्पन्न पुत्र ही हस्तिना-

पुर की गद्दी पर बैठेगा, तभी वह अपनी कन्या देगा।"

"पानी के जीवों पर अपनी गुजर करने वाले लोगों को भी ऐसा नशा चढता है? ठीक; फिर महाराज ने इस पर क्या कहा?" कुमार ने पूछा।

मन्त्री—"महाराज क्या कहते? उन्होंने सिर खुजाया। आप तो ठहरे देवीकुमार, आपको इस बात का क्या पता। किन्तु गंगा-देवी के रहते महाराज किसी दूसरे की तरफ नजर तक नहीं डालते थे। उस समय तो देवी की हुकार रहती थी, क्या मजाल थी कि महाराज कहीं और नजर डाल सकते।" अब गगादेवी के विलुप्त हो जाने से महाराज पर किसी का अंकुश नहीं रहा। किन्तु गद्दी के अधिकारी आप हैं, महाराज मछुवे को वचन दे ही कैसे सकते थे? फिर भी उनसे कन्या का मोह नहीं छूटता, इसीलिए दुःख पा रहे हैं। सारे शहर मे इसी एक बात की चर्चा है और लोग खुल्लम-खुल्ला कहते है कि महाराज को बुढ़ापे मे यह क्या सूझा है?"

किसी गहन विचार में से जागते हुए-से कुमार देवव्रत ने कहा—"मन्त्रीजी, एक ओर तो मै गद्दी का अधिकारी हू और दूसरी ओर महाराज का चित्त चुराने वाली कन्या है और इन दोनों के बीच आज महाराज की खींचा-तानी हो रही है। और यह खींच-तान ही उनके रोग का कारण है। महाराज का यह रोग धर्मानुकूल तो नहीं ही है। किन्तु कामदेव समाज के धर्माधर्म के इस प्रकार के बन्धन को कहां मानता है? मन्त्रीजी आपने महा-राज को इस रोग से मुक्त करने का कोई उपाय भी सोचा है।"

"हां, मैं तो सोच चुका हूं। आज महाराज को कोई सच बात कहने वाला नहीं है, अन्यथा उनसे कहना चाहिए कि वे इस कन्या के प्रति अपना मोह छोड़ दें।"

"तब क्या महाराज अच्छे हो जायगे?" कुमार ने पूछा।

"क्या आपका यह अनुभव है कि लोग काम के पाश से इस प्रकार एकदम छूट सकते हैं ?"

"तो फिर क्या हो ? न माने तो कुढ़ते रहे।" मन्त्री ने कह डाला।

"ठीक, उन्हे तो इस खीच-तान मे झुरना ही रहा। वे मोह को छोड़ सकते हैं न मुझसे ही कुछ कह सकते है। किन्तु मन्त्रीजी, मुझे ऐसा लगता है कि महाराज को इस पीड़ा से मैं मुक्त कर सकता हूं और मुझे वह करना ही चाहिए।"

"किस तरह ?" मन्त्री ने पूछा।

"मैं स्वयं हस्तिनापुर की गद्दी के अधिकार को छोड़ दू।" कुमार ने कहा।

"कुमार, कुमार! आप यह क्या कहते हैं ? यह तो महाराज की निरी वासना है। वे बड़े आदमी ठहरे, इसलिए कोई उनके सामने बोलता नहीं। मामूली आदमी कोई इस तरह की वासना करे तो लोग उसको कलंक लगावे। आपको इसके लिए गद्दी क्यों छोड़नी चाहिए। महाराज को कल सुबह होश आ जायगा।"

"मन्त्रीजी, इस तरह सोचना ठीक नहीं।" कुमार ने कहा। "मेरे लिए तो प्रश्न यह है कि पिताजी का जीवन अधिक मूल्यवान है अथवा हस्तिनापुर की गद्दी। यदि मैं पिताजी को बचा सकता होऊं तो हस्तिनापुर की गद्दी छोड़ देना मेरा धर्म है।"

"कुमार यदि आप युवराज न होकर एक साधारण व्यक्ति होते तो मैं आपकी इस वृत्ति को आदरपूर्वक स्वीकार करता। किन्तु आपका प्रश्न केवल व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है। आप गद्दी का त्याग करें, इसमें तो हस्तिनापुर की सारी प्रजा का प्रश्न निहित है। केवल पिता की वासना की तृप्ति के लिए आप हस्तिनापुर की गद्दी दूसरे के हाथों मे सौप दे यह बात मुझे तो लोककल्याण की दृष्टि से अधर्मपूर्ण प्रतीत होती है।" मन्त्री ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"मन्त्रीजी, आप भूलते हैं।" कुमार ने कहा। जिसे प्रजा की सेवा करनी होगी वह गद्दी पर न होते हुए भी प्रजा के अन्तः-करण मे अपने लिए नया सिंहासन बना लेगा। निरे गद्दी पर बैठने वाले तो कदाचित् ही लोक-कल्याण कर सकते हैं। मैं गद्दी का अधिकार छोड़कर लोक-सेवा का अधिकार तो छोड़ नहीं रहा हूं। इसके विपरीत गद्दी से थोड़ी दूर रहकर जनता की अभि-लषित कुछ अधिक ही सेवा कर सकूंगा। फिर किसे पता है कि मेरे भाग्य में ऐसी लोक-सेवा लिखी है या नहीं, आज तो पिता को रोग-मुक्त करना, और वह गद्दी का अधिकार छोड़कर भी, मुझे अपना धर्म प्रतीत होता है।"

"कुमार, मुझे तो आपका विचार अच्छा नहीं लगता।" मन्त्री ने निश्वास लेते हुए कहा—"महाराज आपका अधिकार छीनकर उस कन्या से विवाह करें, इसमे उनकी क्या शोभा रहेगी? आप पितृ-भक्ति से प्रेरित होकर ऐसा करते हैं, यह तो ठीक है, किन्तु इससे महाराज की आंख कब खुलेंगी इसका भी आपने विचार किया?"

"महाराज की और संसार की आंख खुलनी होगी तो इसी उपाय से खुलेगी।" कुमार ने धीमे स्वर में कहा। "किन्तु आंखें खुलें या न खुलें, मुझे अपने लिए जो धर्म प्रतीत होता है, उसी का पालन करना चाहिए। मेरा मन तो अब यह कहता है कि अब इस विषय में मुझे स्वयं ही मछुवे के पास जाकर कन्या की मांग करनी चाहिए, और अपना निर्णय भी उसे ही बताऊं, जिससे कि उसे सन्देह के लिए कोई कारण न रहे।"

"किन्तु आप पहले महाराज के कान तक तो यह बात पहुं-चावें। मेरा तो खयाल है कि महाराज स्वयं ही यह बात स्वीकार न करेंगे।" मन्त्री ने कहा।

"मुझे यदि गद्दी छोड़ने की कोरी बात ही करनी हो और

वास्तव मे गद्दी छोड़नी न हो तब तो महाराज के कानों तक यह बात पहुचाना ठीक है। किन्तु मुझे तो महाराज को निरोग करना है, इसलिए मैं सीधा मछुवे के ही पास जाऊंगा और कन्या की मांग करूंगा। आपको मेरे साथ चलना होगा।" कुमार ने दृढ़ता से कहा।

"जैसी कुमार की आज्ञा।" मन्त्री ने कहा।

कुमार ने आगे कहा—"मैं अभी तैयार होकर आता हू, आप जरा यहीं बैठे। हम अभी चलेंगे।"

मन्त्री बाहर जाते कुमार की ओर विचारमग्न होकर देखते रहे।

: ३ :

भीष्म-प्रतिज्ञा

"कुमार, कहिये क्या आज्ञा है।" मछुवे ने हाथ जोड़कर पूछा।

कुमार देवव्रत ने कहा—"भाई मैं तो आज्ञा लेने आया हूं, देने नहीं। मेरे आने का कारण तो तुम समझ ही गये होगे। अपने पिता के लिए तुम्हारी कन्या की मांग करने आया हूं।"

मछुआ जरा सीधा तनकर बोला—"कुमार हमारी लड़कियों के लिए राजमहल का वास कैसा ? हमारे लिए तो भले ये घास-फूस के झोंपड़े, भले ये फटे-टूटे कपड़े और भली यह नाव। धन्य है गंगा मैया, कि जो रात-दिन हमारा संरक्षण करती है। हमारे बालकों ने नदी के खुले जलवायु का सेवन किया है। अत राजमहल मे तो ये मुर्झा जायंगे।"

मन्त्री से न रहा गया, वह बीच मे ही बोल उठे—"भले मानुस, तू तो लक्ष्मी के तिलक करने आने पर मुंह धोने जाने के

समान कर रहा है ! हस्तिनापुर की गद्दी का अधिकारी राजकुमार मांग करने आया है जरा इसका ख़याल रख और सोच-समझ-कर जवाब दे। तेरी लडकी हस्तिनापुर की रानी बनेगी, यह भी समझता है या नहीं ?"

"मन्त्रीजी, मुझे क्षमा करो।" मछुवे ने शान्तिके साथ जवाब देते हुए कहा। "मेरा यह विश्वास है कि हमारे इस परिश्रमी जीवन में जो आनन्द है वह राजकीय जीवन मे ढूंढे भी नही मिलेगा। आज तो मैं, मेरी स्त्री और यह लडकी, तीनों ही हवा से चलती नाव चलाते हैं,कमाते हैं और खातेहैं। पास के प्रकाश-स्तभ पर जलाने के लिए दीपक रखा है, उसे मैं भी जलाता हूं और यह लडकी भी जलाती है। किसी समय गगा माता क्रोधित होकर विकराल रूप धारण करती है, उस समय हमारी नाव आकाश-पताल देखती है और हम किनारे पर खड़े हुए झुरते रहते है, उसमे भी भगवान् न करे यदि हममें से किसी को गगा में समा दे तो हम आह भरकर बैठ रहेंगे। लेकिन इस सुख-दु ख मे हम सब साथ हैं। सब एक साथ काम करते हैं, साथ रहते है, साथ रोटी खाते है और साथ ही दु ख झेलते हैं। अपने पसीने की कमाई की रोटी खाने वालों को जहां ऐसा आनन्द मिले ऐसा कोई राजमहल है ? कुमार, मुझे क्षमा करना हम किनारे पर बसने वाले लोगों को अच्छी तरह बात करना नहीं आता।"किन्तु मेरी लड़की राजा से ब्याही जायगी इसलिए इसके हाथ-पैरों में मेंहदी लगाई जायगी। क्या आप समझते हैं कि हमारी नाव पर डांड चलाने से मेरी लड़की के हाथों में आज जो ललाई है, वह कही मेंहदी से आने वाली है ? मैं ज़ानता हूं कि मेरी लड़की राजमहल के हिंडोले पर झूलेगी, किन्तु मन्त्रीजी, इस गंगामैया का पानी जिस समय हिंडोले लेता है और हमारी बच्ची को अपनी छाती पर नचाता है वह आनन्द उसे कहा मिलने वाला है ?

हम तीनों इस घास के झोपड़े मे बैठकर जिस आनन्द के साथ रूखी-सूखी रोटी खाते है, राजमहल के विविध प्रकार के भोजन में भी वह आनन्द उसे नहीं मिलेगा। इसलिए मन्त्रीजी, मेरे मन में यही ख़याल होता रहता है कि अपनी लड़की को मुझे इस दुःख में नहीं डालना चाहिए। अपने शरीर के ढांचे को निकम्मा बनाने मे जो बड़प्पन मानते हों ऐसे ही किसी परिवार की कन्या महाराज के लिए खोज निकालिये, मेरी यह कन्या राजमहल में कुम्हला जायगी।"

"कुमार, यह तो और भी चपट निकला। आपने ज्यों-त्यों करके घूंट गले के नीचे उतारी तो यह मछुआ और भी चतुराई दिखाने लगा।" मन्त्री ने कुमार से कहा और फिर मछुवे की ओर मुड़कर कहने लगा—"भाई, तू तो इस तरह की बातें करता है जैसे हमने तेरा जीवन देखा ही न हो। रात दिन डाड चलाते-चलाते प्राण निकले जाते हैं यह तो कहता नहीं है, और सुख आनन्द की बातें करता है। यदि तुझे लड़की देना ही नहीं होता तो यह क्यों कहा था कि 'मेरा धेवता गद्दी पर बैठे तभी मैं उसे दे सकता हूं?' आज बुद्धिमान बनकर बड़ी-बड़ी बातें बनाने बैठा है।"

"यदि मेरा वश चलता हो तो मैं किसी भी शर्त पर महाराज को कन्या न दूं। संसार में जहां-जहां गरीब लोगों ने मालदार जंवाई ढूंढे हैं, वहां वहां ही उनके हाथ जले हैं। किन्तु मन्त्रीजी, मैं करूं क्या, मेरी लड़की को भी महाराज से विवाह करने का मोह हो गया है। मैंने उसे बहुत समझाया लेकिन मेरी बात उसके गले उतरती ही नहीं, इसलिए लाचार हूं।" मछुवे ने गम्भीर भाव धारण करते हुए कहा।

"तब फिर कुमार की मांग स्वीकार करके कन्या का विवाह महाराज के साथ कर दे।" मन्त्री ने कहा।

"लेकिन' ' मछुवा रुककर बोला। मन्त्रीजी, मैंने थोड़ी दुनिया देखी है। अपने जीवन को निचोड़कर पालित-पोषित पुत्रियों को राजमहल मे ढकेल देने के बाद उनकी क्या दशा होती है यह मैंने सुन रखा है। जब तक वह राजा की आंखों मे चढी रहती है तब तक तो रानी रहती है, और नजरों से उतर जाने के बाद महल के एक कोने मे पड़ी-पड़ी सड़ने वाली एक कंगाल अबला रह जाती है। इसीलिए मेरा यह आग्रह है कि महाराज से अपनी लड़की का विवाह करूं तो एक शर्त पर कर सकता हूं कि उससे उत्पन्न पुत्र ही गद्दी पर बैठे।"

"इससे क्या लाभ ? यदि तेरा धेवता गद्दी पर न बैठे तो अन्त मे नाव चलायगा और अधिक सुखी होगा यही न ?" मन्त्री ने कहा।

"मेरे विचारों के अनुसार तो यही बात है, लेकिन मेरी लड़की के विचारों के अनुसार नहीं। लड़का गद्दी का अधिकारी हो तो किसी-न-किसी दिन रानी की पूछ होना सम्भव है। विवाहित जीवन मे रही हुई कमी राजमाता के रूप में पूरी कर लेने से उसे सतोष हो सकता है। मेरी कन्या को जो आज 'महाराज' 'महाराज' की धुन लगी हुई है, वह तो अधिकतर आंखों का आकर्षण-भर है। मुझे तो पिता की हैसियत से उसके भविष्य का भी विचार करना है।" मछुवे ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"तो तेरी मांग यही है न कि कुमार देवव्रत के बजाय तेरा नाती गद्दी का वारिस समझा जाय ?" क्या तू यह नहीं समझता कि ऐसा करके तू इस कुमार के साथ अन्याय करता है ?" मन्त्री ने पूछा।

"यह तो स्पष्ट ही है।" मछुवे ने कहा। यदि मेरी चलती तो मैं अन्याय समझी जाने जैसी कोई मांग करता ही नहीं। आप सब महाराज के सलाहकार हैं, इसलिए आपको यह अन्याय रोकना

चाहिए। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज की और मेरी लडकी की, दोनों ही की बुद्धि मारी गई है।"

देवव्रत ने बीच में ही टोकते हुए कहा—"मन्त्रीजी, आड़ी टेढ़ी बाते छोडिये। मेरा खुद का यह आग्रह है कि महाराज इस मछुवे की कन्या से विवाह कर लें। और भाई मछुवे, तू जो शर्त कर रहा है वह तेरी दृष्टि से सर्वथा उचित है। महाराज आज पीड़ित है, उससे उन्हे मुक्त करने का मुझे केवल एक ही उपाय दिखाई देता है और वह यह कि मुझे हस्तिनापुर की गद्दी का अपना अधिकार छोड़ देना चाहिए। क्यों, यही बात है न ?"

"कुमार मै यह नहीं कहता। आप खुशी से राजगद्दी भोगे।" मछुवे ने कहा।

देवव्रत से न रहा गया। वह बोले—"भाई तू यह नहीं कहता, लेकिन मै कहता हू। मन्त्रीजी सुनो—"आर्यावर्त की इस पतित-पावनी गंगामैया के तट पर खड़े होकर मै देवव्रत प्रतिज्ञा करता हू कि 'हस्तिनापुर की गद्दी पर मै अपना कोई अधिकार न जमाऊंगा।' बस भाई मछुवे। अब अपनी कन्या का विवाह महाराज से करके मुझे चिन्ता-मुक्त कर।"

मछुवे ने मुस्कराते हुए कहा—"कुमार तुम्हारी प्रतिज्ञा तो ठीक है, किन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं होता।"

"तू तो कोई निरा गंवार प्रतीत होता है।" मन्त्री ने क्रोध के आवेश में कहा।

मछुवा फिर हसा और बोला—"राजपुरुषों को तो मुझ-जैसे व्यक्ति गंवार ही प्रतीत होते हैं। लेकिन गंवार लोग सफेद दीवारों और श्वेत वस्त्रों के पीछे छिपे रहते हैं या ऐसी झौंपड़ियों और लंगोटियों के पीछे यह बात दुनिया से छिपी नहीं है।"

"मन्त्रीजी, ऐसी बात न कहो।" कुमार ने बीच में पड़कर कहा, और मछुवे से पूछा—भाई तुझे अभी भी असन्तोष

बना हुआ है ?"

"जी हां", मछुवे ने जवाब दिया। "मुझे इसमें तो जरा भी शका नहीं है कि आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे और गद्दी की ओर नजर उठाकर भी नहीं देखेंगे। किन्तु आपके पुत्रों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। उन्होंने तो कोई प्रतिज्ञा की नहीं है, इसलिए गद्दी के लिए उनका लडना स्वाभाविक ही है। और उस समय मेरा नाती निस्सहाय हो जायगा। चाहे जैसा भी हो वह होगा तो मछुवे का नाती। समस्त क्षत्रियजाति आपके पुत्रों के पक्ष मे खड़ी होगी और आपके प्रतिज्ञा-पालन करने पर भी मेरी लड़की और नाती दोनों ही दु खी होंगे।"

मन्त्री चकित हो उठे और कहने लगे-"ओह ! यह तो कोई बड़ा भारी राजनीतिज्ञ मालूम होता है। इसे तो महाराज को विदेश-विभाग का मन्त्री नियुक्त करना चाहिए। कुमार, यह मछुवा अब सीमा से बाहर की बातें करने लगा है।"

इस बीच कुमार आखें बन्द करके जरा गहराई में उतर गये। जीवन के छोटे-बडे अनेक प्रश्न उनके सामने आकर खड़े हुए और छुट्टी लेकर चलते हुए। हस्तिनापुर की गद्दी, भावी गृहस्थ-जीवन सन्तान,काम तृप्ति, ये सब प्रश्न एक के बाद एक मन में पैदा हुए और विलीन होते गये। पिता की रक्षा के एक ही महा विचार ने इन सब विचारों को दूर ढकेल दिया, और कुमार मानो इन सबके बीच से डुबकी मारकर निकले हो इस तरह सिर हिलाते हुए बोले—"भाई, धीवर ! मैंने विचार कर लिया है। गद्दी पर के अपने अधिकार को मैं कभी का छोड़ चुका हूं, किन्तु तुझे मेरे पुत्रों का डर बना हुआ है। अतः मन्त्रीजी, माता गंगा, आर्यावर्त्त के देवताओ और कुरुकुल के पूर्वजो, सुनो—'मैं देवव्रत प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं स्वयं सन्तान उत्पन्न करूंगा ही नहीं और इसके लिए विवाहित जीवन में भी प्रवेश नहीं करूंगा।' बोल भाई

धीवर, अब तो बस ? अब भी तेरा कोई डर बाकी रहा है क्या ?"

मन्त्री और धीवर दोनों ही कुमार की प्रतिज्ञा सुनकर स्तब्ध रह गये। धीवर की कन्या भी आश्चर्य-चकित रह गई। सारा वातावरण गम्भीर बन गया और दूर दूर उछलती हुई गंगा मैया की लहरों के बीच से न मालूम किस तरह आवाज आई "यह प्रतिज्ञा तो अत्यन्त भीष्म है, और ऐसी प्रतिज्ञा लेनेवाला भी भीष्म है।"

और इसी दिन से देवव्रत भीष्म कहलाने लगे।

: ४ :

वंश की रक्षा का प्रश्न

महाराज शान्तनु ने धीवर की कन्या से विवाह कर लिया। कन्या का नाम मत्स्यगधा था, उसे बदलकर सत्यवती किया। सत्यवती के महाराज शान्तनु से दो पुत्र हुए। समय बीतने पर महाराज शान्तनु का स्वर्गवास हुआ और सत्यवती का पुत्र हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठा। बड़े भाई भीष्म इन भाइयों के लिए दो राज-कन्याएं अपहरण करके लाये और उनसे इनका विवाह किया।

किन्तु सत्यवती के दोनों पुत्र छोटी अवस्था में ही मृत्यु के ग्रास बन गये और पीछे युवती विधवाएं छोड़ गये। रानी सत्यवती के शोक की कोई सीमा न रही। दोनों ही पुत्रों के कोई सन्तान न थी, इसलिए हस्तिनापुर की गद्दी का पुराना प्रश्न सत्यवती के सामने फिर आ खड़ा हुआ और उसे परेशान करने लगा।

पुत्रों की उत्तर-क्रिया से निवृत्त होकर एक बार बैठी थी कि भीष्म वहां आ पहुचे और बोले—"माताजी कैसे बैठी हो ?"

सत्यवती जरा शरमाती हुई बोली—"ओह, भीष्म ! तुम आये ? मैं तुम्हे कभी की याद कर रही थी।

"कहिए क्या काम है?" भीष्म ने पूछा।

"हां, तो मैंने जो कहा था, उस पर तुमने विचार किया ? मेरी बात समझ मे आती है ?" सत्यवती ने पूछा।

"इसमे विचारने का समय ही नहीं है, और समझ मे आने-जैसी कोई बात भी नही है।" भीष्मने बैठते-बैठते कहा, "गंगामैया के किनारे खड़े रहकर मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उससे मैं बाल बराबर भीं पीछे नहीं हटना चाहता।"

"किन्तु भीष्म ! क्या समूचे कुल का नाश होते देखकर भी हठ न छोड़ना उचित है ?" सत्यती ने जरा नजदीक आकर कहा।

"माता, ऐसा न कहो। यह हठ है ही नहीं अपने वचन पर शुद्ध बुद्धि से टिके रहने के विचार को ही यदि तुम हठ कहती हो, तो फिर मुझे कुछ कहना नहीं है।" भीष्म ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"किन्तु गंगा-सुत भीष्म ! उस दिन के संयोग ही कुछ और थे। उस समय मै छोटी थी, गंगा के पुत्र मे कितनी उदार वृत्ति और कितनी महानता होगी, मैं यह कुछ भी नहीं जानती थी, और महाराज केवल मूढ़ होकर बैठ गये थे। उन सब संयोगों में मेरे पिता ने तुमसे ऐसी प्रतिज्ञा करवाई थी।" सत्यवती ने व्याकुल होकर कहा।

भीष्म ने तत्काल उत्तर दिया—"और वह प्रतिज्ञा थी अतः उसका यथोचित पालन होना ही चाहिए माता। मुझसे व्यर्थ का आग्रह न करो। इसके विपरीत, यदि आज मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने के लालच में पड़ भी जाऊं तो आपको मुझे उससे बचाना चाहिए। प्रतिज्ञा-भंग से होने वाला कुल का नाश अप्रकट किन्तु

अधिक भयङ्कर होता है। इसलिए माताजी, आप कोई और उपाय सोचिये।"

"तो फिर एक ही उपाय बाकी रह जाता है और वह है नियोग का।" सत्यवती ने कहा।

"इसमें तुम्हे जैसा ठीक लगे सो करो।" भीष्म ने कहा।

"भीष्म, अब ऐसा उडाऊ जवाब ठीक नहीं।" सत्यवती ने तुरन्त ही कहा। "मुझे ठीक लगने प्रश्न नहीं है, हम दोनों के ठीक लगने का प्रश्न है। अब तो मुझे तुम्हारी सलाह पर चलना है। भीष्म, इतने वर्षों मे मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है और यह निश्चय पूर्वक मानो कि मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है। इस राज्य की बागडोर अब तुम्हारे हाथ मे है। बोलो, गद्दी के लिए क्या करना है। गादी पर बिठाने के लिए पुत्र की तो आवश्यकता है हां।"

"नियोग का मतलब तो यह है कि कोई पर पुरुष इन वधुओं से सन्तानोत्पत्ति करे। आपकी कठिनाई मैं समझता हूं किन्तु आपकी नियोग की बात मेरी समझ में नहीं आती।" भीष्म ने विचार करते हुए कहा।

"इसमें क्या आपत्ति है?" सत्यवती ने कहा। "अपने समाज में मैं नियोग के कई उदाहरण बता सकती हूँ।"

"माता सत्यवती, यह तो मैं भी जानता हू कि समाज में नियोग प्रचलित है, किन्तु यह प्रथा सम्मान योग्य नहीं है। आज तो अपने समाज में भी कितने ही सज्जन पुरुष ऐसे जंगली रिवाज को पसन्द नहीं करते।" भीष्म ने जवाब देते हुए कहा।

"किन्तु भीष्म, नियोग की तो शास्त्रों में भी स्वतन्त्रता दी गई है। इसके सिवा आज तो वंश की रक्षा का और कोई उपाय नहीं सूझता।" सत्यवती ने कहा।

भीष्म ने कहा—"यह मैं समझता हूं किन्तु अभी तक हमें इस

वस्तु से उतनी घृणा न थी, जितनी आज है। यों तो एक दिन ऐसा भी था, जब कि हम आर्यों मे विवाह की प्रथा ही नहीं थी और स्त्री और पुरुष स्वच्छन्द विचरते थे। एक बार एक ऋषि के आश्रम मे स्वयं ऋषि, उनकी पत्नी और पुत्र तीनों बैठे थे कि इतने ही मे वहां अचानक एक दूसरे ऋषि पहुचे और ऋषि-पत्नी की कलाई पकड़कर चलते बने।"

"क्या बात कहते हो? अच्छा फिर?"

"सच कह रहा हू।" भीष्म ने कहा। "फिर क्या, ऋषि तो कुछ बोले नहीं किन्तु उनके पुत्र की आंखों मे यह बात खटक गई और वह गरम हो उठा।"

"फिर?"

"फिर" भीष्म बोले "ऋषि ने उसे जरा शात किया और आर्यों मे प्रचलित प्रथा की बात कही। इस पर पुत्र ने कहा—"पिताजी, हम आर्यों मे अभी तक यह प्रथा भले ही चली आई हो, किन्तु अब से ऐसी प्रथा बन्द होनी चाहिए और आर्य स्त्री-पुरुषों को विवाह बन्धन मे बाधकर अपने पर अकुश लगाना चाहिए। तब से आर्यों मे विवाह आरम्भ हुए।"

"पहले ऐसी बात थी, यह किस तरह माना जाय?" सत्यवती ने कहा।

भीष्म ने जवाब देते कहा—"ऐसा ही था, और इतने पर भी वह किसी के मन को चुभती न थी। समय बीतने पर यही बात चुभने लगी और ऋषि-पुत्र ने इस चुभन को स्पष्ट रूप से प्रकट किया। नियोग की इस प्रथा के सम्बन्ध मे भी वही बात है। प्रचलित प्रथा है इसलिए यह कितनी दूषित है इसका हमको अनुभव नहीं होता। किन्तु स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की पवित्रता को अधिक उच्च कक्षा तक ले जाने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति इस प्रथा की निन्दा करते हैं और मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है

कि कुछ ही वर्षों में यह प्रथा जड से जाती रहेगी।"

सत्यवती को आवेश हो आया और वह बोली—"यह जिस दिन नष्ट होगी तब की बात तब से रही। आज तो मैं महाराज शान्तनु की बेल को जीवित रखना चाहता हू। भीष्म ! तुम्हारे अपने निज के विचार चाहे जो कुछ हों, किन्तु इस विषय मे मैं तुम्हारी सहायता चाहती हू।"

"तो कहो, आप क्या करना चाहती हैं ?" भीष्म ने कहा।

"भीष्म !" सत्यवती कुछ अटकती हुई बोली "सच कहूं ? तुम्हें अपने पेट के लडने के समान समझकर कहती हूं, भला। कहू ?"

"अवश्य कहिए।" भीष्म ने कहा।

"मेरे प्रति कोई विपरीत विचार तो न करोगे ?" सत्यवती ने जरा शकाशील होते हुए पूछा।

"इतने वर्षों के अनुभव के बाद भी यदि विश्वास न होता हो तो फिर मैं क्या कह सकता हूं ?" भीष्म ने कहा।

"भीष्म, वर्षो पहले की बात है। एक बार जब मैं गगा मैया के पानी पर नाव चला रही थी तब मेरा पराशर ऋषि के साथ समागम हो गया था और उनसे मेरे एक पुत्र हुआ था।" सत्यवती ने झिझकते हुए बताया।

"आज वह पुत्र कहा है ?" भीष्म ने पूछा।

"वह आज वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध है।" सत्यवती ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा।

"क्या, भगवान् वेदव्यास तुम्हारे पुत्र हैं ? अहोभाग्य तुम्हारे कि तुमने ऐसे पुत्र को जन्म दिया ?" भीष्म कह उठे।

"अपने इसी पुत्र को मैं नियोग के लिए बुलाने का विचार कर रही हूँ।" सत्यवती ने कहा।

"भगवान् व्यास को ?" भीष्म ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा। "तुम कैसी बात कहती हो माता ?"

"इसमे शंका की कोई बात नहीं है भीष्म ! चलते समय वह मुझसे कह गया था इसलिए अवश्य ही आयगा।" सत्यवती ने निश्चयपूर्वक कहा।

भीष्म ने सिर खुजाते हुए कहा—"मैं तो नही समझता कि वह आयेगे और तुम्हारी बात स्वीकार करेंगे। वर्तमान विश्व-के नवीन विचारकों में वे अग्रसर हैं, ऐसी दशा में ऐसी बात वे कैसे कर सकते हैं। फिर वह बात जुदी है कि माता का आदेश हो और उन्हें यह स्वीकार करना पड़े।

"यही बात है। बाकी तो तुम सब लोग एक से ही हठी हो। एक बार जिस बात को पकड़ लेते हो उसे छोडना जानते ही नहीं। किन्तु माता की हैसियत से मैं उससे मांग करूंगी। तुम्हारे तो प्रतिज्ञा लेने में भी मैं ही कारणभूत थी, इसलिए आदेश देते हुए संकोच होता है। किन्तु व्यास से तो मैं इतनी बात आग्रह पूर्वक कह सकूंगी। और मेरा मन गवाही देता है कि चाहे जितना विरोध करने पर भी अन्त मे वह मेरा मन रखेगा।"

"तब तो उन्हे अवश्य बुलाओ।" भीष्म ने कहा। "यदि यह बात निश्चित है कि हमे गद्दी के लिए पुत्र की आवश्यकता है तो इन सब उपायों का अवलम्बन भी उतना ही निश्चित है।" भीष्म ने कहा।

, ऐसा ही है।" सत्यवती ने कहा। "जब एक बात करनी ही है तो फिर ढीले-ढाले मन से क्यों की जाय ? मैं अभी व्यास को बुलाने का उपाय करती हूं और अम्बा और अम्बा-लिका के कान में भी यह बात डाले देती हूं। मुझे तो तुम्हारे मत का खयाल रखना है, फिर ये पुत्र-वधुएं क्या कहती हैं उसका भी ध्यान रखना है, और इतने पर भी महाराज शान्तनु के वंश की रक्षा तो करनी ही है।"

"अच्छा माताजी, अब मैं जाना चाहता हूं।" यह कहकर भीष्म खडे हो गये।

"अच्छा जाओ।" व्यास के आने के बाद आवश्यकता पड़ी तो तुम्हे बुलाऊंगी।"

यह कहकर सत्यवती उठकर पुत्र-वधुओं के कमरे की ओर चली और भीष्म अपने महल की तरफ गये।

: ५ :

विकर्ण की नजर में

विकर्ण दुर्योधन का छोटा भाई था। जिस समय द्यूत-सभा में कौरवों के अधर्म को सब कोई चुपचाप सहन कर गूंगे बने बैठे थे, उस समय विकर्ण ने उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई थी और अपना पुण्य-प्रकोप प्रकट करने के लिए सभा छोड़कर चला गया था।

द्यूत-सभा के अगले दिन विकर्ण भीष्म पितामह के महल पर गया। पितामह नित्य-कृत्यों से निबटकर अपने बगीचे में टहल रहे थे। वहीं विकर्ण पर उनकी नज़र पड़ी और उन्होंने पूछा—"कहो विकर्ण, इस समय कहां से आ पहुचे?"

"पितामह", विकर्ण ने जवाब देते हुए कहा—घर चैन नहीं पड़ रहा था इसलिए आपके पास आने को जी कर आया।"

"आज शहर में उत्तेजना कैसी है?" भीष्म ने पूछा।

विकर्ण ने तुरन्त जवाब दिया। "उत्तेजना तो ऐसी है कि अपना सब कुछ ही उसमे भस्मीभूत हो जाय, किन्तु पितामह! समाज स्वभाव से ही इतना शान्त है और बड़े भाई इतने चालाक हैं कि यह उत्तेजना भा समय पाकर शान्त हो जायगी। किन्तु मुझे आश्चर्य तो यह है कि आप और द्रोणाचार्य-जैसों के बैठे रहते भी पांचाली का चीर खींचा गया।"

भीष्म ने एक चबूतरे पर बैठते हुए कहा—"इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात ही नहीं। कुरुकुल का विनाश निकट आगया है, ये सब उसी के चिह्न है। तेरा बडा भाई अपने कुल का नाश करने के लिए ही पैदा हुआ है।"

विकर्ण ने जबाव मे कहा—"पितामह, यह तो मै भी मानता हू। विनाश के निकट होने पर ही इस तरह की बाते सूझती हैं। लेकिन आप यह सब गूंगे बने हुए किस तरह देखते रहते हैं?"

"मैंने तो वहीं उसी समय आपत्ति की थी।" भीष्म ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा।

"पितामह!" विकर्ण ने नीचे बैठते हुए कहा। "इस तरह के शब्दों को कहीं आपत्ति करना थोड़े ही कहा जा सकता है? यह तो अपना मतभेद कहा जा सकता है। हमारे सारे कुल मे आपका वह पूर्व जीवन, आपका गौरवपूर्ण स्थान आपका ज्ञान, आपकी प्रतिष्ठा और कुछ न हो तो भी आपके ये सफेद बाल, हमें आपसे कहीं अधिक आशाए रखने को प्रेरित करते हैं।"

"मैं तो जब-जब मुझे प्रतीत होता है तेरे पिता और भाई को चेताता रहता हू; किन्तु उनका काल निकट आ गया है इसलिए उनके कानों को कुछ सुनाई नहीं देता।" भीष्म ने कहा।

"पितामह! आपका चेताना भर काफी नहीं कहा जा सकता।" विकर्ण ने उत्तर में कहा।

"तब क्या करूं?" भीष्म ने प्रश्न किया।

विकर्ण ने अधिक निकट आकर जवाब देते हुए कहा—"पितामह! आपको यह बताने का मुझे क्या अधिकार है? माता सत्यवती ने एक बार आपको अपनी प्रतिज्ञा से डिगाने के लिए कितनी अधिक महनत की, किन्तु आप हिमालय की तरह अचल ही बने रहे; एक बार आपके गुरु परशुराम ने अम्बालिका को

फिर स्वीकार करके विवाह करने के लिए अत्यन्त आग्रह किया,-उस समय भी आपने अपना निश्चय न छोड़कर स्वय गुरु के विरुद्ध हथियार उठाये और अन्त मे अपनी मनचाही बात करके रहे। क्या ये दोनों बाते सच हैं?"

"हा, दोनों ही बाते सच हैं।" भीष्म ने जवाब दिया।

विकर्ण ने तुरन्त ही जवाब दिया।

"तब फिर सारे कौरव-वश मे पहले कभी भी घटित न होने वाली कुल-वधू के चीर खींचे जाने जैसी घटना के अवसर पर आप केवल उचित अनुचित का शास्त्रार्थ करने बैठ गये क्या यह ठीक था? आपने चाहा होता तो आप महाराज धृतराष्ट्र को अच्छी तरह झकझोर सकते थे, आप चाहते तो शकुनि मामा के चपत लगाकर बाहर निकाल सकते थे, और बड़े भाई साहब को कान पकड़कर नीचे बैठा सकते थे, इतना ही नहीं आपने चाहा होता तो दु शासन की क्या मजाल थी कि द्रौपदी के एक अंगुली भी छूता?"

"इसका अर्थ तो यही हुआ न कि मैं ठीक तरह नहीं चाहता, इसीलिए ऐसा होता रहता है?" भीष्म ने पूछा।

"बहुत-कुछ अश मे यही बात है।" विकर्ण ने कहा। "इस प्रकार की घटनाओं से आपके चित्त मे जो चिन्ता होनी चाहिए वह होती प्रतीत नहीं होती। मैं यह जानता हू कि आप ऐसे प्रसंगों पर बड़े भाई को रोकते है। लेकिन वह पक्के आदमी हैं। वह समझते है कि पितामह अधिक-से-अधिक गुस्सा निकाल लेगे। वास्तव मे आपके शब्दों के पीछे उन्हे कोई शक्ति दिखाई नहीं देती।"

"शक्ति दिखाना न दिखाना तो दुर्योधन के हाथ की बात है।" भीष्म ने कुछ दीनता के साथ कहा।

"केवल ऐसी ही बात नहीं है।" विकर्ण ने कहा। "यह मैं

जानता हूं कि आपके कितना कुछ कहने पर भी बड़े भाई कुछ नहीं मानते। वस्तुत आज उनके मन मे यह निश्चय है कि पितामह कुछ भी कहते रहें, आखिर हैं वह मेरे ही। आपके इस मूक सहयोग पर तो बडे भाई और उनके साथी नाचते हैं, और समाज भी आपके ऐसे सहयोग के कारण भारी भ्रम मे पड़ता है।"

"किन्तु विकर्ण, क्या तू समझता है कि जिस तरह तू सभा से उठकर चला गया उस तरह मैं भी जा सकता था?"

"अवश्य जा सकते थे।" विकर्ण ने तत्काल उत्तर दिया। "मेरे जैसे मामूली आदमी के चले जाने को तो मूर्खता कहकर उड़ाया जा सकता है। किन्तु आप तो समस्त कौरव-कुल के सरक्षक के समान हैं। आप उठ कर चल दिये होते तो सारी सभा और बड़े भाई भी विचार में पड जाते, और कदाचित बडे भाई स्वयं आपके पैरों में पड़ने आते। किन्तु आप बैठे रहे और आपके देखते, आपको साक्षी बनाते हुए चण्डाल चौकडी सारा खेल खेलती रही।"

"चिरंजीव, तू जो कह रहा है वह मेरे गले उतर रहा है" भीष्म ने धीमे स्वर मे कहा।

"पितामह! आपको याद है महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय पहले पूजा किसकी की जाय यह प्रश्न खड़ा हुआ था और आपके यह मत प्रकट किया था कि 'श्रीकृष्ण ही अपने युग के महापुरुष हैं अत. प्रथम पूजा उन्हीं की होनी चाहिए' इस पर कितनी खलबली मची थी?" विकर्ण ने अपना बोलना जारी रखते हुए कहा। "उस समय शिशुपाल, जरासिन्धु आदि कितनी उछल-कूद करने लगे थे यह आप भूले न होंगे। किन्तु आपका रोआं भी खड़ा न हुआ, और शिशुपाल का सिर धड़ से जुदा होकर पृथ्वी पर गिरा तब भी आपको जरा भी क्षोभ

न हुआ। जो ऐसे पितामह को देख चुका हो, उससे यदि कोई कहे कि कल सभा मे पितामह चित्रवत् बैठे पाञ्चाली का चीर हरण देखते रहे, तो वह उस पर कैसे विश्वास करेगा ?"

"पुत्र विकर्ण !" भीष्म धीमे स्वर मे कहने लगे—"तेरे वाक्य तो हृदय के आर-पार होते जाते है और तू जो कहता है वैसा करने को मन भी बहुत चाहता है, किन्तु फिर भी यह खयाल होता है कि मेरे बैठे रहते पापी दुर्योधन कुछ तो मर्यादा मे रहेगा।"

विकर्ण विद्रूप स्वर मे कहने लगा—"पितामह ! यह तो आपके मन का पछतावा मात्र है। आपके सहारे बड़े भाई यह सब-कुछ कर पाते हैं। आप एक-बार उनका त्याग करके तो देखे ? लेकिन बडे भाई अच्छी तरह जानते हैं कि आप उन्हे छोड़ नहीं सकेंगे, इसीलिए उछल-कूद करते रहते है !"

"त्याग करना तो चाहिए लेकिन उसके लिए मन नही करता। यही विचार हो आता है कि किसी तरह अपना वंश टिका रहेगा तो यह आन्तरिक कलह तो अपने-आप मिट जायगा, इसीलिए किसी तरह निभा रहा हू।" भीष्म ने जवाब देते हुए कहा।

प्रत्युत्तर में विकर्ण ने कहा—"पितामह ! बड़े भाई ने आपके इस मोह को अच्छी तरह ताड़ लिया है। आप एक बार उन्हे खुला छोड़कर तो देखिए, फिर भले ही वह इससे हजार गुना अत्याचार करे।"

भीष्म बोले—"भाई विकर्ण ! मेरे जितनी तेरी आयु हो लेने दे, फिर बात करना। मुझसे ऐसा हो नहीं सकता। दुर्योधन मुझ-जैसे बूढ़े की कितनी चिन्ता रखता है इसका भी तुझे पता है ? दुर्योधन के कार-बार में मुझे जरा भी असुविधा नहीं होती, यह सब भूल कर उसका त्याग करना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता।

विकर्ण ने कहा—"पितामह ! जिस रात बड़े भाई पैदा हुए

उस रात कोई नहीं जन्मा। आपको और प्रजा को अच्छी तरह रखने मे बड़े भाई का मतलब है। क्या आप जानते है कि अपनी चालाकी से आपको और प्रजा को प्रसन्न रखकर वह समस्त आर्यावर्त के लोकमत को अपने पक्ष में खींचना चाहते है ? इस प्रकार बड़े भाई की ओर से मिलने वाली सब प्रकार की सुख-सुविधा मे फंसकर तो आप पाण्डवों के साथ अन्याय करते हैं।

"विकर्ण" भीष्म बोले-"तू मुझसे एक नौजवान की-सी-जल्दबाजी करने को कहता है यह ठीक नहीं। आज तो पाण्डव बन में गये हैं, और तेरह वर्ष समय के साथ-साथ बीत जायगे, उसके बाद जब पाण्डव घर वापस लौटेंगे तो एक साथ मिलकर रहेंगे।"

विकर्ण-"आपको ऐसी आशा भले ही हो, मुझे तो ऐसा प्रतीत नहीं होता। एक दो नहीं, तेरह-तेरह वर्ष तक यत्न पूर्वक मन मे संचित वैर उस दिन जोर के साथ फूट निकलेगा और अपने सारे कुल का नाश कर डालेगा। आप और द्रोणाचार्य हमारे पक्ष मे से हट जाय तो बड़े भाई की आंखे आज ही खुल जायं।"

"तेरी बात मेरे गले नहीं उतरती।" भीष्म गहरे विचार से जागकर बोले "फिर अपने प्रति दुर्योधन के सौजन्य को देखकर भी ऐसा करना उचित प्रतीत नहीं होता।"

"पिता यह यह न समझिये कि बड़े भाइ के उस सौजन्य मे कुछ वास्तविकता है; यह तो आपको और द्रोणको अपने पक्ष में रखने का मूल्य है।" विकर्ण ने कहा।

"नहीं, नहीं। दुर्योधन कैसा ही हो, कम-से-कम इतना दुष्ट नहीं है। अपने वश में इतनी गहरी दुष्टता पैदा हो नहीं सकती" भीष्म ने सिर हिलाते हुए कहा। "किन्तु विकर्ण कल की घटना

से तो मैं चौंक गया हूं, और दुर्योधन को चेता देना चाहता हूं कि फिर कभी ऐसा हुआ तो यह समझ रख कि भीष्म तेरा साथ न देगा।"

विकर्ण ने कहा–"आप भले ही यह सब कहें। किन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि आज आप पर बुढ़ापा छा गया है। यदि ऐसा न होता तो क्या हस्तिनापुर के सारे राज्य-सिंहासन पर और विवाहित जीवन के सारे सुखों पर लात मार देने वाला व्यक्ति आज स्थूल देह की सामान्य सुविधाओं पर लात नहीं मार सकता था। किन्तु बड़े भाई की चालाकी ने आपको अपने वश में कर लिया है इसलिए भले ही विचार और वाणी में आप चाहे जितना जोश दिखावें लेकिन आपका निश्चय इतना क्षीण हो गया है कि व्यवहारतः आप बड़े भाई को छोड़ नहीं सकेंगे। आप बड़े भाई की पीठ पर खड़े रहकर अपने कुल को बचाने की इच्छा रखते हैं मुझे तो यह स्पष्ट रूप में आपकी दुर्बलता प्रतीत होती है। हम नवयुवक तो यह सोचते हैं कि दुःशासन ने द्रौपदी का चीर खींचा और आप वह देखते रहे, इसलिए आप भी चीर खींचने मे भागी हुए। इसी तरह बडे भाई जो-जो अधर्म करते हैं, उन सब मे आप भी भागीदार हैं। मैं तो यही समझता हूं कि आपको इस भागीदारी में से अलग हट जाना चाहिए, लेकिन इस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप उसमे से निकल नहीं सकेंगे।"

"इस तरह निकल भागने में कुल का कल्याण नहीं दीखता।" भीष्म ने कहा।

"मुझे तो इसी में कल्याण प्रतीत होता है।" विकर्ण ने कहा– "फिर भी आप विचार करके देखिये। आपने मेरी अपेक्षा अधिक बाल पकाये हैं, इसलिए अपने विचार मैं अपने पास रखता हूं। यदि और अधिक अनुभव से इनमें कोई भूल अनुभव हुई तो

उसे ठीक कर लूंगा। आज तो मुझे जैसा प्रतीत हुआ आपसे कह डाला है। इसमे यदि कोई अविनय हुआ हो तो क्षमा कीजिए।

"नहीं,भाई नहीं।" भीष्म ने कहा। "अविनय की क्या बात थी। तुम-जैसे सत्यभाषी व्यक्ति इससे भी अधिक कठोर बातें कहें तभी बूढ़े कानों में वह सहज ही उतर सकते है। मै आज की तेरी बातों से खूब प्रसन्न हू। तेरे मन मे जब भी जो विचार आये मुझ से बराबर खुलकर कह सकता है, जरा सकोच करने की आवश्यकता नहीं।

"पितामह ! आज तो आज्ञा चाहता हूं। फिर किसी दिन आऊंगा" विकर्ण ने खडे होते हुए कहा और भीष्म को विचार करते हुए छोड़कर चल दिया।

: ६ :

दुर्योधन को सीख

हस्तिनापुर का सभा-मण्डप खचाखच भर गया और समुद्र की उत्ताल तरंगों के समान लोगों के जोश को श्रीकृष्ण के समाधान कारक शब्दों ने कौरव-सभा को घड़ी भर के लिए तो शान्त कर दिया। श्री कृष्ण के शब्दों का गर्भ समझने वाले भीष्म तुरन्त ही खड़े हो गये और बोले—

"पुत्र दुर्योधन! आज श्रीकृष्ण-जैसे महापुरुष अपने घर आकर समझौते की सलाह देते है इसे मै अपने कुरु-कुल का अहो भाग्य समझता हूं। और यहां एकत्रित क्षत्रिय वीरो! वर्षों पूर्व राजसूय-यज्ञ के समय जो बात शिशुपाल से कही थी, वह आज आपसे भी कहना चाहता हूं। इन श्रीकृष्ण के भी अपने समान दो हाथ और पैर हैं, इसलिए इन्हें भी अपने ही समान साधारण मनुष्य नहीं समझ लेना चाहिए। श्रीकृष्ण हमारे इस समय के युग-पुरुष हैं। जब-जब संसार मे अन्धकार छा जाता है और

जनता दीन और पामर बनकर धर्म के मार्ग से विमुख हो जाती है, तब-तब हमारे बीच ऐसे युग-पुरुष जन्म लेते हैं और अन्धकार को दूर करके समाज को फिर से धर्म मार्ग पर ले जाते हैं। मुझे तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण का जन्म विशेषकर इसीलिए हुआ है। श्रीकृष्ण वसुदेव और देवकी के पुत्र है, कंस के भानजे है, अर्जुन के मित्र हैं, सुभद्रा के भाई हैं, अपने कौरव-वश के सम्बन्धी हैं, किन्तु इनकी सच्ची पहचान यही है कि ये आज के अपने युग-पुरुष है।

"आज श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से सन्धि का सन्देश लेकर आये है। मैं यह जानता हूं कि श्रीकृष्ण के निमित्त से अनेक शत्रु मारे गये है, स्वय उनका मामा मारा गया यह बात सुप्रसिद्ध है,स्वयं यमराज को भी कुछ न समझने वाला शिशुपाल क्षण-भर मे हुआ न हुआ हो गया,यह इन्हींका प्रताप है, संसार-भर के राजाओं को बन्दी बनाने वाले जरासन्ध को नीचा दिखाने वाले भी ये श्रीकृष्ण ही है। इन सब कामों मे उनका एक-मात्र उद्देश्य ससार में शान्ति स्थापित करना था, और आज भी वह इसी उद्देश्य से हमारे पास आकर खड़े हुए हैं। अवसर आने पर वज्र से भी अधिक कठोर हृदय प्रतीत होने वाले इन कृष्ण का हृदय फूल से अधिक कोमल है। इसीलिए वह किसी भी उपाय से शान्ति चाहते है।

"श्रीकृष्ण ने अपनी बात हमारे सामने रखी उस समय आप सबके चेहरों पर से मुझे प्रतीत हुआ कि समझौता अवश्य हो जायगा और श्रीकृष्ण का प्रयत्न विफल नहीं होगा। इस खयाल से तो मेरे अन्तरतम में शान्ति पैदा हुई। किन्तु उसके बाद कर्ण और शकुनि के दुर्योधन के कान में घुस-पुस करने और दुर्योधन के चेहरे पर के अनेक प्रकार के भावों के उतर-चढ़ाव से मुझे ऐसा लगता है कि कौरवों का कल्याण अभी दूर है।

"और दुर्योधन ! तुझे मैं क्या कहूं ? अभी तक तेरे सभी अधर्मों को मैं खुली आंखों देखता रहा हूं और फिर भी मैंने तेरा साथ नहीं छोड़ा। मुझे आशा थी कि 'दुर्योधन अब अपनी भूल को जरूर समझ लेगा और आज नहीं तो कल अवश्य सुधर जायगा' और इस आशा के बल पर ही मैं तेरे साथ चिपटा रहा हूं। किन्तु आज तेरी दुष्टता का वास्तविक चित्र मेरे सामने खड़ा है। दूसरे लोग मुझसे कहते थे, तो मैं मानता नही था। किन्तु स्वयं श्रीकृष्ण हम सबके भले की बात कहते है, उसमे भी जब तेरा सिर हिलता है और आंखे लाल पीली होती हैं तो तेरी दुष्टता कितनी गहरी है यह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है।

"दुर्योधन ! यह न समझना कि श्रीकृष्ण तेरी दुष्टता को समझते नहीं हैं, अथवा तेरे पिता के क्रोध को नहीं जानते या पाण्डवों के पराक्रम से अपरिचित है। आज संसार के चारों ओर फैली हुई काल-सागर की लहरों की गति को श्रीकृष्ण ने अच्छी तरह जान लिया है। इतने पर भी कौरव-वंश का विनाश एवम् क्षत्रिय-जाति का संहार रोकने के लिए, हस्तिनापुर की गद्दी पर रक्त के छींटे न पड़ने देंगे और हम सबके कल्याण के लिए, आर्यावर्त के कल्याण के लिए और शान्ति-स्थापन के लिए वह हमारे पास आये है। दुर्योधन ! आज श्रीकृष्ण को तेरे मानव-हृदय के प्रति विश्वास पैदा हुआ है; गांधारी के सत्य और कौरव-वंश की तपस्या के प्रति श्रद्धा जाग्रत हुई है। यदि हम सब अपनेको श्रीकृष्ण की इस श्रद्धा के योग्य सिद्ध किया तो ससार मे शान्ति अवश्य स्थापित होगी।

"दुर्योधन ! जिस प्रकार तेरे पिता विचित्रवीर्य के पुत्र है उसी तरह पाण्डु भी विचित्रवीर्य का पुत्र है; तू जितना गद्दी का अधिकारी है, बल्कि उससे भी अधिक युधिष्ठिर उसके अधिकारी हैं।' इतने पर भी तूने आजतक अनेक तरह के छल-कपट रच-

कर पाण्डवों को गद्दी से दूर ही रखा है, क्या तू समझता है कि यह बात कोई नहीं जानता। तूने पाण्डवों को मारने के अनेक पयत्न किये किन्तु वे मरे नहीं, तूने उन्हे परेशान करने मे कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी, फिर भी उन्होंने निर्भीकता के साथ सब परेशानियां सहीं, और आज भी यदि तूने उनको उचित बात को स्वीकार न किया तो संसार के न्यायालय तेरे विषय मे क्या निर्णय देंगे, इसका भी तुझे कुछ खयाल है ?

"तुझे अपने शकुनि और कर्ण में बहुत अधिक विश्वास है। आज तक शकुनि तुझे जो रास्ता बताता रहा, उसी पर तू चलता रहा। लेकिन शकुनि कितना नीच और पतित है तुझे इसका भी कुछ पता है ? और तेरा यह कर्ण समय-असमय बकवाद करता रहता है, किन्तु उस जैसे कौए की बकवास कभी तेरे लिए फल-जनक हो नही सकेगी। दुर्योधन! राजकुमारों के पास बचपन से ही ऐसे दुष्ट इकट्ठे होने लगते है और इसलिए उन बेचारों को सच्ची बात का पता ही नहीं चलता और अन्त मे वे सीधे विनाश के गढ़े में जा गिरते हैं। दुर्योधन! तेरा भी वही हाल हुआ है।

"दुर्योधन! तू अपने मन मे यह समझता है कि भीष्म और द्रोण अपनी मदद पर खडे हैं, तब डर किसका है ? लेकिन यह तेरी भूल है। विकर्ण जो बात कहता था, वह अब अधिक स्पष्टता से मेरी समझ में आ रही है। मैं अभी तक गूगा बना हुआ तेरे सब अधर्मों का साथ देता आया हूं, इसलिए अब तो मैं तेरे लिए कदापि न लड़ूंगा। तू और तेरी चण्डाल चौकड़ी लड़कर देख ले, और तब लडा किस तरह जाता है इसका पता चलेगा। तेरा मामा एक कोने में बैठ बैठा जो उछल-कूद करता रहता है, उसे युद्ध के खुले मैदान में खडा कर, जिससे कि उसे भी पता चले। युद्ध के मैदान में चौपड़ की तरह खाली खिल-खिलाकर पासे नहीं

नहीं डाले जाते, वहां तो सिंह-शावकों का खेल है।

"किन्तु दुर्योधन! घडी-भर के लिए यह भी जान ले कि मैं और द्रोण तेरे पक्ष मे लड़े भी तो भी उससे होना क्या है ? क्या उससे तुझे विजय मिल जायगी ? इसकी कदापि आशा न रखना। हम तो अब पुराने ढांचे हो गये है, हमारी विद्या कितनी ही प्रबल होने पर भी वह पुरानी है, हमारे शस्त्रास्त्र कितने ही कारगर होने पर भी वे पुराने युग के है, हम चाहे जितने शूर-वीर हों तो भी बूढ़े हो गये हैं। और तुझे तो सर्वथा नौजवान अर्जुन के मुकाबले मे लड़ना है, उसका रथ वरुण देव की अस्त्रशाला में आधुनिक रीति पर बना है, वर्त्तमान युग के महान् धनुर्विद्या विशारदों ने उसे मन्त्र विद्या की दीक्षा दी है, उसके धनुष और भाले का ससार मे और कोई जोड़ नहीं है। और सबसे बढ़कर तो यह बात है कि उसके रथ पर श्रीकृष्ण सारथी बनकर बैठने वाले हैं। दुर्योधन! मै यह सब कह रहा हूं, इस पर तेरे साथी हस रहे है। लेकिन यह याद रखना कि श्रीकृष्ण जिसके सारथी हों उन्हे जीतने के लिए ससार मे कोई समर्थ नही है।

"इसलिए दुर्योधन! मेरा कहना है कि पांडवों के साथ समझौता करले और श्रीकृष्ण का आशीर्वाद प्राप्त कर। ऐसा करने पर पाण्डव तेरे मित्र बन जायंगे, उनकी मैत्री से तेरा राज्य-ध्वज अधिक शोभित होगा, और पाडव-कौरवों के एक हो जाने पर सारा संसार उनके चरणों मे सिर झुकाने लगेगा। शकुनि और कर्ण! तुम मेरी इस सलाह को स्वीकार करो और दुर्योधन को समझाओ। क्यों तुम अकारण ही हमारे सारे वंश का विनाश कराते हो ?

"महाराज धृतराष्ट्र! आप इस विषय पर विचार करे। आपका यह पुत्र दुर्योधन आज समूचे कौरव-वश का संहार

करने के लिए तुला खडा है, आप इसे रोके। आप आज कौरव-वश के प्रधान है, आपके लिए तो कौरव और पाडव एक समान होने चाहिए। पाण्डु के वन मे मर जाने के बाद आप ही पाडवों के पिता बने थे, इतने पर भी पाडवों के साथ अन्याय किये जाने मे आपने अपना सहयोग दिया, इससे आप इन्कार नहीं कर सकते। किंतु महाराज! पाण्डव इन सब बातों को भुला देने की क्षमता रखते है। आज आप अपना बड़प्पन सिद्ध करें और पाण्डवों के साथ न्याय करे। महाराज धृतराष्ट्र! अभी सन्धि करने का समय है। आज यदि सच बात न मानी और लड़ाई हुई तो आपने आजतक जिन-जिन कलि-कृत्यों को उत्तेजन दिया है उन सबका फल जब आपको भुगतना पड़ेगा तब बहुत कठिन प्रतीत होगा और उस समय तक इस बूढ़े के वचन आपको याद आवेगे। धृतराष्ट्र! आज आप दुर्योधन से यह बात सर्वथा स्पष्ट रूप से कह दे, और यदि वह न माने तो आज ही उसका त्याग कर दे। जन्म के समय से ही उसका त्याग कर दिया होता तो आज यह अवसर न आता। लेकिन अभी भी त्याग किया जा सकता है। धृतराष्ट्र! आप जानते हैं कि महाराज शान्तनु और माता सत्यवती को अपनी वश-बेलि को हरी-भरी रखने की कितनी ममता थी? क्या आप नहीं समझते कि आप उसी कौरव-वश को विनाश के पथ पर ले जा रहे हैं?

"दुर्योधन! युद्ध करके पाण्डवों को जीतने की तू आशा करता है, किन्तु याद रख, युद्ध में तुझे कुछ भी हाथ नहीं लगने वाला है। किसी की भी मां ने अभीतक ऐसा पुत्र नहीं जना है, जो युद्ध मे अर्जुन को परास्त कर सके। इसलिए अब भी समझ जा, और लडकपन छोड दे। पाण्डवों को उनकी माग के अनुसार उनका भाग दे दे, और युद्ध के रक्तपात से अपने वंश को ही नहीं, प्रत्युत सारे मानव-समाज की रक्षा कर। दुर्योधन!

गांधारी के पुत्र ! मेरी बात मानकर पाण्डवों के साथ सन्धि करके और तुम एक सौ और पांच मिलकर समस्त संसार को शांति का पाठ पढ़ाओ।"

: ७ :

सेनापति के पद पर

"महाराज ! आपने मेरी सब आशाओं को धूल मे मिला दिया है। आपके और द्रोणाचार्य के बल पर ही तो मैने यह युद्ध छेडा है।" दुर्योधन ने निराश होते हुए कहा।

"तू युद्ध क्यों न छेड़े ? पर मैंने तो श्रीकृष्ण के आने पर जो सभा हुई थी उसी में साफ तौर पर सुनाकर कह दिया था तू अनेक स्याह-सफेद करके लडाइयां मोल लेता फिरे और फिर मुझे उनमे तेरी ओर से लडना पडे यह भी कोई न्याय है ? ऐसे अधर्म युद्ध मे मैं अब भाग लेने वाला नहीं " भीष्म ने आवेश में कहा।

"पितामह ! आज अब मै समझ रहा हू। शकुनि और कर्ण वर्षों से मुझसे कहते आरहे थे कि यह पितामह ऊपर-ऊपर से तो तेरे दिखाई देते हैं, किन्तु अन्दर से वे पांडवों के हैं, और ठीक समय पर तुझे धोखा देने वाले हैं। अभीतक मैं उनकी बात नहीं मान रहा था, लेकिन आज मेरी आंखे खुली हैं। अब मैं समझ रहा हू कि आजतक भी मैने जो आपका पोषण किया वह केवल पांडवों का हित करने के लिए ही था।" दुर्योधन ने निश्वास छोड़ते हुए कहा।

"दुर्योधन। ऐसा न कह।" भीष्म ने कहा "आज तक तो मैंने पाण्डवों का हित कभी किया नहीं। जब-तब मैं तेरे लिए ही लड़ा हूं, और अनेक अवसरों पर तूने पाण्डवों को परेशान किया तब भी मैंने तेरा पक्ष नहीं छोड़ा।"

"यह आपकी मुझ पर कृपा हुई। किन्तु आज आन-बान के

मौके पर आप पाण्डवों के पक्ष मे जारहे हैं इसलिए मुझे ऐसा लगा।" दुर्योधन ने कहा।

"मैं उनके पक्ष में भी जाने वाला नहीं हूं। मैं तो जीवन के किनारे पर खड़ा-खड़ा तुम्हारा युद्ध देखूंगा, और ईश्वर मृत्यु को भेजेंगे तब उसका स्वागत करूंगा। मन में तो यह आता है कि कुल का विनाश देखने के लिए जान की अपेक्षा आत्म-घात करके मर जाऊ तो अच्छा, किन्तु यह पाप करने के लिए हृदय साथ नहीं देता। आज तक मैंने सारे परिवार के प्रति ममता चाहता हूँ कि बढ़ाई इसलिए ईश्वर मुझे उसका विनाश न दिखाये! तू जा,और यह निश्चय रख कि मैं पाण्डवों की ओर नहीं जाऊंगा।" भीष्म ने कहा।

"नहीं, नही, इसकी अपेक्षा तो यह अच्छा है कि आप पाण्डवों की ओर से युद्ध करे, जिससे कि दुनिया भी देख ले" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन! यदि मैं पाण्डवों की ओर से लडा तो तेरा एक भी योद्धा जीवित न रह पायगा।" भीष्म ने कुछ आवेश से कहा।

दुर्योधन ने भीष्म की बात पकड़ ली और बोला-"योद्धा की बात जाने दीजिए, मैं तो समझता हू कि एक भी कौरव जीवित न रहेगा। किन्तु पितामह! आपके हाथों मौत कहां मिलने वाली है। आपके हाथों युद्ध-क्षेत्र मे सोने को मिले तब तो जीवन सफल हो जाय। ऐसे सद्‌भाग्य कहां से आये? किन्तु पितामह! अब तो युद्ध तक पहुचने की ही कुछ आवश्यकता नहीं। यह रही मेरी तलवार। अपने ही पवित्र हाथों मे यह तलवार मेरी गरदन पर चलाइये जिससे कि सब काम पूरा हो जाय। इसके बाद आप प्रसन्नता पूर्वक पाण्डवों के साथ समझौता कर लें। समझौते के मार्ग में अकेला मैं ही तो बाधक हूं,उसे दूरकर

दीजिए, इससे अपना वंश भी बच जायगा और क्षत्रियों का संहार भी रुक जायगा। यह तलवार लीजिए और मुझे मारकर मेरे ही रक्त से आप महाराज युधिष्ठिर का राजतिलक कर सकते हैं और उनके सिर पर मुकुट धारण करा सकते हैं।"

"चिरञ्जीव! मैं और अपने हाथों से इस प्रकार तेरी अकाल मृत्यु का साधन बनूं!" सजल नेत्रों से भीष्म ने कहा।

"इसमे अकाल मृत्यु कहां हुई? आपने खुद ने ही तो सभा में कहा था कि मेरा काल मुझे बुला रहा है। मेरे जाने के बाद आप कहेंगे कि पाण्डव मेरे भाइयों को जीवित मार डालें अथवा वन मे हांक दें, पाञ्चाली के बाल पकड़े जाते आपने देखा है इसलिए उसके प्रायश्चित्त स्वरूप युधिष्ठिर को भानुमति की चोटी पकड़कर खींचने की सलाह दें, तो मेरे जी को शान्ति मिलेगी।" दुर्योधन ने कहा।

दुर्योधन के इन व्यंग-बाणों से भीष्म घबरा-से गये और कहने लगे "बेटा दुर्योधन! ऐसी बाते कहकर व्यर्थ ही मुझे क्यों दुःखी करता है?"

"इसीलिए तो आपको दुःखी करने वाला इस संसार से बिदा होने की इजाजत चाहता है, और आपको सुखी करने वाले युधिष्ठिर के लिए जगह खाली करना चाहता है।" दुर्योधन ने कहा।

"दुर्योधन! इस तरह के वाक्-बाण चला-चलाकर मुझ बूढ़े के हृदय में घाव क्यों कर रहा है? जरा तो खयाल कर!" भीष्म ने और भी अधिक दुखित हृदय से कहा।

दुर्योधन आंसू टपकाता हुआ बोला "पितामह! खयाल क्या करूं? सच बात तो यह है कि इस युद्धमें आपके लड़े बिना काम चल नहीं सकता। सौ बात की एक बात यह है कि आपको पसन्द हो तो और न हो तो भी आपको लड़ना है। आप ही के

विश्वास पर तो ग्यारह अक्षौहिणी सेना मृत्यु का आलिंगन करने के लिए सजी हुई है। क्या यह सेना मुझे देखकर आई है? ये लोग तो कौरव कुल के वृद्ध पितामह के सफेद बाल देखकर आये हैं, और आपके साथ जानते हैं धनुर्धर द्रोण को! कुछ भी हो आपको लड़ना ही पड़ेगा।"

"मेरी इच्छा के बिना मुझसे लड़ा कैसे जायगा? मुझे तो इसमे स्पष्ट रूप से तेरा अधर्म प्रतीत होता है।" भीष्म ने कहा।

"इस धर्माधर्म का निर्णय तो युद्ध समाप्त होने के बाद हम दोनों मिलकर कर लेंगे। आज तो धनुष हाथ में लेकर टंकार कीजिये जिससे शत्रुओं के हृदय दहल उठें।" दुर्योधन ने जरा मुस्कराते हुए कहा।

"दुर्योधन! मैंने पहले ही तुझसे कहा था कि यह युद्ध मोल लेना ठीक नहीं। किन्तु तू माना नहीं।" भीष्म ने फिर कहा।

"पितामह! मैं जानता हूं कि उस सभा में मैंने आपका कहना नहीं माना इससे आपको रोष हुआ है और उस रोष के कारण ही आप युद्ध से अलग रहना चाहते हैं।" दुर्योधन ने जरा आवेशमें आकर कहा—"किन्तु पितामह! इस तरह आप और मैं जुदा किस तरह हो सकते है? चाहे जैसा भी होगा, मैं हूँ तो आपका ही बालक। मैं शरारत करूं, आपकी मूंछ पकड़कर खींचूं, जो मन मे आवे कह उठूं, आपको सब सहन करना ही होगा। आपका आदेश न मानूं तो आप मेरे चपत लगाकर मुझे नीचे बिठा सकते हैं, लेकिन आप मेरा त्याग नहीं कर सकते। मैं छोटा हूं इसलिए बछड़ा बनकर भी छूट जाऊंगा, लेकिन आप छोड़ नहीं सकेंगे। लोग भी यही कहेंगे कि दुर्योधन को तो अकल नहीं थी, लेकिन उस बूढ़े को शरम न आई! इसलिए आप तैयार हों और सारी कौरव-सेना का नेतृत्व हाथ में लें।"

"दुर्योधन! मैं बूढा आदमी, इतनी बड़ी सेना को किस तरह

संभाल सकूंगा ?" भीष्म ने जवाब दिया।

"पितामह! यह सोचने का काम आप मुझ पर छोड़ दें।" दुर्योधन ने कहा। "इतने वर्षों तक मैं गद्दीपर बैठ चुका हूं इसलिए किसको बूढा और किसे जवान समझा जाय, कम-से-कम इतना तो सीख ही गया हूं। आप तो केवल मुझे अपनी स्वीकृति दीजिए।"

"दुर्योधन! मन तो अभी भी यही कहता है कि मुझे इस युद्ध मे भाग नहीं लेना चाहिए" भीष्म ने धीमे स्वर में कहा।

"आपका मन आज ज़रा कुछ ऐसा ही हो गया है। मैं अब आपसे आज्ञा लेता हूं। अपने को आज शाम को कूच करना है; मैं गुरू द्रोणाचार्य के पास जाकर उन्हें भी आपका नाम लेकर तैयार करता हूं।" यह कहता हुआ दुर्योधन उठने लगा।

"इसमे मेरा नाम लेने का क्या प्रश्न ? राजा तो तू है। दुर्योधन! अन्त मे मैं तुझसे हारा!" भीष्म ने कहा।

"दादा पोते से हारे तो क्या इसमे दादा की शोभा नहीं है ?" दुर्योधन ने हसते हुए कहा और बिदा हुआ। और अकेले बैठे हुए भीष्म पितामह के मन मे कुरुक्षेत्र की व्यूह-रचना सिर उठाने लगी।

: ८ :

युधिष्ठिर को आशीर्वाद

कुरुक्षेत्र के मैदान पर सेनाएं एकात्रित थीं। पाण्डवों और कौरवों के पड़ावों मे मनुष्य,हाथी, घोड़े, रथ,और गाड़ियों आदि का जमघट लगा हुआ था। भारतवर्ष के राजा महाराजा, मानो प्रातः होते ही जीवन सार्थक होने वाला हो, इस प्रकार सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इतने मे ही सन्ध्या-काल आया। भगवान् भुवन भास्कर दोनों

छावनियों के मैदान पर एक लम्बी नजर डालते हुए दूसरी दुनिया की तरफ सिधार गये। सारी कौरव-सेना युद्ध के लिए उतावली हो रही थी। कौरव सेना के ठीक मध्य में भीष्म पितामह का बड़ा आलीशान तम्बू (खेमा) खड़ा किया गया था। तम्बू के बीच के कमरे में आठ-नौ बजे के लगभग पितामह जरा पैर फैलाकर लेटे हुए थे। उसी समय एक नौकर ने आकर कहा "पितामह! महाराज युधिष्ठिर आये और बाहर खडे हैं। वे आपसे मिलने की आज्ञा चाहते हैं।"

भीष्म खड़े होगये और बोले—"युधिष्ठिर को भी मिलने की आज्ञा मांगने की आवश्यकता है?"

"भला इतनी रात गये आने का क्या कारण हो सकता है?" पितामह इसी विचार में पडे थे कि इतने ही में युधिष्ठिर ने पहुच कर उनके चरणों में सिर नवाया।

"युधिष्ठिर, युधिष्ठिर! यह क्या करता है भीष्म ने युधिष्ठिर की ओर झुकते हुए कहा।

"पितामह के चरणों में बालक युधिष्ठिर शीश नवाता है।" युधिष्ठिर ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया।

भीष्म ने युधिष्ठिर का मस्तक चूमा और बोले "उठ बेटा युधिष्ठिर! इतनी रात गये कैसे आये?"

"पितामह! प्रात काल से युद्ध आरम्भ होने वाला है अत. आपको अभिवादन करने और आपका आशीर्वाद लेने आया हूं।" एक ओर बैठते हुए युधिष्ठिर ने जवाब दिया।

"मेरा आशीर्वाद?" भीष्म ने जरा शरीर को स्वस्थ करते हुए कहा। "भीष्म के आशीर्वाद तो आजकल निस्तेज हो गये हैं। वैसे भी तुझे तो ईश्वर का अशीर्वाद है ही। फिर भी तू आया यह अच्छा ही किया। सच्ची बात तो यह है कि यदि तू न आता तो मुझे बुरा लगता।"

युधिष्ठिर ने जवाब दिया—"मेरे मन मे हुआ कि कल का किसे पता है; कौन जाने इस प्राणघाती युद्ध में मैं समाप्त हो जाऊं अत उससे पहले ही पितामह को प्रणाम कर आना अच्छा है। यहा से मैं गुरू द्रोणाचार्य के पास भी जाने वाला हू। प्रातः-काल से तो आप संहार-कार्य मे लग जायगे, उस दशा मे कौन बाकी बचने वाला है।"

"युधिष्ठिर! ऐसा न कह।" भीष्म ने कहा।

"यह न कहूं तो क्या कहू? इतने वर्ष जंगलों में भटक कर बिताये, अब कल पांचों भाई कुरुक्षेत्र के मैदान मे लम्बी तान-कर सोयेंगे, और बस काम समाप्त।" युधिष्ठिर ने कहा।

"बेटा! इतना दीन क्यों होता है?" भीष्म बोले।

"भीष्म के सामने तो ससार-भर का क्षात्र तेज क्षीण होजाता है, उसमें मेरी तो बिसात ही क्या है? हम पांचों भाई तो अपने सिर आपको सौंपकर मैदान में सोने के लिए आये हैं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर! यह तेरी भूल है।" भीष्म पितामह बोले। "यदि कोई मनुष्य यह मानता हो कि युद्ध के अन्त में दुर्योधन विजयी होगा तो वह भूल करता है। युद्ध के अन्त में विजय तो युधिष्ठिर तेरी ही है।"

"पितामह! मुझे बालक समझकर बहका तो नहीं रहे हैं?"

"युधिष्ठिर! आज मैं तुझे बहका सकता हूं, किन्तु विश्व की नियामक सत्ता को तो कोई बहका नहीं सकता। आज दुर्योधन मेरे और द्रोण के बल पर कितना ही कूदता हो, किन्तु उसे पता नहीं है कि अर्जुन के सपाटे में हमारी कोई गिनती न होगी।" भीष्म ने ज़ोर देते हुए कहा।

"पितामह! आप ऐसी बात कहते हैं, वह मानी कैसे जा सकती है?" हाथ जोड़ते हुए युधिष्ठिर ने कहा।

"कैसे मानी जा सकती है ? तो क्या मै झूठ बोलता हूं ?" भीष्म ने मानो आवेश के-से स्वर मे कहा—"अर्जुन के रथ पर कौन बैठने वाला है इसका भी कुछ खयाल है ? यह तो अर्जुन का रथ है, वैसे किसी साधारण व्यक्ति का रथ होने पर भी यदि उसके घोड़ों की बागडोर श्रीकृष्ण के हाथ मे हो तो इस ससार मे उसे पराजित करने वाला मुझे तो कोई दिखाई नहीं देता। मैं कितना ही बलवान होऊं और द्रोण भी कितने ही शक्तिशाली हों, किन्तु यह सारा बल एक क्षण में क्षीण हो जाने वाला है, जबकि अर्जुन का बल युद्ध के अन्त तक कायम रहने वाला है। युधिष्ठिर! तुमसे क्या कहूं ? मैं तो इस युद्ध मे आना ही नहीं चाहता था, किन्तु दुर्योधन बहुत पीछे पड़ा इसलिए आना पड़ा है।"

"इसीलिए तो मुझे भय है।" युधिष्ठिर ने जवाब देते हुए कहा। "आप मन मे निश्चय कर ले तो आप अकेले ही आधे दिन मे हम सबका कचूमर निकाल देने मे समर्थ हैं।"

"कोई दिन ऐसा रहा होगा, किन्तु आज वह बात नहीं है।" भीष्म ने जवाब में कहा। "आज तो धनुष बाण हाथ मे लेने का अवसर आने पर भी यह खयाल कि मैं 'अधर्म के पक्ष में हूं' मेरा पीछा छोड़ने वाला नहीं है, इसलिए शक्ति-भर बल लगाने पर भी धनुष की प्रत्यञ्चा ढीली ही रहेगी। युधिष्ठिर! चिन्ता की जरा भी आवश्यकता नहीं है। विजय तुम लोगों की ही है।"

युधिष्ठिर बोले—"पितामह! अर्जुन तो आज सुबह से ही ढीला पड़ गया है। आपके और आचार्य द्रोण के मुक़ाबले मे कैसे लड़ा जा सकेगा, इसकी कल्पना ने ही उसे मूढ़ बना दिया है।"

भीष्म ने कहा—"युधिष्ठिर ! अपने अर्जुन से कहना कि मुझपर बाण चलाने मे जरा भी सङ्कोच न करे।

युधिष्ठिर ! तू समझदार है इसलिए तुझसे कहता हूं। मैं और द्रोण आज खोखले हो गये है। समय की गति को देखकर मुझे प्रतीत होता है कि हमारे अब संसार से विदा होने का समय आ पहुचा और अर्जुन नवीन तेज का वाहक है अत. उसके हाथ से मेरी मृत्यु हो तो इसे मैं अपना अहोभाग्य समझूंगा।"

युधिष्ठिर ने कहा—"आप यह क्या कहते हैं? आपका एक ही बाण हम सबको छेद डालने में समर्थ है।"

भीष्म—"युधिष्ठिर ! ऐसा न समझो। हमारे दिन अब अस्त की ओर है। मैं तो कभी का जान गया हूं कि इस युद्ध मे हमारी मृत्यु है। तू जरा भी चिन्ता न कर। श्रीकृष्ण और अर्जुन संसार में नया प्रकाश और नया युग लाने वाले हैं, उनके मुकाबले में हम कोई भी टिकने वाले नहीं है इसका तू निश्चय रख अच्छा अब तू जा, तुझे कल की व्यवस्था करनी होगी। हां, एक बात का ध्यान रखना। वह यह कि सब कुछ श्रीकृष्ण और अर्जुन को सौंप देना। इनके हाथों हम सब की पराजय है और इनके हाथों ही नवीन युग का जन्म होगा। जा, चिरञ्जीव, जा। ईश्वर तेरा कल्याण करे।"

भीष्म के इतना कहने पर युधिष्ठिर ने फिर उनके चरणों मे सिर रखा और विदा ली।

: ९ :

कुरुक्षेत्र का दसवां दिन

कुरुक्षेत्र के मैदान पर आज पाण्डव-कौरवों की वैराग्नि फूट निकली थी। कहते हैं कि पृथ्वी पर जब कोई ज्वालामुखी फटता है तो उससे पहले पृथ्वी के गर्भ में अनेक वर्षों से गर्म उबलते हुए रस इकट्ठे होते रहते हैं, और अन्त में यह उबलते हुए रस पृथ्वी के पेट को चीरते हुए अपने निकलने का मार्ग ढूंढ निकालते

हैं। पृथ्वी के गर्भ का हाल जानने वाले विशेषज्ञ इस प्रकार ज्वालामुखी के फटने का अवसर आने पर पहले से ही उसके चिह्न पहचान जाते है और आसपास के लोगों को उसकी चेतावनी भी दे देते हैं। आर्यावर्त्त में वर्षों से इस प्रकार ज्वालामुखी के फटने की तैयारियां हो रही थीं, और मानव-समाज के अन्तरतम को पहचानने वाले व्यास जैसे क्रान्तिदर्शी गर्म उबलते हुए रसों को कभी का देख चुके थे।

युद्ध को आरम्भ हुए आज दसवां दिन था। पिछले नौ दिनों में कितने ही वीर बालकों को पितृ-विहीन करके चलते बने, पिछली नौ रातों मे कितनी ही अबलाओं ने अपने निरे आंसुओं से पृथ्वी को भिगो दिया, इन नौ दिनों के बीच मानवों के आर्तनाद से पृथ्वी और आकाश में कितनी ही दरारे पड़ीं, और आर्यावर्त्त का आधा क्षत्रिय समाज लगभग समाप्त होगया।

और इन नौ दिनों के घोर युद्ध के बाद भी जय-पराजय का पलड़ा किसी भी ओर झुकने का नाम नहीं लेता, 'दुर्योधन अथवा युधिष्ठिर' इसका निर्णय अभी अधर मे ही लटका हुआ हैं, दोनों ओर ऐसी रस्साकशी हो रही है कि परिणाम स्थिर होकर खड़ा ताक रहा है।

इतने ही मे दसवा दिन निकल आया। दसवे दिन का यह प्रभात क्या सन्देश लेकर आया है?

दुर्योधन घबरा उठा। उसने हिसाब लगा रखा था कि भीष्म पितामह सङ्कल्प करे तो आधे दिन में ही सारी पाण्डव-सेना का सहार कर डालेंगे, वही पितामह आरम्भ से ही मन लगाकर लड़ नहीं रहे है, यह शका उसे होगई थी, उन्होंने पाण्डव-सेना मे महानाश का दृश्य खड़ा कर दिया और श्रीकृष्ण जैसों को प्रतिज्ञा के विरुद्ध हाथ में चक्र लेने के लिए विवश कर दिया, इतने पर भी दुर्योधन की शका दूर नहीं हुई और इसलिए पिता-

मह मेरे पक्ष मे रहते हुए भी पाण्डवों के हित का ध्यान रखते हैं, इस प्रकार के मर्म भेदी वाक्य कह-कहकर उसने भीष्म के हृदय मे घाव किये, और आज इस प्रकार के घावों से आहत भीष्म फिर से कौरव-सेना के मोरचे पर आकर खड़े हो गये।

भीष्म ठहरे गगामाता के पुत्र। गगा मैया की गोद मे खेलते-खेलते उन्होंने धनुर्विद्या सीखी, परशुराम जैसे गुरु से उन्होंने दीक्षा प्राप्त की। घर-गृहस्थी की झझटो से मुक्त रहने के कारण छोटी-छोटी बातों में उन्होंने अपनी शक्ति बरबाद नहीं कर डाली थी, कौरव-वंश की बेल को कायम रखने के मनोरथ से बुढ़ापे की अवस्था मे भी आज उन्होंने शस्त्र धारण किया था, सारी पाण्डव-सेना मे अकेले एक अर्जुन को छोड़कर दूसरा एक भी ऐसा योद्धा मिलना कठिन था, जो उनके मुकाबिले मे टिक सकता। इन्ही भीष्म ने सेना के आगे आकर ललकारते हुए कहा—"अर्जुन! आ जा सामने और संभाल ले अपना धनुष-बाण!"

भीष्म की ललकार सुनते ही कुन्ती-सुत अर्जुन उछल पड़ा। वर्षा-काल के बादलों की गर्जना सुनते ही बांसो उछाल मारने वाले सिंह-शावक के समान अर्जुन का हृदय उछलने लगा और उसके हाथ एकदम गाण्डीव पर जा पहुचे। उसका सारा शरीर उतावला हो गया, उसकी आंखे अकेले भीष्म को ही ढूंढने लगीं और वह बोल उठा "सखा श्रीकृष्ण! भीष्म कहा है? मेरा रथ उन्हीं के पास ले चलो।"

रथ के घोड़ों की लगाम सम्भालते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—"अर्जुन! देखा पितामह को? आज के भीष्म कुछ और ही दिखाई देते हैं नित्य प्रति तो पहले सामने आते थे, फिर तेरे बाणों के चरण छूने पर उन्हे सिरपर रख तुझे आशीर्वाद देते थे और फिर युद्ध आरम्भ होता था, किन्तु आज इन्होंने इन विधि-विधानों को छोड़कर युद्ध के लिए सीधा आह्वान ही किया, इसलिए आज का

रंग-ढंग कुछ और ही प्रतीत होता है।

श्रीकृष्ण रथ को आगे बढ़ाते हुए यह कह ही रहे थे कि इतने मे तो पाण्डव-सेना के योद्धा, हाथी, रथ, घोड़े और सारथि सब धड़ाधड धराशायी होने लगे। ग्रीष्म के प्रखर ताप मे किसी जगल मे लोग भारी दावानल से जलकर नष्ट होते हुए वृक्षों के समान पाण्डव-योद्धा नष्ट होने लगे। इससे युधिष्ठिर को यह प्रतीत होने लगा कि यदि संहार-कार्य इसी तरह चलता रहा तो शाम होते-होते पाण्डवों का अस्तित्व मिट जायगा।

इतने मे ही भीष्म ने फिर ललकारा—"अर्जुन! इस ओर,इस ओर। मुझ पर चारों ओर से बाणो की वर्षा हो रही है, किन्तु तेरे बाणों मे बिंधने का आनन्द मुझे अभी नही मिल रहा है।"

इसी बीच श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ ठीक भीष्म के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया और अर्जुन ने गाण्डीव की टकार कर बाण छोडना शुरू कर दिया। इसके जवाब में भीष्म ने प्रलय-काल के सूर्य के समान इस तेजी के साथ अर्जुन पर बाणों की झड़ी लगाई कि अर्जुन इस सोच मे पड गया कि ये भीष्म है अथवा साक्षात् काल, और गाण्डीव से ऐसे तीक्ष्ण बाण छोड़ने शुरू किये कि भीष्म का सारा शरीर चलनी होने लगा।

इतने पर भी अर्जुन का हाथ ढीला पड़ता देखकर श्रीकृष्ण से न रहा गया और कहने लगे—"अर्जुन,ऐसे ढीले-ढाले हाथों से हस्तिनापुर का शासन किस तरह चलेगा? तेरे इन पितामह ने दो बार तो मेरी प्रतिज्ञा तुड़वाई और मुझे सुदर्शन चक्र सम्भालना पडा। आज सावधान हो जाओ, नहीं तो यह सारी सेना मारी जायगी।"

अर्जुन ने उत्तर देते हुए कहा—"सखा! प्रयत्न तो बहुत करता हू, किन्तु पता नहीं क्यों, भीष्म को देखते ही हाथ ढीला पड़ जाता है।"

श्रीकृष्ण ने जरा जोर से कहा—"अर्जुन ! इस तरह काम नहीं चलने का। यह शिखण्डी जो मौजूद है। एक ओर यह अपना रथ लाकर भीष्म पर बाण चलावे और दूसरी ओर से तू चला। और दोनों मिलकर भीष्म को अच्छी तरह से दिखा दो कि पाण्डव भी लड़ना जानते है।"

अर्जुन और शिखण्डी दोनों ने मिलकर भीष्म पर बाणों की वर्षा शुरू की। इससे भीष्म घबरा गये और कहने लगे—"अर्जुन ! यह अच्छी तरह समझ रख कि कौनसा बाण शिखण्डी के धनुष पर चढ़कर आता है, और कौनसा अर्जुन के गाण्डीव में से निकलकर आता है,यह मैं खूब पहचान सकता हूं। अर्जुन ! जरा सोच तो सही कि यह बिचारा शिखण्डी क्या देख कर मुझ पर बाण चलाता होगा ! गाड़ी के नीचे चलने वाला कुत्ता अपने मन मे यही समझता है कि गाडी मैं ही चला रहा हूँ। लेकिन यह तो शिखण्डी है ! आज यह पुरुष है, लेकिन किसी समय यह स्त्री था। उसके मुकाबले मे प्रहार न करने का मेरा सङ्कल्प है, किन्तु अर्जुन, इसके पीछे से तेरे जो बाण छूटते है वे मुझे छेदते हैं, उनका मिठास मैं अनुभव करता हूं। अत. तू सकोच न कर और अपने बाण चलाये जा। आज मेरा अन्तिम दिन है। मेरी आत्मा इस चोले को छोड़ने के लिए तड़फड़ा रही है।"

यह कहते-कहते भीष्म हाथ से शस्त्र छोड़कर बैठ गये और अर्जुन के बाणों की मार सहने लगे। अर्जुन ने बौछार जारी रखी। सूर्यास्त होने तक भीष्म का सारा शरीर चलनी होगया। और वह रथ से नीचे आ गिरे।

भीष्म के धराशायी होने का समाचार दोनों सेनाओं मे बिजली की तरह फैल गया और युद्ध अपने-आप बन्द होगया। अर्जुन, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, द्रोण, दुर्योधन, भीष्म तथा कृपाचार्य

आदि सब उन्हे घेरकर खड़े हो गये। अर्जुन खिन्न चित्त से एक ओर खड़ा था। अत भीष्म ने अपना सिर उठाकर उसकी ओर देखते हुए कहा—"बेटा अर्जुन! खिन्न होने की आवश्यकता नहीं है। नवयुवकों के हाथ मृत्यु पाने का सौभाग्य बहुत कम बूढों को मिल पाता है। मेरा जीवन आज सफल हो गया है।"

"पितामह! जिनकी गोद मे मैं बड़ा हुआ हू, उन्हीं को आज मैंने अपने हाथों से मारा!" अर्जुन ने दीन स्वर मे कहा।

"बेटा अर्जुन! तू भूलता है," भीष्म ने शान्ति के साथ जवाब देते हुए कहा। "हम बूढे लोग गोद खिलाने के बहाने सदा ही नौजवानों के मार्ग मे आडे आते रहे तो हमे धक्के देकर आगे बढ़ने का तुम नौजवानों को पूरा अधिकार है। आज तेरे जैसे नौजवान को मेरे प्रति दया दर्शाने के बजाय मुझे मारकर समाज रूपी खेत में मेरे शरीर का खाद बनाकर डाल देना चाहिए। कल तू बूढा होगा तब नौजवान पीढ़ी नव सस्कृति की खेती में तेरा भी खाद के रूप मे उपयोग करेगी। मानव-समाज के कल्याण का यही मार्ग है। मेरे जैसे बूढे अन्तिम घडी तक दूर न खिसकें तो अन्त मे उन्हे दूर करके ही छुटकारा मिल सकता है।"

"किन्तु पितामह! आप तो हमारे वंश के स्तम्भ हैं।" अर्जुन ने आंसू टपकाते हुए कहा।

"इसीलिए तो, जब स्तभ गलकर सड़ जाता है तो उसे बदल कर वहा नया स्तभ लगा देना चाहिए।" भीष्म ने कहा। "अर्जुन! आज मैं तेरे जैसे नवयुवक के प्रहार प्रसन्नता-पूर्वक सह कर धराशायी हुआ हू। इसलिए मुझ जेसा कोई भाग्यवान नहीं है। अब मेरी पीड़ा बढ़ रही है। तुम जरा हट जाओ। दुर्योधन कहा है?"

"पितामह ! यह रहा।" कहता हुआ, दुर्योधन सामने आया और बोला, "पितामह ! आपको छावनी मे ले चलकर सारे बाण निकलवाने की व्यवस्था करता हूं।"

'दुर्योधन ! ये सब व्यर्थ के झगड़े है। अब भीष्म की आशा छोड दे। मै आज नहीं मरने वाला हूं। प्रत्युत जबतक सूर्य की दिशा बदल नहीं जाती, इसी बाण-शैया पर ही रहूगा।"भीष्म ने कहा।

"बाण-शैया पर !" दुर्योधन ने आश्चर्य-चकित हो कहा।

"हां, बाण-शैया पर।" भीष्म ने कहा। "कुरुक्षेत्र के एक कोने मे पड़ा-पडा मैं सारे कुल का विनाश अपनी आखो देखता रहूगा, तभी मेरे मोह का प्रायश्चित्त होगा।

"किन्तु इन बाणों की पीडा कितनी असह्य होगी ?" दुर्योधन ने कहा।

भीष्म ने आखे ऊंची करके दुर्योधन के सामने नजर गडाते हुए कहा—"मनुष्य तो अपने जन्म समय से ही बाण-शैया पर सोता आया है। क्या तू समझता है कि अभी तक जीवन मे भोगी हुई बाण-शैया की अपेक्षा यह बाण-शैया अधिक कष्टकर है ? यदि ऐसा है तो तेरी भूल है। यदि मनुष्य नित्यप्रति हृदय मे चुभोये जाने वाले बाणों का हिसाब लगाये तो ये बाण तो उसके मुकाबले में किसी गिनती में नहीं है। किन्तु बेचारा मनुष्य भुलक्कड़ है। इसलिए सारे दु:ख भूल जाता है और जरा सुख मिलते ही फिर से आशा कर जीने लगता है। दुर्योधन ! युधिष्ठिर कहां है ?"

"यह रहा, पितामह !" युधिष्ठिर ने जवाब दिया।

"तुम लड़ चुको तो उसके बाद मेरे पास आना। गंगा माता ने मुझ मे आर्य सस्कृति के जो कुछ संस्कार भरे है वह तुम्हें सौपे बिना मेरी देह छूटने वाली नहीं है। अब तुम सब जाओ और लड़कर अपने बल की परीक्षा कर लो। पीछे जो बाकी बचो, मेरे पास आ जाना।"

यह कहकर भीष्म ने बोलना बन्द किया और सब अपने-अपने काम मे लग गये ।

: १० :

पितामह बाण-शैया पर

महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ । भरी सभा में पांचाली का चीर खींचने वाले दु शासन को अन्त मे मृत्यु-शैया पर सोना पड़ा। सूत-पुत्र कर्ण पृथ्वी मे धंसे हुए पहिये को निकालने का प्रयत्न करता हुआ काल-कवलित हुआ, आर्यावर्त्त की कितनी ही संस्कृतियों को अपने उदर मे समा जाने वाले पितामह बाण-शैया पर सोये, अश्वत्थामा के समर्थ पिता द्रोण शस्त्र छोड बैठे और शत्रु की तलवार के सामने सिर झुका दिया, सिंधुराज जयद्रथ का सिर उनके पिता की गोद मे जाकर गिरा, वीर अभिमन्यु सारी कौरव-सेना के छक्के छुड़ाकर भी अन्त में छ महारथियों के एक साथ प्रहार कर देने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ, शल्य, शकुनि, विकर्ण आदि अपनी-अपनी गति से मृत्यु के पथिक बने, आने वाले कल के लिए अनेक मनोरथों की रचना करके सोने वाले धृष्ट-द्युम्न का आगामी कल उदित ही नहीं हुआ, और इस समूचे युद्ध को रचने वाला दुर्योधन समंतपचक में अन्तिम श्वास लेकर ईश्वर के दरबारमे पहुंच गया। पीछे रहे पांचों पांडव और श्रीकृष्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य, कुन्ती और गांधारी, और इस समूचे नाटक का छिपा हुआ सूत्रधार अंधे धृतराष्ट्र ।

अठारह अक्षौहिणी सेना के शवों पर अपना रथ हांककर महाराज युधिष्ठिर हस्तिनापुर के अधीश्वर हुए। हस्तिनापुर पहुँचकर युधिष्ठिर ने गांधारी के आंसू पोंछे, कौरव-स्त्रियों और

अन्य अनेक वीरांगनाओं के आंसू पोंछे और अन्त मे अपने भी आंसू पोंछे।

एक दिन युधिष्ठिर चारों भाइयों और द्रौपदी के साथ पितामह के पास गये। पितामह बाण-शैया पर पड़े हुए थे। सबने उन्हे प्रणाम किया और उनके पास जाकर बैठ गये।

पितामह ने युधिष्ठिर को सामने देखकर कहा—

"चिरंजीव युधिष्ठिर! सब कुशल से तो हो? हस्तिनापुर की गद्दी में कांटे तो नहीं रहे होंगे!"

युधिष्ठिर ने जवाब दिया—"महाराज! आपसे क्या कहू? राजाओं की गद्दियां ऊपर से ऐसी मुलायम लगती है कि सब लोग सहज ही कह उठते है कि अहा, यह कैसी मुलायम है। लेकिन इस गादी पर बैठने वाला ही जानता है कि इस मखमल के भीतर कैसे काटे गुथे हुए हैं।"

"इतने दिनों मे ही यह अनुभव हो गया?" पितामह ने पूछा।

"पहले दिन ही।" युधिष्ठिर ने कहा। "पितामह! क्षमा करिये, मुझे तो अब ऐसा लगने लगा है कि यह राज-पाट छोड़कर कहीं भाग जाऊं!"

भीष्म जरा शरीर तान कर बोले—"युधिष्ठिर! सावधान! भागकर कहा जायगा? इस अठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश क्या अन्त मे भाग जानेके ही लिए किया था? तेरे मुंह से भाग जाने की बात निकलती ही कैसे है? जो कुछ भोगने की लालसा से यह संहार रचा था, अब अच्छी तरह भोग, हस्तिनापुर की प्रजा पर अब तू राज्य कर।"

युधिष्ठिर ने कहा—"महाराज! आज ऐसा प्रतीत होता है, मानो समूचे समाज के हृदय पर कोई भार आ पड़ा हो।"

"तू जो कहता है वह ठीक है।" पितामह ने कहा। "सारे युद्ध-

काल में जनता में एक प्रकार का उन्माद छा गया था, उसके परिणाम-स्वरूप आज मूढ़ता का प्रकट होना स्वाभाविक ही है। तुम सबने जनता को धर्म-युद्ध की मदिरा पिलाकर उसमे उन्माद उत्पन्न किया था। अत आज इस मूढ़ता को भी तुम्ही लोग सहन करो।"

"किन्तु, पितामह! मुझे तो आज समाज मे सर्वत्र इतनी अधिक मात्रा में दीनता, व्यग्रता और अज्ञान आदि दिखाई देते है कि जितने पहले कभी नहीं देखे गये थे, और जितनी दूर तक नजर डालता हू, वहां-वहां एक ऊजड़ वीरान के सिवा और कुछ दिखाई ही नहीं देता।" युधिष्ठिर ने दीनता के साथ कहा।

"सुनो युधिष्ठिर! तुम पाण्डवों ने आज तक भिन्न-भिन्न अवसरों पर दुर्योधन की निन्दा करने मे कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी।" पितामह ने तत्काल ही कहा।

"पितामह! मैंने?" युधिष्ठिर ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

"तूने नहीं तो तेरे भाइयों ने।" पितामह ने जवाब देते हुए कहा। "आज अब हस्तिनापुर का राज्य तुम्हारे हाथ मे आया है। अत. दुर्योधन मे तुम लोग जो-जो दोष निकालते थे, वे तुम्हारे मे नहीं हैं, यह तुम्हे सिद्ध कर दिखाना चाहिए।"

"पितामह, यह तो बहुत बड़ी कसौटी आपने हमारे सामने रखी है।" युधिष्ठिर ने कहा।

पितामह ने जवाब दिया—"कड़ी न रखू? यही तो मनुष्य की सच्ची कसौटी है। मेरा अनुभव यह है कि जो लोग दूसरे के दोषों को बड़ा बताकर उसकी निन्दा करते हैं, वे स्वय उसी स्थिति मे आते हैं तो उससे कहीं अधिक निकम्मे एवं गन्दे साबित होते हैं। इसलिए युधिष्ठिर! यह कसौटी कितनी ही कड़ी होने पर भी तुझे उस पर खरा उतरना ही चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो जनता को तुझ पर श्रद्धा न होगी। जब तक लोगों को दुर्योधन के

अधर्म राज्य और तुम्हारे धर्म राज्य में साफ अन्तर न दिखाई देगा, तब तक सब कुछ निरर्थक है।"

'पितामह, आपकी यह बात तो यथार्थ है," युधिष्ठिरने कहा। "जिस तरह भी हो, मुझे जनता को इतनी प्रतीति करानी ही चाहिए, किन्तु पितामह, आज जब मैं समाज पर दृष्टि डालता हूं तो मुझे समूचा आर्य-समाज वीरान-सा प्रतीत होता है और मुझे अपनी दिशा सुझाई नहीं पडती।"

पितामह ने कुछ क्षण शान्त रहकर कहा—"वीरान सा प्रतीत ही नहीं होता, प्रत्युत वीरान है ही। तू यह न समझ बैठना कि कुरुक्षेत्र के मैदान में अकेला भीष्म ही बाण-शैया पर पड़ा है। न मुझे यही समझना चाहिए कि कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि में केवल अठारह अक्षौहिणी के शरीर मात्र ही पडे हैं। वास्तविकता यह है कि समाज की सारी संस्कृति ही आज बाण-शैया पर पडी है, इस अठारह अक्षौहिणी सेना के साथ आर्य संस्कृति भी पैर फैलाकर सो रही है और तेरे हाथों समाज में नव भारत का जन्म होने को है। तुम पाण्डवों ने अभी अपना आधा काम पूरा किया है। तुम लोगों ने मुझे परास्त किया, द्रोण को हराया और कौरवों को धराशायी किया। यह तो हुआ तुम्हारा विध्वंस-कार्य। किन्तु जब तक तुम संसार में नवीन सृजन नहीं करते तब तक तुम विध्वंस-कार्य करके समाज के द्रोही बने रहोगे। इसलिए नव भारत का सृजन करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य हो गया है।"

"यह महान् कार्य मैं किस तरह कर सकूंगा?" युधिष्ठिर ने पूछा।

भीष्म ने शान्ति एवं दृढ़ता से जवाब देते हुए कहा—"यह काम तुझे ही करना है। मुझे तो अब गया हुआ ही समझ। मैं अपनी सारी विद्या अभी तुझे सौंपे देता हूँ। तेरे पास यह जो तेरा भाई अर्जुन है, यह समझ रख कि वह नये युग का

सृष्टा—प्रजापति—है। इस पर श्रीकृष्ण का हाथ है। और यह युग पुरुष—श्रीकृष्ण—नवीन भारत का सृजन करने के लिए ही अवतरित हुआ है। इसलिए तुझे जरा भी घबराने की आवश्यकता नहीं। जहां आज तुझे रूखा और वीरान दिखाई देता है वहां कल ही हरे अंकुर दिखाई देने लगेंगे और परसों हरियाली खडी दीखेगी। देने लगेगी आज जहां-जहां तुझे अन्धाधुन्दी और अव्यवस्था दिखाई पडती है वहां नया प्रकाश पड़ते ही व्यवस्था पैदा हो जायगी। तेरा काम यह प्रकाश देने का है। युधिष्ठिर! तुझे यह नहीं भुला देना चाहिए कि पुराने जीर्ण-शीर्ण समाज को झकझोरने वाले के लिए नये समाज के सृजन का कर्त्तव्य अनिवार्य होगया है।"

"पितामह! आप जो कहते है वह मै अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन प्रश्न यह है कि मैं अकेला ही यह सब किस तरह कर सकूंगा?" युधिष्ठिर ने पूछा।

भीष्म ने कहा—"अकेला ही क्यों? तेरे भाई तो हैं ही, और यह पाञ्चाली भी है। देवी पाञ्चाली!"

"आज्ञा पितामह?" द्रौपदी ने आगे आकर कहा।

भीष्म ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"इन पाण्डवों ने एक महाभारत तो पूरा किया। किन्तु समाज मे नवीन प्राण-प्रतिष्ठा का इससे भी महा कठिन महाभारत अभी पूरा करना बाकी है और इसमें महाराज युधिष्ठिर को तुम्हारी आवश्यकता होगी।"

"पितामह! हम अबलाए क्या कर सकेंगी?" द्रौपदी ने पूछा।

"अबला!" भीष्मने जरा तीव्र स्वरसे कहा। "द्रौपदी और और अबला! पाञ्चाली, क्या तू समझती है कि यह युद्ध पाण्डवों ने अकेले जीता है?"

"अवश्य, ऐसा ही प्रतीत होता है, पितामह !" द्रौपदी ने कहा।

"यह तेरी भारी भूल है," पितामह ने जवाब देते हुए कहा। "पाञ्चाली ! तू यह कैसे भूल जाती है कि अर्जुन के बाणों को तीव्र और भीम की गदा को चपल बनाने वाली तो तू ही थी। द्रुपद-सुता, पीछे रहकर पाण्डवों की क्रोधाग्नि मे घृत होमने वाली तू न होती तो यह अग्नि कभी की बुझ गई होती। भला तुझे अबला कौन कहेगा ?"

"सारा समाज कहता है।" द्रौपदी ने तत्काल उत्तर दिया।

"इस समाज को सुधि ही कहा है ?" "भीष्म ने पलट कर जवाब दिया। "पाञ्चाली ! यह निश्चय रख कि नये युग को तुम्हारी शक्ति का परिचय हुए बिना रह नहीं सकता। जिस नवीन युग की भाग्य रचना कभी की हो चुकी है उसमें तुम्हारा महिला-वर्ग भारी हिस्सा अदा करने वाला है। नवीन भारत में स्त्री पुरुषों के वर्त्तमान व्यवहार मे भारी उथल-पुथल होगी और मानव के सारे जीवन की नई रचना होगी। इसलिए इस नवीन रचना मे तू महाराज युधिष्ठिर की सहायता करना और यह सिद्ध करना कि ईश्वर की सृष्टि मे स्त्री-जीवन पुरुष-जीवन जितना ही नहीं, प्रत्युत उससे भी अधिक आदर योग्य है।"

द्रौपदी ने सिर नवाकर कहा—"जैसी आपकी आज्ञा। अब आप को सास चढ़ आया है। इसलिए बोलना बन्द करे तो अच्छा हो।"

"अभी एक बात शेष रह जाती है" सांस खींचते हुए भीष्म ने कहा। "अर्जुन !"

"आज्ञा पितामह ?" अर्जुन ने पूछा।

"जीवन की अन्तिम सीढ़ी पर से आज्ञा क्या हो सकती है ?" भीष्म ने श्वास भरते हुए कहा, "चिरंजीव अर्जुन !

प्रात:काल नया सूर्य उदित होगा। इस नये सूर्य के तेज को झेलने वाला तो तू है। इसलिए मैं अब प्रस्थान करता हूँ। नये प्रकाश के आने पर भी मैं पड़ा रहू, यह कैसे हो सकता है ? पुत्र ! बड़े भाई की मदद करना और आज जिस तरह नवीन प्रकाश देख कर मैं चलता बनता हू, उसी तरह तुम सब नये प्रकाश की किरणों के दिखाई पड़ने पर अपना-अपना रास्ता पकड़ लेना।"

"पितामह ! क्या आप जायगे ही ? अपना सम्बन्ध क्या अब समाप्त हो गया ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

भीष्म ने शान्ति से उत्तर दिया—"युधिष्ठिर ! यह क्या कहता है ? क्या मानव के सभी सम्बन्ध ऐसे ही नहीं हैं। अठारह अक्षौहिणी सेना के जाने पर अकेले मेरे की क्या बिसात है ? जाओ, सुखसे राज्य करो और धर्म के दीपक निरन्तर प्रदीप्त रक्खो।"

यह कहते-कहते भीष्म ने आखे बन्द करलीं।

गगा देवी के पुत्र, आर्य संस्कृति के प्रतिनिधि, कुरु-कुल के आधार स्तम्भ, पिता की खातिर सुख-वैभव को लात मारने वाले, अद्वितीय धनुर्धारी देवव्रत, उग्र प्रतिज्ञाधारी भीष्म बाण-शैया पर सो गये और कुछ ही देर बाद पूर्व दिशा मे नवीन दिवस के नव प्रकाश का सन्चार हुआ।

धृतराष्ट्र

: १ :

जीवन का निचोड़

हिमालय की तलहटी मे शतयूप ऋषि का आश्रम। थोड़ी दूर पर ऊंची टेकड़ियो के बीच से होकर गगा बह रही है। एक तरफ बड़ी दूर तक शाल और देवदार के वृक्षों की कतारे ऐसी प्रतीत होती हैं, जैसे किसी चक्रवर्ती राजा ने यज्ञ के लिए सैकड़ों स्तभों का मंडप बनाया हो। पर्णकुटी के निकट रोज शाम को हिरण बैठे हुए जुगाली करते और पेड़ों पर पक्षी कलरव करते थे। दूर, अति दूर बर्फ से ढके पर्वत-शिखर थे और इन शिखरों पर सुन्दर दीखता हुआ योगिराज शंकर का कैलास था।

ऋषि के इस आश्रम मे धृतराष्ट्र ने निवास किया। सजय, गांधारी और कुंती उनके साथ थे।

एक दिन आधीरात को महाराज धृतराष्ट्र बिस्तर मे एकदम उठ बैठे और बोले, "सजय! सजय! जरा देवी को बुलाओ।"

"महाराज", संजय बोला, 'आप रोज इस तरह करेंगे तो किस प्रकार रहा जाएगा? आप सो जाइए। अभी तो बड़ी रात बाकी है।"

धृतराष्ट्र बोले, "संजय! तुम्हें व्यास भगवान ने अनेक बार

दिव्य दृष्टि प्रदान की, फिर भी व्यथितके हृदय की वेदना की थाह लेने का बल तुममे बिल्कुल न आया। जाओ, देवी को बुलाओ।"

धृतराष्ट्र के बोलते-बोलते गांधारी और कुंती पास के खंड मे से आ पहुचीं। उनकी पग-ध्वनि सुनकर धृतराष्ट्र फिर बोले, "देवी कुंती! तुम आगईं? बैठो।"

संजय बोला—"गांधारी! इतनी सेवा करने पर भी महाराज निश्चिंत होकर सोते नहीं। इनके शरीर मे इनी-गिनी हड्डियाँ और चमड़ी शेष रह गई है। जब से इस आश्रम मे पैर रखा है, तब से एक रात भी इन्हे अच्छी तरह नींद आई हो, ऐसा मुझे तो स्मरण नहीं आता।"

धृतराष्ट्र बोले—"देवी! बेचारा संजय क्या समझे? नींद ऐसे कैसे आ सकती है। नींद तो मुझ से भागती फिरती है। अनेक बार मेरे सामने आकर खड़ी होती है, परन्तु फिर तुरन्त ही ताली पीट कर दूर खिसक जाती है और दूर खड़ी-खड़ी मुझ पर हंसती है।

"संजय! मेरी नींद तो ले गया मेरा दुर्योधन। मेरी नींद ले गया मेरा दुशासन। मेरी नींद ले गए भीमसेन और श्रीकृष्ण। अपनी नींद को तो मै हस्तिनापुर के महलों मे छोड़कर आया हूं। तेरह-तेरह वर्षों तक इस कुन्ती की आंखें जरा झपकी तक न थीं। तेरह-तेरह वर्ष, ऊपर आकाश, नीचे पृथ्वी और घूमते हुए स्यार, इस प्रकार द्रौपदी ने बिताये थे, और वे तेरह वर्ष भी मै, छत्र-पलंग पर सोकर और बन्दी जनों के स्तवन से जाग कर बिताता रहा। कुन्ती! कुन्ती! मुझे क्षमा करना। यह नींद आज मेरी बैरिन न हो तो कब हो?"

कुन्ती ने शान्ति-पूर्वक जवाब दिया—"महाराज! यह सब आप भूल जाइए और जीवन के शेष दिन शान्ति से तपश्चर्या मे बिताइए।"

संजय बोला—"महाराज ! अब तो शरीर भी जवाब दे रहा है ।"

धृतराष्ट्र ने कहा—"संजय ! तुम भूलते हो । यह शरीर क्या इस प्रकार जवाब देने वाला है ? मृत्यु तो मानव-जीवन की अमूल्य वस्तु है । जगत् मे मृत्यु न हो तो मनुष्य कितना दुखी होता है, यह देखने के लिए मेरे पास आओ । मुझे मृत्यु आजाए तो मैं अपने को भाग्यशाली समझूं, परन्तु नहीं, सारे भारतवर्ष को उजाडने वाला मै मर जाऊं तो फिर इस समग्र विनाश को देखने वाला कौन रहे ? अपना किया हुआ मैं ही देखू, यही दैव का न्याय है । मौत तो अलग रही, नींद भी दैव कहां देता है ? नींद भी छोटी-सी मृत्यु ही हैं न ? गांधारी ! अब तो मैंने मृत्यु की भी आशा छोड़ दी है ।"

गाधारी बोली—"महाराज ! कुन्ती ठीक कहती है । आप अब यह सब भूल जाइए ।"

धृतराष्ट्र गाधारी की ओर घूम कर बोले—"गांधारी ! मैं तो बहुत भूलना चाहता हू, पर यह सब भुलाये नहीं भूलता । अभी तुम्हे भूल सकता हूॅ, भीष्म-द्रोण को भूल सकता हू, दुर्योधन को भूल सकता हूं, परन्तु गांधारी ! मेरे ये कृत्य, मेरे ये विचार, भूलने से भी नहीं भूलते । देवी ! सच कहूं ? आजतक तो मैंने इन सब पर मानों एक बड़ी शिला रख दी थी, पर अब ये सब बिच्छू के बच्चों की तरह शिला के नीचे से मुझे दंश कर रहे है और क्षण भर भी चैन नहीं लेने दे रहे ।"

"तो फिर आप इस शिला को उठा लीजिए ।" सजय बोला ।

तुरन्त ही धृतराष्ट्र ने कहा—"सजय ! यह तुम ठीक कर रहे हो ।"

गांधारी बोली, "शिला उठ जाय तब तो हृदय का भार भी हलका होजाय ।"

धृतराष्ट्र क्षणभर चुप रहे। बड़े गहरे विचार में डूब गये हों, इस प्रकार बैठे रहे और क्षणभर बाद, मानो जाग कर बोल रहे हों, बोलने लगे—

"देवी गाधारी! कुन्ती कहां है?"

"यहा मेरे पास ही बेठी है।" गाधारी ने बताया।

"महाराज!" कुन्ती ने जवाब दिया—"मैं यहीं बैठी हू। आज्ञा।"

धृतराष्ट्र कुन्ती की ओर घूमकर बोले—"कुन्ती, कुन्ती!" फिर तुरन्त ही घुटने टेक कर नमस्कार करते हो, इस प्रकार करके बोलने लगे—"कुन्ती! यह दुष्ट धृतराष्ट्र तुम्हे प्रणाम करता है और तुम पर तथा तुम्हारे पुत्रों पर किये हुए अत्याचारों के लिए क्षमा मागता है।"

कुन्ती बोल उठी—"महाराज! यह क्या करने लगे हैं? मेरे वनवास को लजाना चाहते है? मैं तो आपकी पुत्री-समान हू। क्षमा देनेवाली कौन! क्षमा तो मुझे, आपको और सारे ससार को देने वाला एक परमात्मा है। आप उससे दया की याचना करिये। मै भी उससे दया की भीख मागती हू।"

धृतराष्ट्र स्वस्थ होकर कहने लगे, "बेटी कुन्ती! तुमने सच कहा। दया तो परमात्मा की ही चाहिए। वह तो आठों पहर दया बरसाता ही रहता है, पर मैं पामर उसे ग्रहण नहीं कर सकता। कुन्ती! तुम्हारा मैंने महान् अपराध किया है, यह स्वीकार करते हुए परमात्मा की दया का प्रवाह मैं अपने हृदय की ओर आता अनुभव कर सकूं, इसीलिए तुमसे क्षमा मांगता हू।"

कुन्ती फिर बोली—"आप हम सबके छत्र थे, इसलिए आपको जो उचित मालूम हुआ, वही आपने किया।"

धृतराष्ट्र ने कहा—"सजय! हम एक बार गंगा-स्नान करके लौट रहे थे तब तुमने मुझे एक खेत के अदृश्य कुएँ की बात

बताई थी जो ऊपर से खेत की तरह मालूम होता है, जिस पर खूब घास भी उगा हुआ दीखता है, परन्तु वास्तव मे गहरा अंधेरा कुआ होता है। अनेक अनजान लोग ऐसे अदृश्य कूप मे गिरकर प्राण गॅवाते हैं। कुन्ती, यह धृतराष्ट्र भी ऐसा ही अदृश्य कुआ है। मै विचित्रवीर्य का पुत्र, पांडु का भाई, युधिष्ठिर का ताया और हितैषी, तुम्हारा ज्येष्ठ और तुम लोगो की ठढ और धूप से रक्षा करने वाला छत्र हूं। पर यह सब तो ऊपर से हरे-भरे दीखने और हवा मे झूलने वाले उसी घास की तरह है। वास्तव मे तो मै दुर्योधन का पिता और पाण्डवों का कट्टर शत्रु हूं। ऊपर से ताया होने का दिखावा करके मैंने तुम्हारे पुत्रों को तंग करने मे कोई कसर नही छोड़ी। यह बात आज मुझे दग्ध कर रही है।"

कुंती बोली—"महाराज! आखिर हम सब मनुष्य ही तो है। परमात्मा आपको शान्ति दे।"

तत्काल ही धृतराष्ट्र बोल पडे—"अब तो मुझे शिला पूरी तरह से उठा लेने दो। इसे दूर किये बिना मुझे चैन नहीं मिलेगा। कुंती! बाहर से अच्छे-अच्छे शब्द बोलकर भले बनने और अन्दर से दुष्टता को पूरी तरह से पोषण करने का काम ही मैंने जीवन-भर किया है। कुंती! तुम्हारे पुत्रों का नाश करने के प्रयत्नों को मैंने एक जिव्हा से उत्तेजन दिया और उसी क्षण दूसरी जिव्हा से उनको मीठे शब्दों मे, शास्त्र की भाषा में, आशीर्वाद भी दिया। 'दुरंगी जिव्हा, दुरंगी आंख और दुरंगा जीवन।' यह धृतराष्ट्र के जीवन का सार है।"

कुंती ने फिर कहा—"महाराज! इस प्रकार तो हम सभी परमात्मा के अपराधी है।"

धृतराष्ट्र तुरन्त बोले—"परन्तु, गाधारी नहीं। इसके सारे जीवन मे ऐसी कोई चीज खोजने पर भी नहीं मिलेगी

और यदि कभी इसका कोई आभास हुआ होगा तो वह मेरी ही सगति से। यह मै मानता हू कि मनुष्य-मात्र थोड़े बहुत अ श मे ऐसा दुरगा जीवन ही बिताता है। पर बेचारा मनुष्य! उसे इस दुरगे जीवन का भान भी नहीं है। वह जो बोलता है, उसका उसके कार्यो के साथ मेल है या नहीं, जो करता है, उसका हृदय के साथ मेल है या नही, जो सोचता है, उसका वाणी के साथ मेल है या नहीं, यह सब देखना मुझे तो साधारण मनुष्य की शक्ति से बाहर की बात मालूम होती है, और इसी से मनुष्य मात्र दुखी है। पर कु ती! मेरी बात जरा भिन्न है। मै हस्तिनापुर का महाराजा ठहरा, साधारण मनुष्य न करने योग्य काम करे तो उसका समाज मे बडा परिणाम नहीं होता। परन्तु मै समाज के शिखर पर बैठा हुआ हू, इसलिए मेरे कृत्यो का परिणाम समाज मे बड़े-बड़े उलटफेर कर सकता है और बहुतों को उसका फल भोगना पड सकता है। फिर यदि मनुष्य अज्ञान मे ऐसा जीवन बिताये तो वह क्षंतव्य माना जा सकता है। पर इस अन्धे ने तो खुली आखों से यह व्यापार किया है और ऐसे जीवन का नया शास्त्र भी गढ़ डाला है। कु ती! हम राजपुरुषों को ऐसे दुरंगे जीवन की यथारीति शिक्षा दी जाती है। आज के राजपुरुष, अर्थात् दुरगा जीवन, गरीबों को चूसना और चूसते-चूसते उनके शरीर पर मीठे शब्दों का जल छिड़कना। दूसरों का सर्वस्व लूट लेना और लूटते-लूटते मनुष्य-जाति के कल्याण के आदर्श उपस्थित करना, हृदय मे मार डालने की भावना रखते हुए मुख से स्वागत के भाषण करना यह सब राजपुरुषों की शिक्षा मानी जाती है। और इन विषयों में जो कुशल हो, राजसभा मे उसका सिंहासन प्रथम होता है। कुंती! देवी गांधारी! मैं इस प्रकार का राजपुरुष बना, इसीसे आज इस बिस्तर पर पड़े-पड़े पसलियां

रगड रहा हू । आज तो हम समाज से दूर, बहुत दूर इस आश्रम में हैं। यहा से यदि मेरी आवाज पहुँच सकती हो तो सजय, मैं सारी दुनिया को सुना देना चाहता हू कि राजपुरुष होने का अर्थ मनुष्यताको भी खोदेना है। राजपुरुष अर्थात् दिन-दहाडे लूटमचाने वाला लुटेरा । राजपुरुष हृदय से परमात्मा को निकालकर वहा मजबूत ताला लगा देता है, जिससे वह कहीं फिर वहा घुस न पडे ! राजपुरुष बनना अर्थात् मुट्ठी जितने हृदय की बलि देकर सारी पृथ्वी के ऐश्वर्य से समृद्ध होना । राजपुरुष बनना अर्थात् शरीर का विस्तार इतना अधिक बढ़ाना कि हृदय की धडकन भी वहा न पहुच सके और अन्त मे हृदय-रोग से सहसा मर जाना । कु ती ! इस धृतराष्ट्र ने सारा जीवन ऐसे व्यापार मे बिताया है, यह आज मैं तुम्हारे सामने स्पष्ट बता रहा हूँ और यह बताते हुए अपने हृदय का भार मै कुछ हलका होता अनुभव कर रहा हू ।"

कु ती बोली—"महाराज ! मै तो यही कामना करती हू कि आपके हृदय का भार हलका हो ।"

गाधारी ने कहा—"महाराज ! आज यह ठीक बात सूझी है। आज आपने निराली शुद्धता धारण की है। कर लीजिये हृदय को जीभर कर खाली ।"

धृतराष्ट्र बोले—"देवी! संजय! बाते तो अभी बहुत करनी हैं, पर की नहीं जातीं, जैसे कोई मुझे रोक रहा है । कु ती ! मेरी बात मानोगी ? तुम समझ नहीं सकतीं कि जब तुम्हारे पुत्र कुरुक्षेत्र से वापस आये और युधिष्ठिर मेरे पैरों पर गिरा था तब मुझे कितनी वेदना हुई थी। उसके बाद का सारा समय मैंने उन महलों में किस प्रकार बिताया, यह मेरा मन ही जानता है। हस्तिनापुर का ताप मुझसे सहन न हुआ । इसीलिए मेरी इच्छा हुई कि अब जंगल की खुली हवा में जाऊं और मैं यहां आगया ।"

कुंती बीच में ही बोली—"इस प्रकार के तपोवन अपने पवित्र वातावरण से ही मनुष्य को शान्ति दे देते हैं।"

धृतराष्ट्र बोल उठे—"कुन्ती,तुम भूलती हो। यहा आकर तो मैं अधिक दु खी हो गया हू। इस आश्रम की शान्ति मे तो मेरे पिछले सारे कर्मों ने मुझ पर एकदम धावा बोल दिया है और मेरी वेदना बढ़ गई है। इस आश्रम की शान्ति तुम सबको अच्छी लगती होगी,पर मै तो इससे त्रस्त ही हुआ हूँ। यहा आने के दूसरे ही दिन मुझे लगा था कि इससे तो हस्तिनापुर ही अच्छा है। यहा आने के बाद मेरा मन बेकार हो गया, इसलिए वह मुझे ही खाने को दौड़ता है। ऐसी शान्ति मे ऋषि-मुनि न जाने कैसे रहते होगे! गान्धारी! सच कहता हू। सारे जीवन मे मैंने जो-जो कृत्य और जो-जो विचार किये है, वे ताजे होकर स्मरण आते ही है, पर जिन कृत्यो और विचारों का मुझे जरा भी स्मरण नहीं है, वे भी हजारों की सख्या मे जब मेरे आगे आकर खड़े होते हैं और मुझे पिता के रूप मे परिचित कराते हैं तब तो मुझे बहुत ही घबराहट होती है। देवी! कभी-कभी तो मेरी इच्छा होती है कि कहीं भाग जाऊं या गंगा मे डूब मरूँ तो इन सबसे छुटकारा हो, परन्तु अन्दर से कोई मना करता है।

"कुन्ती! तुम्हारे सामने अपना हृदय खाली करने से कदाचित् यह वेदना शान्त होजाय, इस आशा से तुम्हें दो बातें कहना चाहता हूं। कुन्ती! मुझे पापी न कहना। मुझे धूर्त्त समझकर मेरी अवगणना न करना। मुझे पामर और स्वार्थी कहकर मेरी निन्दा न करना। मै इस प्रकार का हू, फिर भी आज तुम्हारी दया का भूखा हू। मेरा त्याग न करना। कुन्ती! मै हस्तिनापुर की प्रजा का स्वामी आज तुम्हारी गोद मे सिर रखकर रोने का अभिलाषी हू।

"बेटी कुन्ती! मेरे जीवनकी अनेक घटनाएं मेरे सामने एकत्र

होगई है और वे इस प्रकार बाहर आना चाहती है, मानो एक के बाद एक अपने चित्र उपस्थित करती हो।

"संजय! सुनो। भाई पांडु उस समय वन मे रहता था। एक दिन प्रात काल कुछ वनवासी हस्तिनापुर मे आये। कुन्ती और पाण्डव उनके साथ थे। तपस्वियों ने आकर भीष्म पितामह से पाण्डु की मृत्यु की बात कही। पांचो बच्चों को भीष्म की गोद में सौंपा और विदा हो गये। कुन्ती! उस दिन मैं कितने ऊंचे स्वर मे रोया था—तुम्हे याद आता है? तुम तो दु:ख मे डूबी हुई थीं। इसलिए तुम्हे याद न होगा। मैंने बड़े ऊंचे स्वर मे रुदन किया, जैसे मेरे सिर पर आकाश टूट पड़ा हो, परन्तु कुन्ती! सच बात कहू? मेरी आखों मे आंसू होंगे, पर मेरे हृदय मे दीपक जल उठे थे। पाडु के मरने पर मै हस्तिनापुर का स्वामी बना और हस्तिनापुर को गद्दी पर दुर्योधन के लिए स्थान हो गया। गान्धारी! वह मेरा भाई पाडु मेरे सामने खड़ा मुझ पर हॅस रहा है। देवी! पाडु चला गया। प्रतिष्ठा देने वाले वे लोग चले गए। जिस राज्य के लिए रोया था, वह राज्य भी चला गया, जिस पुत्र की लालसा से रोया था, वह पुत्र भी चला गया, जो आंसू गिरे थे, वे भी सूख गए, परन्तु इन सबके पीछे मेरा जो ढोंग था, वह मेरी जीवन-पुस्तक में अकित होगया और मिटाने से भी नहीं मिटता। इतने दिनों से गगा-स्नान करता हूं, इतने दिनों से तप करता हूॅ, पर न तो गंगा-स्नान मेरे हृदय को धो सका है और न तप उसे निर्मल कर सका है। जिस दिन झूठे रुदन से मैंने लोगों को ठगने का प्रयत्न किया था, उस दिन मुझे पता न था कि दूसरों को ठगने का विचार रखने वाले लोग दूसरों को तो ठगते ही होंगे, पर उससे पहले अपने आपको ठगते हैं। कुन्ती! धृतराष्ट्र के जीवन का श्रीगणेश उस दिन हुआ।

"कुन्ती! तुम और पाण्डव हस्तिनापुर मे रहने लगे। पाण्डु

के पुत्र और मेरे पुत्र पितामह की छत्रछाया में बड़े होने लगे। पितामह ने पहले कृपाचार्य को और फिर द्रोणाचार्य को रखकर उनसे राजकुमारों को शिक्षा दिलाने का प्रबंध किया। पाण्डव और कौरव सब मुझे अपना हितैषी समझने लगे; परन्तु मेरे मन में तो बहुत पहले से ही पांडवों और कौरवों के लिए भेद-भाव उत्पन्न हो चुका था। मेरा प्रयत्न सदा यही रहता था कि आहार-विहार में मेरा दुर्योधन सदा आगे रहे। द्रोणाचार्य से मैं सदा आग्रह करता रहता था कि वह दुर्योधन की ओर अधिक ध्यान दें। जब सब राजकुमार नदी-तट पर खेलने जाते थे तब मेरे कान यही सुनने के लिए उत्सुक रहते थे कि दुर्योधन ने औरों को हराया। यह सब इस समय मैं दीपक की तरह स्पष्ट देख रहा हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं ऐसा ही करता था, पर उस समय यह सब मुझे स्पष्ट दिखाई नहीं देता था। गांधारी! तुम्हें याद होगा, दुर्योधन की दुष्टता देखकर तुमने मुझे अनेक बार उसका त्याग करने के लिए कहा था, पर मैं उसका त्याग किस प्रकार करता? सच्चा दुष्ट तो मैं था। दुर्योधन की दुष्टता तो केवल मेरी दुष्टता का प्रतिबिंब था। मैंने बड़ी कुशलता से अपने दोषों को ढक रखा था, परन्तु ऐसी कुशलता बरतने वाले मां-बाप भूलते हैं। उनको पता नहीं कि उनके दोष उनके रोम-रोम से बाहर झांकते हैं और छूत की बीमारी के कीटाणुओं की तरह उड़कर उनके बच्चों को लग जाते हैं। दुर्योधन! तू चाहे जितना दुष्ट था, पर गान्धारी की गोद में खेला था, इसलिए तेरी दुष्टता प्रकट थी। तेरी दुष्टता में एक प्रकार की उच्चता थी। तेरी दुष्टता में गांधारी की निडरता थी; पर मैं तो छिपा दुष्ट था। मुझे दुष्टता प्यारी थी; पर दुष्टता करने की हिम्मत मुझमें नहीं थी। गांधारी! मेरी दुष्टता को कोई देख न ले, इस भय से मैं उसे बार-बार हृदय की गहराई में धकेलता रहा। संभवतः इसी

से आज भी वह बाहर आते डरता है।"

"महाराज! हम सब तो यह समझते थे कि आप पुत्र-स्नेह के वश होकर दुर्योधन को कुछ नहीं कहते थे।" संजय बोला।

धृतराष्ट्र ने कहा—"केवल यही नहीं। जब भीमसेन को दुर्योधन ने लड्डू मे विष खिला दिया था तब मुझे बहुत बुरा लगा था। इस बात का पता लगने पर मैंने एकान्त मे अपने पुत्र को खूब धमकाया था। परन्तु अपनी धमकी की पोल को मैं उतनी अच्छी तरह नहीं समझता था,जितनी अच्छी तरह मेरे पुत्र उसे परख गए थे। मुझे उस समय अच्छे काम अच्छे और बुरे काम बुरे लगते थे सही, परन्तु अच्छे काम अच्छे ही हैं, इस पर मुझे विश्वास नही था। इसलिए मैंने इसके लिए कभी कोई आग्रह नहीं रखा। परिणाम-स्वरूप मैं दुष्टता मे अधिक से-अधिक लिप्त होता गया। कुन्ती! दूसरी बात क्यों कहूँ? यह तो अभी कल की ही बात है। दुर्योधन को युद्ध से रोकने की सबने मुझे सलाह दी थी। मै चाहता तो उसे रोक सकता था, परन्तु मै तो किसी भी चीज मे विश्वास रखना छोड बैठा था और अपना सारा जीवन एक जुआरी की तरह मैंने दैव को सौप दिया था। जीवन का यह जुआ मनुष्य को किस तरह नष्ट कर देता है, यह किसी को देखना हो तो धृतराष्ट्र के पास आये और उसका हृदय खोलकर देखे।

"परन्तु कुन्ती, मैं दूसरी ओर चला गया। पुरोचन! खड़ा रह। बाहर आने के लिए क्यों उतावला हो रहा है? मैं कुन्ती से तेरी बात कहने लगा हूँ। पर दुष्ट! फिर तू मेरा पीछा छोड़ देना। कुन्ती! उस समय की बात है, जब तुम्हे वारणावत के महल में भेजा था। द्रोणाचार्य की विद्या में पाण्डव मेरे पुत्रों से अधिक कुशल हो गये, यह मुझसे सहन न हुआ। मेरे पुत्रों ने पाण्डवों को किसी प्रकार समाप्त करने की योजना बनाई और

मुझसे उन्होंने यह विनती की कि पाण्डवों को वारणावत मे विहार करने के लिए भेजा जाय। कुन्ती ! सच-सच कहता हूँ। इस विनती की आड मे जो कुछ छिपा था, उसका मुझे पता था। परन्तु ऐसी योजनाएं तो हम राजपुरुषों की ओट मे बनती ही रहती है और आवश्यकता पडने पर न्याय-सभा मे हम शपथ-पूर्वक यह घोषणा कर सकते है कि हमे ऐसी किसी बात का जरा भी पता नहीं है। पाण्डव तैयार होगए। तुम सब मेरे पास आज्ञा लेने आये। मै तुम लोगों के वियोग के दु ख से आखों मे आसू भर लाया और तुम विदा हुए। विदुर, विदुर ! मेरी डूबती हुई आत्मा को बचाने के लिए तुमने कितना प्रयत्न किया है, यह जब मै स्मरण करता हूँ तो मेरी इच्छा होती है कि किसी जन्म मे तुम्हारा सम्बन्धी बनकर सारा जीवन तुम्हारी सेवा मे बिताऊ। विदुर ! हम तीनों भाई थे। पाडु स्वर्ग चला गया, तुमने मेरे वैभव मे जरा भी हिस्सा न बटाया, परन्तु मेरी डूबती नौका को स्थिर दीपक दिखलाया। कुन्ती ! जब तुम लोगो को भेज रहा था तब विदुर ने मुझे रोका था। मेरे पुत्रों की नीयत विदुर परख गया था, पर मैंने उन्हे भेज दिया। कुछ दिनों बाद समाचार मिला कि वारणावत का नया महल जल गया और उसमे तुम छहों भस्म होगए। खबर सुनकर मैं रोया, मेरे पुत्र रोये, शकुनी रोया, गाधारी रोई और हस्तिनापुर की सारी प्रजा रोई। परन्तु मैं तो लोक-लज्जा से रोया था। मेरी समझ मे वह मेरा अन्तिम झूठा रुदन था। हस्तिनापुर के लोगों को हम पर शका हुई, पर बहुत दूर वारणावत मे घटना हुई थी, इसलिए उन की शंका को उत्तेजन न मिला और धीरे-धीरे लोग सब कुछ भूल गए। पाण्डवों से छुट्टी पाकर मेरे पुत्र बिलकुल स्वतन्त्र हो गए। मुझे भी ऐसा विचार आया कि अब झूठ-सच बनाने की जरूरत खतम होगई। इसलिए बाकी जीवन शान्ति से बीतेगा। कुन्ती !

थोड़े दिन बडी ही शान्ति और आनन्द से बीते। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे हृदय का भार हलका हो गया है।

"पर तभी समाचार मिला कि 'राजा द्रुपद की सभा मे अर्जुन ने द्रौपदी को प्राप्त किया और वहा एकत्र हुए समस्त राजाओं का दर्प पाण्डवों ने चूर्ण किया।'

"इस समाचार से मुझे गहरा धक्का लगा। अपने पुत्रोंके लिए रचे गए सारे स्वप्न भंग हो गए। मै यह कामना करने लगा कि यह खबर झूठी निकले। क्षणभर मुझे ऐसा जान पडा कि मेरे हृदय में घोर अन्धकार छाता जारहा है और मै एकदम मूढ बन गया। पर कुंती! फिर मैं तुरन्त ही सावधान हुआ और मैंने यह दिखलाने में कोई कसर नहीं रखी कि इस खबर से मुझे अपूर्व हर्ष हुआ है। इस खबर के मिलते ही मैंने सारे हस्तिनापुर मे मिठाई बटवाई, राजमहल मे बाजे बजवाये, ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाया, कुमारी कन्याओं का शृंगार करवाया और उस दिन रातभर सारे नगर मे रोशनी करवाई। परन्तु कुंती! सच कहता हू, मुझे क्षमा करना, मेरे हृदय मे केवल अन्धकार था। पाण्डव जीवित होंगे तो मेरे पुत्रों को जीने नहीं देंगे, इस विचार ने मुझे गहरी चिन्ता मे डाल दिया था।

"कुंती! हारा हुआ तिकड़मी और क्या करता! मेरा पुत्र गाधारी के भाई का सलाह लेने लगा। संजय! याद है? एक दिन गगा-स्नान करके लौट रहे थे तब रास्ता भूलकर हम एक दलदल में गिर पड़े। उसमें पैर पडते ही हम गहराई को ओर जाने लगे। मैंने बाहर निकलनेको बडी चेष्टा की, पर ज्यो-ज्यों प्रयत्न करता था त्यों-त्यों पैर अधिक गहराई में चले जारहे थे। अन्त में जब तुमने मुझे अपनी तरह सीधा लिटा दिया तब हम दोनों बचे और तपस्वियोंके बाहर निकालने पर घर आये। मैं अभी तक वह दिन भूला नहीं हू। मेरे और मेरे पुत्रों के इस पाप को भी ऐसा ही समझो। कुन्ती! मैं

हृदय खोलकर बात कर रहा हूं। मैं प्रत्येक बार ऐसा सोचता था कि यह अतिम प्रयत्न और कर लिया जाय, जिससे आगे और अधिक कुछ न करना पड़े। परन्तु वह सोचा हुआ अंतिम पाप तो अन्त में केवल अन्य अनेक पापों की पहली सीढो बनकर रह जाता था।

"कुन्ती! द्रौपदी को लेकर तुम सब जब हस्तिनापुर आये तब से मेरी अस्वस्थता बढ़ गई। हाँ, कभी-कभी मेरा विदुर जब मेरे पास आकर धर्म-शास्त्र की बाते करता था तब क्षण भर के लिए मैं बदल जाता था। क्षण भर तुम सब के लिए मुझे ममता हो आती थी और अन्दर से मुझे बार-बार कोई कहने लगता था कि मैं जो करता हूँ, वह ठीक नहीं है। पर यह स्थिति विदुर के सामने ही रहती थी। विदुर के न होने पर जब दुर्योधन मेरे समीप आता था तब मै दूसरा ही धृतराष्ट्र बन जाता था। गाधारी! महान् तुम्हारी पवित्रता, तुम्हारी पवित्रता से तो मैं समझता हूँ कि यह पतितपावनी गंगा भी पवित्र होती है। तुम्हारी वह पवित्रता मेरे साथ थी, फिर यह क्या बात थी जो मैं दुर्योधन को ही देखता और उसी की बात मानता था? गांधारी! आज वह बेचारा स्वर्ग में है और मै पृथ्वी पर पड़ा हूँ। परन्तु देवी! तुम्हे अपनी पवित्रता मे जितना विश्वास है, उससे कहीं अधिक विश्वास मेरे दुर्योधन को अपने पाप मे था। कदाचित इसीलिए उसने मुझे जीत लिया था। मुझे तो तुम आरम्भ से ही पहचानती हो। आजतक अपने आपको मैं धर्मिष्ठ समझता था। आजतक मै यही मानता था कि प्रतिदिन धर्म की शास्त्रोक्त क्रियाएँ करते रहना और शेष समय मे व्यवहार तथा समाज को गहरा धक्का न लगे, इस प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहना ही अच्छे मनुष्य का लक्षण है। आज इस तपोवन की शान्ति में आकर मुझे अपनी भूलें समझ आती हैं।

देवी ! वे धर्म-क्रियाएँ अपने-अपने स्थान पर रह गई, वे स्वार्थ के प्रयत्न भी अपनी-अपनी जगह पर पड़े रहे ! परन्तु उन सब से डोलायमान हुआ मेरा यह नन्हा-सा मन मुझे नहीं छोड़ता और छोड़ेगा भी नहीं । गांधारी ! मेरे जैसे सारी दुनिया के साम्राज्य के पीछे दौड़ने वाले बेचारे अनेक मृगों को यह क्या पता है कि यह सब व्यर्थ के प्रयत्न है ?

"कुन्ती ! सुनती हो ? बीच-बीच में मैं दूसरी तरफ चला जाता हूँ ! सजय ! तुम मुझे रोकते भी नहीं हो ? जब द्रौपदी को लेकर तुम सब हस्तिनापुर में आये तब मैं प्रसन्न हुआ और पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ नगर तथा राज्य का आधा भाग दे दिया । तुम लोग इन्द्रप्रस्थ चले गए । परन्तु कुन्ती ! मैं सच कह रहा हूँ, मेरे मन को जरा भी चैन न मिली । हर रोज दिन डूबने भी न पाता था कि तुम्हारे पुत्रों के किसी न किसी राजा को परास्त करने और एक नया देश विजित करने का समाचार आ जाता था । इससे मेरे हृदय की जलन बढ़ती थी । कुन्ती ! आज जिस प्रकार सब समझ में आरहा है, उस प्रकार उस समय नहीं आया था । पाण्डवों का राज्य और सत्ता बढ़ने से मेरा कुछ बिगड नहीं रहा था, मेरे दुर्योधन के एक ग्राम में भी इससे कमी नहीं आरही थी, तुम्हारे पुत्र मेरे दुर्योधन के प्रताप को जरा भी हानि नहीं पहुँचा रहे थे, परन्तु मेरे मन में यही विचार आता था कि पाण्डवों का तेज बढ़ने से दुर्योधन का तेज घट रहा है । पाण्डवों को दुर्योधन से सदा नीचे रहना चाहिए, यही मेरी अभिलाषा थी, और इस अभिलाषा का पोषण करते हुए मुझे ऐसा मालूम होता था कि मैं केवल अपने पुत्रों के प्रति कर्त्तव्य पालन कर रहा हूँ । आज स्पष्ट जान पड़ रहा है कि इस प्रकार का विचार करने में मेरे मन में पाण्डवों के तेजोद्वेष के सिवा दूसरी कोई भावना नहीं थी । पाण्डवों के अपने मार्ग पर

आगे बढ़ने में दुर्योधन की कोई हीनता नही थी, परन्तु हम दुनिया के मनुष्य अपनी हीनता और उच्चता का विचार दूसरों की दृष्टि से करते है, यही भूल है। मेरा सारा जीवन ऐसी ही भूल मे बीता है। पाण्डवों की कीर्ति को बढते हुए सुनकर मैं अधीर हो गया। मेरे पुत्र भी वही विचार करते रहते थे कि पाण्डवो का किस प्रकार नाश किया जावे।

"इतने में युधिष्ठिर ने राज-सूय यज्ञ किया। श्रीकृष्ण,अर्जुन और भीम ने मिलकर जरासध का वध किया और बंदी बने राजाओं को छुड़ा दिया। जब मुझे यह समाचार मिला तब मैं चकित हो गया। मैं ऐसी कल्पना भी नही कर सकता था कि जरासध को और उसके साम्राज्य को भी कोई मिट्टी मे मिला सकता है। भीम ने जब जरासंध का वध किया तब मेरी आँखे खुल गई और क्षण भर मुझे ऐसा जान पड़ा कि पाण्डवों के सामने आना मेरे पुत्रों के लिए सिंह के जबड़े मे हाथ डालने के समान है।

"परन्तु यह विचार आते थे और फिर छिप जाते थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे भीष्म, द्रोण, दुर्योधन और अन्य कई लोग गए। विदुर भी गए थे, परन्तु मेरे तो आँखें ही नहीं हैं, मैं क्या जाता? जब दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ से वापस आया और उसने मुझ से पाण्डवों के ऐश्वर्य का वर्णन किया तब मेरी नींद उड़ गई। द्वारकाधिपति श्रीकृष्ण का मनुज-श्रेष्ठ के रूप में पूजन हुआ और उस पूजन का विरोध करने वाले शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। उन्हीं महानुभाव श्रीकृष्ण ने यज्ञ मे राजाओं के पैर धोने का काम संभाला। भारतवर्ष के दूर-दूर के राजाओं-महाराजाओं ने महाराज युधिष्ठिर के चरणों मे मस्तक टेके और अनेक मूल्यवान भेंटों से उनका सार्वभौम पद स्वीकार किया। यह सब मैंने जब विस्तार से सुना तब मेरे मन की क्या दशा हुई होगी, इसकी कल्पना भी तुममे से

कोई नहीं कर सकता। अपने पुत्रों को सदा पाण्डवों से आगे देखने के इच्छुक धृतराष्ट्र को यह सब किस प्रकार अच्छा लगा होगा ? यह सब वर्णन सुनकर मेरे कान थक जाते थे, परन्तु मैंने धीरज रखा और दुर्योधन को भी धीरज बंधाया। कुन्ती ! सच कहूँ, मैं अंधा हूं, यह सभी जानते है। मुझे यदि कोई अंधा कहे तो यह एक सच्ची बात होगी, यह भी मै जानता हूँ, परन्तु फिर भी जब द्रौपदी ने दुर्योधन को ताना दिया कि 'अंधे के बेटे अंधे ही होते है,' तब मुझे बडा दुःख हुआ और द्रौपदी का और तुम सब का हितैषी होने पर भी उसकी चोटी खींचने की मेरी इच्छा हो आई। बाद की बात तो तुम सब को पता है ही। यह द्रौपदी आ गई ! द्रौपदी ! अब तो अपने बालों का जूडा बाधले। द्रौपदी ! जगदम्बे ! तेरी चोटी ने मेरे दुःशासन की बलि ले ली। अब तो क्षमा कर। आ जा, मेरी गोद मे बैठना चाहती है ? नहीं, नहीं मैं जल जाऊंगा। पवित्र स्त्रियों का स्पर्श होने योग्य मेरी गोद नहीं।"

संजय बोला—"महाराज ! हम तो इस समय शतयूप के आश्रम मे है।"

धृतराष्ट्र ने कहा—"ओह ! मैं भूल गया था। फिर मैंने अपने जीवन का सबसे अधिक कलंक-पूर्ण कार्य किया। जुआ कितनी खराब वस्तु है, यह मै जानता था। दुर्योधन ने जब अपना विचार मेरे सामने रखा तब मैंने उसे बहुत रोका, परन्तु दुर्योधन बिलकुल न टला। अन्त में मैंने थक कर विदुर को आज्ञा दी कि पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए बुला लाओ। विदुर ! विदुर ! तुम्हे कितना याद करू ? तुम्हारा एक वचन लाखों के मूल्य का था, परन्तु मैं अन्धा था। इसलिए मुझे अपना विनाश कैसे दीख सकता था ? कुन्ती ! तुम्हे भी न सूझा कि तुम युधिष्ठिर को रोकती। कैसे सूझ सकता था ! दैव को यही

पसन्द था। फिर तुम सब आये और हम सबने बडे आडम्बर के साथ तुम्हारा स्वागत किया। गान्धारी ! तुम्हारा शकुनी तो उस दिन फूला नहीं समा रहा था।

"फिर—फिर—फिर दूसरा दिन हुआ। जुआ खेला गया। मेरा पुत्र दुर्योधन जुए में जीत गया। ऐ? नहीं, नहीं, हार गया। कुन्ती ! तुम्हारे पुत्र जुए मे हार गए? नहीं, नहीं, जीत गए। जगत् मे कई बार जीत हार से भी अधिक बुरी होती है और हार जीत से अधिक मूल्यवान होती है। मेरे पुत्र दुर्योधन ने युधिष्ठिर की लक्ष्मी को, उसके राज्य को, उसके दास-दासियों को, उसके भाइयों को और सती द्रौपदी को भी जीत लिया, परन्तु इन सब को जीत कर वह स्वयं अपनी मनुष्यता को भी खो बैठा। गाधारी ! मेरे पुत्र को शकुनी ने नष्ट किया। पर शकुनी को क्यों दोष दूँ? यह दोष तो मेरा ही था। सजय ! द्यूत सभा मे पासे किस प्रकार पड़ रहे है, यह मैने तुमसे कितनी आतुरता से पूछा था, तुम्हे याद है? मुझे यह अच्छी तरह याद है। सफेद आसन पर पडते हुए उन हाथी दात के पासों का जब तुम वर्णन कर रहे थे तब मेरे आनन्द की सीमा नहीं थी। एक भी शस्त्र की झकार किये बिना मेरे पुत्र ने जब पाडवों और द्रौपदी तक को दास बना लिया तब मुझे शकुनी के बुद्धि-वैभव पर सोने का कलश चढता जान पड़ा। परन्तु यह आज समझ आ रहा है कि वह सोने का कलश भुलावा मात्र था। कुन्ती ! कुन्ती ! जब मै यह याद करता हू कि सारे कुरुकुल के मुखिया, सारे कुरुकुल की लाज के प्रतिनिधि, सारे कुरुकुल की पवित्रता के संरक्षक मैंने स्वय अपनी पुत्री समान द्रौपदी की लाज भरी सभा मे लुट जाने दी तब मुझे अपने प्रति घोर तिरस्कार उत्पन्न होता है। और इस महापाप से मैं किस जन्म में छूटूंगा, यह सोचते हुए मेरा मस्तिष्क थक जाता है। दुर्योधन ने यह जुआ न खेला

होता तो आज समस्त कौरव जीवित होते और हस्तिनापुर मे आनन्द मना रहे होते। जुआ खेलने पर भी शर्त्त न रखी होती तो वे सौ भाई युधिष्ठिर के पार्श्व मे शोभा दे रहे होते। शर्त रखने पर भी द्रौपदी को बाजी पर न रखा होता तो आज कौरव और पाण्डव इकट्ठे मिलकर समस्त भारतवर्ष को हिला देते, और द्रौपदी की बाजी लग चुकने पर भी मेरे दु.शासन ने उसका चीर-हरण न किया होता तो आज मेरी पुत्र-वधुओं के जीवन वीरान न बने होते और ऊजड अरण्य मे डालियो और पत्तों से हीन ठूंठ की तरह जल-जल कर मरने की अपेक्षा मैं अपने एक सौ पांच पुत्रों के बीच सुख की नींद सो जाता। परन्तु सजय! जब मैं स्वयं ही बुरा हूँ तब और किसे दोष दूँ? अपनी करनी का फल मैं न भोगूँ तो और कौन भोगे? कुन्ती! जब मेरे पुत्रों ने द्रौपदी की यह दशा की तब तुम्हारे हृदय के तो टुकड़े-टुकडे हो गए होंगे। पर मैंने यह सब बडे मजे से सुना और मन मे प्रसन्न भी हुआ। मुझे यह भी विचार आया कि मुझे अन्धा कहने का अच्छा बदला लिया गया। मुझे उस दिन समझ न पड़ा कि पवित्र आर्याओं को जुए में जीतने वाले लोग अपने जीवन की ही समाप्ति करने वाले हैं। मैं उस दिन न जान सका कि पवित्र आर्याओं के बालो की फरफराहट सैकड़ों वर्षों से जड़े जमाये हुए वृक्षों को निमिष मात्र मे भस्म कर डालती है। मुझे उस दिन पता न लग सका कि जो लोग भरी सभा में, खुली आंखों से और अपने ही हाथों से पवित्र आर्याओं का अपमान करके अपने-आपको गर्वित समझते हैं, वे काल के गाल में समाने जारहे हैं।

"कुन्ती! गांधारी! इस घटना को आज भी जब मै स्मरण करता हूँ तो जैसे मेरे चारों ओर भूतों का जमघट खड़ा होजाता है और मुझसे इसका जवाब मांगता है। और तो मेरे पास कोई जवाब है नहीं, केवल यही है कि मैं अन्धा था, लोभी था। लोभ

को आखे होती भी कहां है ! दुर्योधन से मुझे स्नेह था, इससे उसकी सारी करतूतों को मै आगे बढ़ने देता था। मैं सोचता था कि इस प्रकार मेरे लोभ को सतोष मिलेगा, परन्तु आज अब रोने से भी शान्ति नहीं मिल रही है।

"कुन्ती! एक बात और रह गई। जब सभा में भारी हाहाकार मच गया और दु शासन जैसा बलवीर भी द्रौपदी का चीर खेचते-खेचते थक गया, तब मुझे विचार आया कि कहीं द्रौपदी मेरे पुत्रों को शाप देकर भस्म न कर डाले। इसलिए मैं सभा के बीच दौडकर आया। यह सजय बैठा है। सभा मे जाकर मैंने द्रौपदी को अपनी गोद मे बिठाया और उसे प्रसन्न करने के लिए उसे और पाडवों को दासता से मुक्त कर दिया। कुन्ती! सच बात कह दू ? सभा मे लोग मेरी बड़ी स्तुति करने लगे, जैसे मुझे अपने पुत्रों का काम अच्छा न लगा हो और मैं द्रौपदी तथा पांडवों के साथ न्याय करने आया होऊँ। परन्तु बात ऐसी नहीं थी। मेरी इस उदारता में भी स्वार्थ था। गान्धारी! हम राजा लोग शत्रु को तड़पा-तडपा कर मारने मे अपनी कुशलता समझते हैं। चोट करने के साथ-साथ चोट की जगह पर ठंढे पानी के छींटे देने की भी हम व्यवस्था किये रखते हैं। ऐसा करने से लोगों की दृष्टि हमारी की हुई चोट की ओर न जाकर पानी के छींटों की ओर ही चली जाती है। लोगों का बड़ा समूह उस दु ख को भूल जाता है और हमें दूसरी बार फिर कभी चोट करने का अवसर मिल जाता है। मैंने विचार किया कि द्रौपदी योगमाया का अवतार है, कहीं मेरे पुत्रों को शाप न दे डाले, इसलिए भयभीत होकर मैंने उसे वरदान दे दिया और जब वह प्रसन्न हो गई तभी मेरे मन को शांति मिली।

"फिर भी मेरे पुत्रों को यह कब सहन हो सकता था कि पांडव इस प्रकार बचकर निकल जाय ? और पुत्रों के संकेत पर नाचने

वाले मुझको भी यह कैसे सहन हो सकता था ? इसलिए पांडवों को फिर से जुआ खिलाया और बारह वर्षों के लिए बनवास दे दिया। गाधारी ! यह सब दुर्योधन ने किया, पर मन मे मुझे भी यह अच्छा लग रहा था, इसमे कोई सन्देह नहीं। मुझे अच्छा न लगा होता तब तो उस दिन मै उन्हे कदापि सम्मति न देता, बल्कि विरोध करता। विदुर ! गाधारी ! तुमने मुझे कई बार चेतावनी दी, पर मै अन्धा सावधान न हुआ। आज जब मेरी दुष्टता और पामरता के परदे एक-एक करके उठ रहे है तब मैं सब कुछ समझ रहा हू। परन्तु आज इस समझ का लाभ क्या है ? मेरे पापो ! आओ, तुम एक-एक करके क्यों आ रहे हो ? सब इकट्ठे होकर आओ और मेरे हृदय को जितना दंश कर रहे हो, उससे अनेक गुना अधिक करो, दुनिया के सब सांप और बिच्छू तुम्हे अपना विष प्रदान करे। दुनिया की समस्त अग्नि तुम्हे अपनी ज्वालाएँ सौंपे, और हे पापो ! तुम मुझे दंश करो, मुझे जलाओ। यह धृतराष्ट्र इसी योग्य है। सजय ! मुझे हिमालय पर ले चलोगे ? कुन्ती ! मै हिमालय की चोटी पर बैठकर सारे भारतवर्ष से कुछ कहना चाहता हू।

"यह जयद्रथ क्यों आया है? बेटा ! मेरे लिए तो तू भी पुत्र-समान है। मेरे पाप के छींटे तुझपर भी जा पड़े, अन्यथा सिंधु-राज जयद्रथ मेरी दु शाला को छोड़कर द्रौपदी पर क्यों दृष्टि डालता ! जयद्रथ ! तू शंकर का भक्त था। तेरा इतना तप था कि तू माँगता तो शकर से तुझे मोक्ष भी मिल जाता। परन्तु तूने छोटी-सी शक्ति मांगी और अर्जुन के हाथ से मृत्यु को प्राप्त हुआ। जयद्रथ ! मेरी ओर क्या देख रहा है ?

"कुन्ती ! क्षमा करना। मैं फिर दूसरी तरफ चला गया। तुम्हारे पुत्रों को वन में भेजकर भी मुझे शान्ति न मिली। मेरे पुत्र सदा इस प्रयत्न मे रहते थे कि वन में भी पांडव किस प्रकार

दु:खी हों और बारह वर्षों का अन्त होने पर भी किस प्रकार उनके वनवास का अन्त न हो। मै तो सदा ही उनके पीछे रहा करता था। बारह वर्ष देखते-देखते बीत गए और तेरहवाॅ भा खतम होने आया। पांडवों का कही भी पता नहीं था। तभी अचानक निरभ्र वज्रपात की तरह पाण्डव विराट मे चमक उठे और हम सब चौक पड़े। तेरह वर्षों के बाद भी पाडव कुशल-पूर्वक होंगे, इसकी मुझे तो कल्पना तक नहीं थी। पश्चात् जब अर्जुन ने विराट-राज्य की सीमा मे कौरव-सेना को कुचला और अनेकों के वस्त्र उतार लिये तब तो मैंने अपने पुत्रों को काल के मुंह मे समाते देखा। कुन्ती! सच तो यह है कि उस दिन से मैंने अपनी नींद गवा दी है और अब कब उसे फिर प्राप्त कर सकूंगा, यह नही कह सकता।

"गान्धारी! इसके बाद के दिन तेजी से बीतने लगे। सारे हस्तिनापुर के वातावरण मे चचलता और गर्मी आ गई। प्रति-दिन पाडवो से युद्ध करने की चर्चा छिड़ने लगी, प्रतिदिन दूत और प्रतिदूत आने-जाने लगे, प्रतिदिन विषभरे बाणों से भी अधिक दुखदाई सदेश विराट और हस्तिनापुर के बीच घूमने लगे, प्रतिदिन पुराने दबे हुए वैर का विष नई सज-धज से प्रकट होने लगा, और इन सबका साक्षी मैं धृतराष्ट्र, लोभ और विनाश-भय के बीच गोते खाने लगा। गांधारी! पितामह और द्रोण ने जब मेरे पुत्रों और पांडवों के युद्ध का चित्र मेरे सामने खींचा और पाडवों को सन्तुष्ट करने का मुझसे आग्रह किया तब मैं पिघल गया। अपने पुत्रों का विनाश मैंने निकट देखा और संधि करने के लिए तैयार हो गया, पर मैं था धृतराष्ट्र! मेरी आदत शुरू से ही ऐसी थी कि क्षणभर के लिए मैं दृढ़ हो जाता था, पर जैसे ही दुर्योधन आकर मुझे धमकाता था, वैसे ही मैं ढीला पड़ जाता था और उसके कहने पर आंखें बन्द करके चलता था।

बेटा दुर्योधन ! मैं तुझे रोक न सका। तुझे बुरा लगे ऐसा कुछ करने की शक्ति मुझमे नहीं थी। सम्भवत तेरी योजनाए मुझे मन मे भाती होंगी और मैं तेरा छिपा सगी हूगा, परन्तु बात केवल यही थी कि प्रकट होने का साहस मुझमें नहीं था।

"सजय ! वह देखो, श्रीकृष्ण के रथ की आवाज सुनाई दे रही है। वह दिन तो मुझसे कभी भी नहीं भूला जायगा, जब श्रीकृष्ण संधि-पत्र लेकर आये थे। उस दिन सारे हस्तिनापुर में हलचल मच गई थी। मेरे पुत्रों की बेचैनी का तो पार ही नहीं था। भीष्म-द्रोण सधि की आशा रखकर बैठे थे। श्रीकृष्ण आकर क्या करेंगे और हमारी क्या दशा होगी, इसी विचार मे मैं डूब गया था। शकुनी और दुर्योधन लगभग सारा दिन गुप्त विचार-विमर्श करते रहे। दुर्योधन बार-बार मेरे पास आकर एक यही बात कह जाता था कि पिताजी ! आप इस दुष्ट की बातों मे न फंस जाइएगा। गाधारी ! तुम्हे याद होगा, तुमने स्वय आकर उस दिन मुझे उलहना दिया था और दुर्योधन का त्याग करने का आग्रह किया था, परन्तु मुझसे यह न हो सका। मेरे मन की गहराई मे ऐसा विचार उठ रहा था कि कदाचित् दुर्योधन अपने प्रयत्न में सफल हो जायगा और पांडव नष्ट हो जायगे।

"सजय ! जब श्रीकृष्ण ने राज-सभा मे आकर पाडवों की स्थिति हमारे सामने रखा तब थोड़ी देर के लिए मुझे ऐसा लगा कि पाण्डवों के साथ युद्ध करने मे कोई सार नहीं है। परन्तु दुर्योधन को अपने निश्चय से हटाने की शक्ति मुझमे कहां थी ? मैंने उसे बहुत समझाया, पाण्डवों की शक्ति की बात कही, युद्ध के अनिष्ट उसके सामने उपस्थित किये, पर वह था दुर्योधन ! उसे मृत्यु का जरा भी भय नहीं था। हस्तिनापुर की राजगद्दी के लिए उसका हठ शूरवीर का हठ बन गया था। शत्रु के साथ सन्धि करके अपनी नाक कटाने की अपेक्षा मर जाने में उसे

वीरता मालूम हुई और मैं तो उसके शब्दों के आगे परास्त था। दुर्योधन की दुष्टता मे भी वीरता और तेजस्विता थी। मेरी दुष्टता तो बीमारों की तरह दुर्बल थी। गान्धारी ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी पवित्रता में जो तेज है, वैसा ही तेज दुर्योधन की दुष्टता में था और इसके विपरीत मैं बलहीन दुष्टता का दास था। दुर्योधन के जैसी सबल दुष्टता मुझमें होती तब तो मेरे पापों का कभी अन्त आ चुका होता और मैं ईश्वर की सृष्टि में कहीं-से-कहीं पहुच गया होता। परन्तु आज मैं यहां पड़ा-पडा तड़प रहा हू और मेरे अपने कर्म जो कि एक-एक करके मेरे सामने खडे हो रहे हैं, उन्हे कुन्ती के सामने उपस्थित करके सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूं।"

"कुन्ती ! श्रीकृष्ण आये और चले गये। उनके एक हाथ में सन्धि और दूसरे में युद्ध था। उन्होंने सन्धिवाला हाथ मेरे आगे किया, परन्तु मैं अन्धा उसे पकड न सका। श्रीकृष्ण का बडप्पन और उनकी समझदारी, मेरे पापी हृदय से टकराकर वापस चले गये। मेरे पुत्रों का मृत्यु-लेख लिख लिया गया। श्रीकृष्ण ! तुम्हारे वचन सच्चे सिद्ध हुए। अन्धा धृतराष्ट्र कुरु-कुल के आने वाले नाश को देख न सका। आज जब तुम सब अपने-अपने रास्ते पर लग चुके हो तब मै अकेला अपने ही हाथों खड़ी की हुई इस वीरान सृष्टि का द्रष्टा बनकर जी रहा हूं। श्रीकृष्ण ! मै तुम्हे भी पहचान न सका। तुम इस युग के महान् पुरुष हो, इसे मैं जान न सका। मैं तुम्हे पाण्डवों का सम्बन्धी और अर्जुन का मित्र ही समझता रहा। तुम्हारे कथन में पाण्डवों का, मेरे पुत्रों का, समग्र क्षत्रिय जनता का और सारे भारतवर्ष का कल्याण है, यह मुझे उस समय न दीख सका। मुझे उस समय यही प्रतीत होता था कि मेरे पुत्रों का स्वार्थ, अर्थात् पांडवों का अहित और पांडवों का स्वार्थ अर्थात् मेरे

पुत्रों का अहित। गान्धारी! अभी कल तक मैं ऐसा ही समझता था। तुम्हारे प्रताप से आज और ही कुछ समझ पाया हूँ। आज मुझे दिखाई दे रहा है कि व्यक्ति का हित, समाज का हित और समस्त मानव जाति का हित, ये सब एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। जब ये विरोधी जान पड़ते हैं तब या तो दृष्टि मे दोष होता है या हिताहित के विचार मे दोष होता है। श्रीकृष्ण ने कौरव-सभा मे सिंहनाद करके घोषणा की, परन्तु मै कान बन्द किये बैठा उसे कैसे सुनता? श्रीकृष्ण! आज तुम बहुत याद आ रहे हो!

"कुन्ती! मुझे गुप्तचरों ने बताया था कि श्रीकृष्ण तुमसे भी मिले थे। तुम्हारे हृदय मे तो उस समय होली सुलग रही होगी? तेरह वर्षों के अन्त मे सिंह-समान पुत्र वनवास काटकर बाहर आये और मेरे जैसा हितैषी ताया उन्हे राज्य का अर्ध-भाग देने से इन्कार कर दे तब एक क्षत्राणी के हृदय की क्या दशा हो सकती है, इसकी कल्पना मैं कर सकता हू। कुन्ती! मै अभी तक नहीं समझ सका कि मुझमें ऐसा कौन-सा लोभ उत्पन्न होगया था कि पांडवों को पांच ग्राम देने से भी हमने इनकार कर दिया था? मेरा वही दुर्योधन सारे हस्तिनापुर का राज्य छोड़कर आज पृथ्वी के एक कोने पर सोया हुआ है! जब श्रीकृष्ण ने पूछा था तब उसने कहा था—"सुई की नोक के बराबर भूमि भी मै पाडवों को नहीं दूंगा।" आज मैं विपत्ति का मारा शतयूप के इस आश्रम में आया हूं और मृत्यु को बार-बार आमन्त्रण दे रहा हू, पर उस दिन मुझे भी राज्य का अर्धभाग पांडवों को देने की सूझ न हुई। कुन्ती! यह लोभ क्या वस्तु है? मेरे पुत्र राज्य भोगते या पांडव, इसमें मुझे भेदभाव क्यों मालूम होता था? गांधारी! यह पहेली अभी तक हल नहीं हो रही है। कौरव जीतते तो मैं प्रसन्न होता पांडव जीतते, तो दुखी होता;

एक मेरे थे और दूसरे पराये थे, यह सब किसने समझाया था ?

पर नहीं, नहीं। सत्ता स्वय ही बुरी चीज है। एक बार सत्ता प्राप्त हुई कि उसका मद चढ़ने लगता है। मनुष्य को शक्ति मिलने के साथ ही उसे पचाने का बल नहीं मिलता, यही दुर्भाग्य है। द्रव्य-शक्ति का मद, राज्य-शक्ति का मद, तप-शक्ति का मद, विद्या-शक्ति का मद, शरीर-शक्ति का मद—ये सब चढने पर बडे-बडे लोग भी पागल हो जाते है। मुझे राज्य मिलते ही मेरे पुत्रों का मस्तिष्क फिर गया। राज्य प्राप्त करने के लिए शक्ति की आवश्यकता है, परन्तु उससे भी अधिक शक्ति चाहिए आवश्यकता पड़ने पर प्रसन्नता से राज्य त्याग देने के लिए। जो इस प्रकार राज्य प्राप्त कर सकता और इच्छानुसार गॅवा सकता है, वही राज्य का स्वामी बनने के योग्य है, अन्य तो राज्य के दास हैं। इस प्रकार मैं और मेरे पुत्र राज्य के स्वामी नहीं, दास बने रहे। पाण्डव राज्य को गॅवाना भी जानते थे और प्राप्त करना भी। इसलिए वे हस्तिनापुर के सच्चे स्वामी थे।

"कुन्ती! गांधारी! मेरी बात का रुख फिर दूसरी तरफ चला गया, परन्तु एक बात सच है। हस्तिनापुर के राज्य का मै केवल अभिभावक था। उस राज्य को प्राप्त करने मे मेरा जरा भी पसीना नहीं बहा था। मेरे हिस्से मे उस राज्य के भोग-विलास आये, उसके कष्ट नहीं। ऐसा ही मेरे पुत्रो के साथ भी हुआ। जन्म लेते ही वे राजकुमार बने और राजकुमारों के सुख भोगने लगे। ऐसी अवस्था मे बड़े अधिकारियों के उत्तराधिकारियों में जो निर्बलता, लोभ, ईर्ष्या, अभिमान, दंभ आदि अवगुण आ जाते है, वे मेरे पुत्रों मे भी आगए और उसके परिणाम भी उन्हे भोगने पड़े। मेरे पुत्रों ने पाण्डवो को कष्ट दिये और वनवास के लिए भेज दिया। वे कष्ट और वनवास पाण्डवों के लिए तेजस्विता का शिक्षालय बन गये और वहीं पाण्डवों को क्षत्रियत्व

की शुद्ध दीक्षा मिली। इसलिए वास्तव मे मेरे पुत्रों ने ही पाण्डवों को तेजस्वी बनने मे सहायता की। पर यह तो आज समझ मे आरहा है। उस समय तो पाण्डवों से वैर निकालने में मुझे भी गुप्त आनन्द मिलता था और ऐसा करने से ही हम कृतार्थ होंगे, ऐसा हमे परम विश्वास रहता था। आज जब जीवन के अंत पर आगया हूँ, मुझे ऐसा अनुभव हो पाया है कि वैर निकालने की इच्छा रखने वाले को अन्त मे हाथ मलते रह जाना पडता है। उस समय यह बात किसी ने कही होती तो भी मैं न मानता, क्योंकि हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर बैठा था।

"यह सब जाने दो। कुन्ती! श्रीकृष्ण वापस चले गये और युद्ध का शखनाद होगया।"

"बाद की बात तो तुम लोगों को भी विदित है। अठारह दिन युद्ध होता रहा और उन अठारहों दिनों का इतिहास सजय ने मुझे सुनाया। युद्ध के दिनो मे किसी-किसी समय मुझे विचार आता था कि कदाचित् भीष्म सारे पाण्डवों को मार डाले और मेरे पुत्रों को विजय प्राप्त हो जाय। कदाचित् द्रोण या कर्ण अर्जुन को मार डाले और फिर अन्य पाण्डव युद्ध छोड़कर भाग जाय। परन्तु मेरे मन मे निरतर कोई यही कहता रहता था कि जहा श्रीकृष्ण और अर्जुन है, वहीं विजय है। यह गाधारी यहीं है। कुन्ती! तुम्हे पता है? मेरा दुर्योधन सग्राम मे जाने से पहले इसका आशीर्वाद लेने गया था। परन्तु गाधारी इस प्रकार आशीर्वाद कैसे दे सकती थी? यह तो सत्य की प्रतिमा है। मैं इसका पति अवश्य हूँ; परन्तु इसकी पवित्रता से भय खाता हूँ। कहीं मैं इससे जल न जाऊँ। गाधारी ने दुर्योधन को आशीर्वाद नहीं दिया। केवल यही कहा कि जिस पक्ष में धर्म होगा, उसी पक्ष की विजय होगी। तभी मैंने दुर्योधन की विजय की आशा छोड़

दी थी। गाधारी के वचन मे इतनी शक्ति है।

"और हुआ भी वही। सजय! अठारह दिनों मे मुझे बीच-बीच मे आशा के स्वप्न आ जाते थे। मैंने जब यह सुना कि भीष्म पितामह ने पाण्डवों का सहार करने का दुर्योधन को वचन दिया है तब क्षण भर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि दुर्योधन विजयी होगा, भगवान् द्रोणाचार्य ने जब चक्रव्यूह मे सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु को भूमिशायी बना दिया और अर्जुन ने जयद्रथ को मारने या स्वयं मरने की प्रतिज्ञा की तब मुझे ऐसा लगने लगा कि अब अर्जुन जरूर जल मरेगा और मेरे पुत्रों की विजय होगी। कुन्ती! जब कर्ण ने युधिष्ठिर महाराज को घायल किया और पाण्डवो की छावनी मे अर्जुन युधिष्ठिर को वध करने के लिए तैयार हुआ तब यह सुनकर मेरा हृदय गद्-गद् हो गया और मुझे अपने पुत्रों के लिए नई आशा उत्पन्न हुई। सजय! गुरुपुत्र अश्वत्थामा ने जब पाण्डवों की छावनी में रात्रि को प्रवेश करके महा सहार किया तब मुझे प्रतीत हुआ कि सारे पाण्डव हताश होकर प्राण त्याग कर देंगे और कदाचित् दुर्योधन मृत्यु-शय्या पर भी शत्रु के विनाश का सतोष लेकर जायगा। परन्तु यह सारी आशा धुएँ के बादल की तरह सिद्ध हुई। मैंने तो यह आशा की थी कि दुर्योधन कुरुक्षेत्र से लौट आकर मेरे पैरों पर गिरेगा और गांधारी की गोद मे सिर रखेगा, परन्तु उसने पृथ्वी माता की गोद में सदा के लिए सिर रख लिया और युद्ध के अत मे श्रीकृष्ण मेरे पास आये।

"गाधारी! श्रीकृष्ण ने आकर मेरा हृदय तोड डाला। झूठी आशा पर जो रहा धृतराष्ट्र आशा-हीन हो गया और हृदय वज्र के समान बन गया। कुन्ती! मानोगी नहीं, परन्तु उस दिन दुर्योधन जैसे पुत्र को खोकर भी मैं रो न सका। मेरी आँखों में

आँसू की एक बूँद भी उस दिन न आई। मैं मूक बन गया। संजय वैद्य को बुलाकर लाये और वैद्य ने मुझे रुलाने के लिए कई उपचार किये, परन्तु रुलाई कैसे आती ? पत्थर के हृदय मे से पानी की एक बूँद भी निकले, तभी तो !

"और फिर कुन्ती ! एक सौ पुत्रों को रण मे सुला देने पर भी मुझे अपने पापों के प्रति तिरस्कार उत्पन्न न हुआ। गाधारी को श्रीकृष्ण की सुनाई खबरों से दुःख तो हुआ, परन्तु यह तो योगमाया है। इसका सारा जीवन तपे हुए सोने की तरह है, जिसमे किसी तरह की मिलावट या अशुद्धि नहीं होती। इसीलिए दुर्योधन का समाचार सुन कर भी इसका धैर्य नहीं छूटा। इसे तो ऐसे ही परिणाम की आशा थी।

"कुन्ती ! लोभी धृतराष्ट्र को तुमने नहीं पहचाना। मेरे सारे स्वप्न भग हो गए, मेरी आशाएँ धूल मे मिल गईं, मेरे मनोरथ मन मे ही रह गए। फिर भी जब पाण्डव हस्तिनापुर में आये और युधिष्ठिर मेरे चरण-स्पर्श करने आया तब मैंने उसे और उसके भाइयों को शाप ही दिया। उनका सर्वनाश हो जाय, ऐसी मैंने कामना की। परन्तु यह तो धृतराष्ट्र का शाप था ! मेरे शाप में शक्ति कहाँ से होती ? मेरा शाप गांधारी के शाप की तरह थोड़े ही था, जिसके आगे श्रीकृष्ण को भी सिर झुकाना पड़ता। मेरा शाप तो मेरे ही साथ आकर टकराता था। कुन्ती ! बन्दर बूढ़ा होने पर भी उछल-कूद नहीं भूलता, ऐसा कहा जाता है। मेरे पुत्र जब सदा के लिए सो गए तब मेरा ससार सूना होगया, जीवन मे रस नहीं रहा, भाग्य में जो थोडे दिन बदे थे, वे बिताने रह गए। परन्तु मैं धृतराष्ट्र था, दुर्योधन चला गया, पर मेरी दुष्टता थोडे ही ले गया ! मेरे पुत्र चले गये और यह मैं जानता था कि अब उनमे से एक भी पुत्र हस्तिनापुर का राज्य भोगने के लिए जीवित नहीं होगा, फिर भी मैंने जब भीम को

दिखावटी स्नेह से बाहु-पाश में लिया तब उसे दबा कर मार डालने का प्रयत्न किया। पर सफलता न मिली। भीम के स्थान पर भीम की लोहे की प्रतिमा मेरे हाथ लगी और मैं मूर्ख, मनुष्य की चमडी के स्पर्श और लोहे के स्पर्श के भेद को परख न सका। यह मेरा अन्तिम दाँव था।

"इसके पश्चात् कुन्ती! तुम्हे पता ही है। जीवन भर किये हुए ये सारे कर्म—जीवन भर पुत्र के समान वात्सल्य से पोसे हुए ये विचार मेरे सम्मुख आने लगे और मुझे काटने लगे। उस समय मैं क्या जानता था कि आगे चल कर ये मुझे कुतर-कुतर कर खायेंगे! हस्तिनापुर का सारा महल इस भूत-माला से घिर गया और मुझसे इसका उत्तर मांगने लगा। उसके वे महल, उसके वे कमरे, उसके वे शीशे और पलंग, उसके वे सिंहासन, उसके वे सारे सुख-साधन, मुझे खाने को दौडने लगे और जिन महलो मे इतना जीवन व्यतीत किया था, उनमे एक रात भी एक युग के समान लम्बी मालूम होने लगी। कुन्ती! पाण्डवों ने मेरी सेवा करने मे कोई कमी न रखी, दुर्योधन ने मुझे जो सुख दिया, उसकी अपेक्षा अधिक सुख मुझे मिले, इसके लिए युधिष्ठिर की चिन्ता और चेष्टा मैंने स्पष्ट देखी, मेरे सुख-साधन बढ गए, परन्तु मुझे ये सब अधिक असह्य हो गए, इसीलिए मैंने वनवास ले लिया।

"कुन्ती! जब मैं चला था तब मेरे मन मे था कि हस्तिनापुर छोड़ कर यह सब भूल जाऊँगा और तपश्चर्या मे मन को लगाऊँगा, परन्तु यह मेरी भूल थी। जीवन भर पाल-पोसकर बड़े किये हुए मेरे ये बच्चे मुझे इस प्रकार कैसे छोड़ देते? मेरे कृत्य मेरे मस्तिष्क मे घूमते रहते है और विचित्र प्रकार की उलझन में मुझे डाले रहते हैं।

"कुन्ती! आ—ह! अब हृदय कुछ हलका हुआ। अब यह

धृतराष्ट्र असली रूप मे तुम्हारे सामने खडा है। यदि मैं तुमसे यह सब कहे बिना मर गया होता तो जब तुम लोग मुझे जलाते तब सारा शरीर भस्म होने पर भी यह नन्हा-सा हृदय किसी तरह भस्म न होता। आज अब मै मरूँगा तो मुझे इस बात का सन्तोष होगा कि अन्त मे मैने कुन्ती के आगे हृदय खोल कर बातें कीं।"

कुन्ती धीरज के साथ बोली—"आप बहुत देर से बोल रहे हैं, इस कारण थक गए हैं। अब क्षण भर शय्या पर सो जाइये और कुछ कहना हो तो कल प्रातःकाल कहियेगा।"

"नहीं, नहीं, मेरी बातों का इस प्रकार अत नहीं हो सकता। अभी तो अन्दर से ऐसी-ऐसी बाते उठ रही है, जिनको मैं जानता तक नहीं। फिर तुम्हे क्या कहूँ ? बस, अब बस हो गया। तुम तीनों सुख से सो जाओ।"

संजय बोला—"महाराज ! पहले आप सो जाइए, फिर हम जाकर सो जायगे।"

सजय के कहने पर धृतराष्ट्र ने शय्या पर लेटकर करवट बदल ली।

एकाएक आश्रम मे चिल्लाहट सुनाई दी—"भागो – भागो, चारों ओर दावानल लग गया है। भागो भागो !"

चिल्लाहट सुनकर सजय चौक पडा, "देवि ! दावानल लगने की पुकार सुनाई दे रही है। अब हम क्या करेंगे ?"

गांधारी के उत्तर देने से पहले ही धृतराष्ट्र करवट बदलते हुए बोले, "देवि से क्या पूछ रहे हो ? पूछो इस धृतराष्ट्र से। पगले संजय ! यह दावानल तो ईश्वर का भेजा हुआ मालूम हो रहा है। कुन्ती ! मेरे हर्ष का पार नहीं है। परमात्मा ने मुझ पर दया की ! अग्निदेव ! आओ, दौड़ कर आ जाओ ! ईश्वर तुम्हारे पंखों में पवन वेग भर दे। गांधारी ! तुम और कुन्ती

संजय के साथ चली जाओ। मैं तो प्रभु की कृपा का स्वागत करके कृतार्थ हो रहा हूँ। संजय! जल्दी करो।"

"महाराज!" गांधारी ने कहा—"आपने आयु साथ बीतने पर भी गाधार-पुत्री को नहीं परख पाया! मैं तो वही हू,जहाँ महाराज हैं। जीवन मे आपके साथ बँधी हुई हूँ और मृत्यु मे भी अपने ही साथ समझिये। गाधार की लड़कियों को जीना भी आता है और मरना भी।"

"महाराज!" कुन्ती बोली, "मुझे संजय के साथ जाना होता, या दूसरा स्थान खोजना होता तो मै अपने पुत्रों को छोड़ कर आपके साथ ही क्यों आती? मैं वृष्णि-कुल की कन्या हूँ, मेरे भाई श्रीकृष्ण सारे ससार का संहार कराके वृक्ष की छाया मे एक भील के बाण से मर गए। मैं पाण्डु की वधू हूँ। अपने युधिष्ठिर को राज-गद्दी पर छोड कर आई हूँ। अतएव मुझे कोई कामना नहीं रही। आज मृत्यु स्वय मिलने आरही है और महाराज तथा गांधारी उसके स्वागत के लिए खड़े है, फिर मै पीछे कैसे हटूँ? जगत की सारी धूप-छाह देखली है, अब किसी तरह की भूख नहीं रही। जिस प्रकार आप के साथ हस्तिनापुर छोड़ा है, उसी प्रकार आप के साथ संसार छोड़ कर अपने को भाग्यशालिनी समझूँगी। सजय! तुम सुख से जाओ।"

इस प्रकार बाते करते-करते ही गरम पवन वेग से चलने लगा और दावानल की लपटों की आवाज सुनाई देने लगी। धृतराष्ट्र बोले, "सजय! जल्दी करो। तुम चले जाओ। हस्तिनापुर मे जाकर महाराज युधिष्ठिर से कहना कि 'पापी धृतराष्ट्र पर अन्त में प्रभु ने दया कर ही दी।' जाओ, विलम्ब न करो।"

"महाराज! यह अग्नि आ पहुँची!"

"अग्निदेव! पधारिये, पधारिये। आज मेरे अहोभाग्य है। कुन्ती! गांधारी! अग्निदेव से प्रार्थना करो कि मुझे छूकर वे

ठंढे न हो जाय। अग्निदेव ! मेरे जैसे पापी को जलाते हुए आप सकुचाइयेगा नहीं। गगा और आप ससार को पवित्र करनेवाले है। गगा से यह हृदय न धुल सका, अब आप भी मुझे छोड़ देंगे तो मै कहां जाऊगा ? गांधारी ! कुन्ती !"

"महाराज ! मुझे अग्नि लग गई है। गान्धारी का आपको अन्तिम प्रणाम ! कुन्ती—"

"कुन्ती ! कुन्ती !"

"महाराज ! मैं भी जल उठी हूं। महाराज ! आपको कुन्ती का अतिम प्रणाम !"

"दोनों चली गईं। गान्धारी से तो अग्निदेव ! आप स्वय भी पवित्र हुए होंगे, परन्तु मै तो आपको तब सच्चा जानूंगा जब आप इस धृतराष्ट्र को पकड़ेगे। आगये, आगये। धीरे-धीरे क्यों आ रहे हैं ? मुझे जलाने मे तो देव ! आपकी पूरी परीक्षा होनी है। आगये, आगये ! स्वागत !—बेटा दुर्योधन ! तू खड़ा है ? मैं आया यह आ पहुचा !"

× × ×

गांधारी, कुन्ती और धृतराष्ट्र के शरीर दावानल मे जलकर भस्म हो गए।

श्रीकृष्ण

: १ :

पाण्डवों के सलाहकार

पांडवो के द्रौपदी से विवाह करने के बाद धृतराष्ट्र ने उन्हे फिर से हस्तिनापुर मे बुला लिया और राज्य का आधा भाग उन्हे दे दिया। पांडवों ने इन्द्रप्रस्थ मे अपना राज्य स्थापित किया।

पाडव वीर-पुत्र थे, हिमालय के अरण्यों मे उनका जन्म हुआ था, तपोवन के वातावरण मे उन्हे जीवन के आदि संस्कार प्राप्त हुए थे, कुंती जैसी क्षत्राणी का दूध पीकर वे बड़े हुए थे, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य जैसे समर्थ गुरुओं ने उन्हे विद्या प्रदान की थी।

फिर भी आजतक वे बिना राजपाट के भटकते रहे थे। दुर्योधन और उसकी ईर्ष्या पांडवों के पीछे पड़ी हुई थी। हस्तिनापुर की राजगद्दी को सुशोभित करने योग्य पाण्डव गुप्तवेश मे मारे-मारे फिर रहे थे और जैसे-तैसे जीवन बिता रहे थे। अपने क्षात्रतेज को सिंहासन पर से दीप्त करने का उन्हे अवसर ही नहीं मिला था।

आज प्रथम बार उन्हे वह अवसर मिला। इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर महाराज युधिष्ठिर राज्य की बागडोर किस प्रकार थामते हैं, इस ओर केवल प्रजा की ही नहीं, अपितु सारे

भारतवर्ष के राजा-महाराजाओं की दृष्टि लगी थी। दुर्योधन की अभिलाषा थी कि पांडव राज्यकर्त्ता के रूप मे असफल सिद्ध हों और प्रजा का हृदय उसकी ही ओर बना रहे। पाण्डवों की यह अभिलाषा थी कि महाराज युधिष्ठिर की धर्म-मर्यादा प्रजा के हृदय-तल तक पहुच जाय और रक्त के मद तथा राज्य के मद में चूर दुर्योधन का गर्व गलित हो।

ऐसी परिस्थिति में इन्द्रप्रस्थ की राजसभा सबका ध्यान खींचे, यह स्वाभाविक था। इस राजसभा की रचना मय नाम के एक दानव ने की थी। युधिष्ठिर का यह सभा-भवन, इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि सबके सभाभवनों से श्रेष्ठ था। स्थापत्य और कला की जितनी भी कुशलता दानवों मे थी, वह सारी मय दानव ने इस सभा-निर्माण मे खर्च कर दी थी। देश-विदेश के अनेक लोग इसे देखने के लिए आते थे और आश्चर्य-चकित होकर लौटते थे।

युधिष्ठिर की यह राजसभा केवल ईंट-चूने की रचना नहीं थी, बल्कि वह देश-विदेश के महापुरुषों का सगम-स्थान था। युधिष्ठिर की सभा में व्यास और जैमिनि जैसे द्रष्टा आते और अपनी आर्ष दृष्टि का प्रकाश डालते थे, नारद मुनि जैसे विश्व परिव्राजक आते और विश्व के महा प्रश्न उपस्थित करते थे, द्रुपद और विराट जैसे महाराजा आते और भारतवर्ष के नरेन्द्र-मंडल के मंतव्य सामने रखते थे, श्रीकृष्ण जैसे युगपुरुष आते और मानव-जीवन के अनेक गूढ़ प्रश्नों पर युगदृष्टि का प्रकाश डालते थे।

इसके सिवा भीम, अर्जुन आदि सदा दिग्विजय करने के लिए जब निकलते थे तब चारों दिशाओं मे से नये परिचय, नये विचार, नई दृष्टि, नई बातें और बहुत कुछ लेकर आते और सभा के जल को गंदा न होने देकर निर्मल रखते थे। इन्द्रप्रस्थ

की दीवालों पर नित्यप्रति नये विचार टक्कर लगाते और पुरानी धूल को धोकर लौट जाते थे। पांडवों की बुद्धि नित्य नये परिचयों से सुसस्कृत और तीक्ष्ण हो रही थी। अपने समान पद के तौरे अपने से उच्च लोगों से नित्य मिलते रहने से महाराज युधिष्ठिर को राज्य-मद चढ़ता ही नहीं था और चढ़ता भी तो तुरन्त धुल जाता था।

× × ×

एक बार नारदजी घूमते-फिरते इन्द्रप्रस्थ मे आ पहुचे। उनके हाथ मे समग्र विश्व की शाति साधने की शक्ति रखने वाली वीणा थी, उनके मुख मे समग्र विश्व की शान्ति का मन्त्रोच्चारण था। नारदजी के आने का समाचार सुनकर युधिष्ठिर एकदम उठ खडे हुए और अर्घ्य लेकर सामने उपस्थित हुए। उन्होंने नारद मुनि का पूजन किया, उनके चरणों में शीश नवाया और फिर उन्हे एक उच्च आसन पर बिठाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

"पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर! सकुशल हो न?" नारदजी ने पूछा।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "महामुनि! जहा आपकी कृपा हो, वहा कुशल तो होनी ही हुई। मेरे अहोभाग्य कि आज यहा आपके चरण पडे। कहिए, आज्ञा?"

"राजन्!" नारद बोले, "आज्ञा तो कुछ भी नहीं है, परन्तु तुम जैसे राजा को आज्ञा न दी जाय तो फिर दी भी किसे जाय?"

युधिष्ठिर ने कहा—"महाराज! आज्ञा कीजिये। आपकी आज्ञा तो मेरे जैसों के लिए जीवन का एक आनन्द है।"

"राजन्!" नारद बोले, "आज यदि सारे भारतवर्ष में कोई बात समाज को पीडित कर रही है तो वह राजा-महा-

राजाओं का मद है। अपने ही एक भाई दुर्योधन को देखो। तुम्हारे भीम को विष खिलाते उसका हृदय जरा भी न कांपा, तुम्हे जीवित जला देने का विचार करते उसे जरा भी लज्जा न आई। वह यही समझता है कि धृतराष्ट्र का रुधिर ही रुधिर है, पाडु का रुधिर तो सफेद-पीला पानी है। आज तुम्हे राज्य का अर्ध भाग मिला है, इससे खुश न होना। इस समय वह हस्तिनापुर मे बैठे-बैठे इन्द्रप्रस्थ के तुम्हारे शयनागार मे निकलने वाली सुरगे खुदवा रहा होगा। फिर भी दुर्योधन अच्छा है। उसमे ईर्ष्या है, पर मद कम है। इसकी अपेक्षा बहुत अधिक मदमत्त राजा पडे हुए है और पृथ्वी को पीडित कर रहे है।"

युधिष्ठिर ने नम्र भाव से पूछा, "महाराज! मै इस विषय मे कुछ कर सकता हू?"

नारदजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "अवश्य! तुम इन सब राजाओं का दर्प चूर्ण कर सकते हो। तुम धर्म पुत्र हो। सारे देश के ऋषि-मुनि तुमसे धर्म-राज्य की स्थापना की आशा कर रहे है। ये सारे मदमत्त राजागण सत्ता के मद मे अधे बने हुए हैं और प्रजा को पीड़ित करने मे कोई कमी नहीं रख रहे हैं। लोगो से बड़े-बड़े कर वसूल करके, मनमाने ढग से उड़ाते हैं; छोटे-छोटे राजाओं को अपने सेना-बल से डराकर, उनके स्वामी बन जाते हैं। इन समस्त राजाओं को तुम अपना प्रताप दिखाओ। एक राजसूय यज्ञ करके तुम सार्वभौम बनो और धर्म-राज्य कैसा हो सकता है, इसका आदर्श भारतवर्ष में फिर से उपस्थित करो। युधिष्ठिर! महाराज पांडु स्वर्ग में बैठे-बैठे तुम्हारे इस कार्य के लिए तुम्हे आशीर्वाद देंगे।"

युधिष्ठिर बोले, "आप महात्मा हैं। अभी तो कल ही मैं राजगद्दी पर बैठा हूँ। मुझे ऐसा नहीं प्रतीत होता कि इतने ही समय में मैं राजसूय यज्ञ का अधिकारी बन गया हूं। महाराज!

मैं तो आपसे यही मांगता हूं कि यह पद मुझे अंधा न बनाए, इस सिंहासन पर बैठकर मैं उड़ने वाला न बन जाऊं, अपनी प्रजा का तिरस्कार करने वाला न बन जाऊं, इस सिंहासन पर बैठे रहने पर भी मुझे अपनी स्तुति चुभे, अपनी निंदा मैं सुन सकूं, और उससे सार निकाल सकूं, किसी पर अत्याचार न करूं। गरीबों की आवाज सुनने के लिए मेरे हृदय के द्वार सदा खुले रहें, मेरा खजाना प्रजा के हित के लिए सदा खुला रहे, मैं प्रजा के सुख में सुखी और दुख मे दुखी रहूं। मै अपने आपको प्रजा का संरक्षक मानूं। इतना सब यदि मैं आपके आशीर्वाद से कर सका तो मैं यही समझूंगा कि मैंने राजसूय यज्ञ कर लिया।"

नारदजी ने विचार करते हुए कहा—"युधिष्ठिर! तुम्हारी बात सच है। तुम इस प्रकार राज्य करोगे तभी माना जायगा कि तुमने धर्मराज्य की स्थापना की है। परन्तु इतना करके ही तुम बैठ रहो, यह ठीक नहीं है। यह सब तो तुम कर ही रहे हो और सदा करते रहो, परन्तु यदि तुम्हारे आस-पास सारे मदोन्मत्त राजा आनन्द मनाते रहेंगे तो तुम अपने धर्म-राज्य को संकट में समझना। तुम राजसूय यज्ञ करके सार्वभौम पद प्राप्त करो। तुम धर्मराज्य के सुन्दर स्वप्न देखते हो, इसीसे इस यज्ञ के लिए तुम्हारा अधिकार सिद्ध होता है। तुम्हारी शक्ति केवल इन्द्रप्रस्थ के चारों कोनों मे सीमित रहे, यह उचित नहीं है। तुम जैसे अधिकारी पुरुषों को तो अन्य अनेक राजाओं को अपने साथ लेकर सारे युग को बदल देना चाहिए। बोलो, ठीक है न?"

युधिष्ठिर बोले—"आपका आग्रह है तो मैं निश्चिन्त होकर विचार करूंगा। अपने भाइयों की सलाह लूंगा और अपने कुशल सम्मतिदाता श्रीकृष्ण से पूछकर जो उचित जान पड़ेगा, अवश्य करूंगा।"

नारदजी उठते-उठते बोले—"जो उचित जान पड़े, वही करो। मैं तो तुम्हें राजसूय यज्ञ का अधिकारी समझता हूं। हम ऋषि-मुनियों को बहुत समय से इसके चिह्न दिखाई दे रहे हैं कि तुम्हारे हाथ से ही इन सब मदोन्मत्त राजाओं का गर्व गलित होनेवाला है। मैं विश्व के कल्याण के लिए तुम्हारे सामने यह बात रख रहा हू। मुझे विश्वास है कि हमारे युग की गति को ठीक-ठीक पहचानने वाले श्रीकृष्ण भी मेरे ही मत की पुष्टि करेंगे। तुम जैसे पांडु के एक पुत्र को राजगद्दी मिली है, इसकी हमारे लिए विशेष कीमत नहीं है। हम चाहते हैं मदोन्मत्त राजाओं के भार से पीड़ित पृथ्वी को तुम्हारे द्वारा बचाना। आज जहां लोक-जीवन वीरान पड़ा है, वहा तुम हरी-भरी फुलवाड़ी खड़ी कर दो, यही तुम्हारी और इन्द्रप्रस्थ की राजगद्दी का मूल्य है। वैसे तो करोड़ों राजा हुए हैं और उनके कलेवर पृथ्वी माता के गर्भ में समा गए हैं। समय की पुस्तिका में उनका नाम-निशान भी नहीं है। अच्छा राजन्! अब बिदा लूंगा।"

"महाराज!" युधिष्ठिर ने कहा, "इतनी जल्दी? थोड़ा विश्राम तो कर लीजिए।"

नारद हंसते हुए बोले, "मुझे ही नहीं, अपितु सारे देश को विश्राम देने का तुम्हें अधिकार है, इसीलिए तो मैंने आकर तुम्हें कहा है। मुझे तो यह वीणा विश्राम दे देती है और आवश्यकता पड़ने पर मानवों से निर्दोष विनोद करके हंस लेता हू, जिससे थकावट उतर जाती है।"

इतना कहकर नारद जी चल दिये।

× × ×

"महाराज श्रीकृष्ण!" युधिष्ठिर बोले—"मेरा और मेरे भाइयों का यह निश्चय है कि आपकी सम्मति के बिना एक पग भी आगे न बढ़ाना। नारदजी का आग्रह मैंने आपको सुना

दिया। मेरे भाई, मेरी प्रजा और यह द्रौपदी भी मुझसे आग्रह कर रही है।"

"द्रौपदी भी सहमत है?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

सहदेव बोले—"द्रौपदी तो अवभृथ स्नान* करने के लिए आतुर हो रही है।"

युधिष्ठिर ने कहा—"यह सच है कि ये सब मुझसे आग्रह कर रहे हैं, परन्तु श्रीकृष्ण! यदि मैं तराजू के एक पलड़े पर इन सबका आग्रह और दूसरे पर आपके एक सामान्य शब्द को रखूं तो मेरे लिए तो आपके शब्द का ही भार अधिक होगा। द्रुपद की सभा मे जब हमे कोई भी नहीं जानता था तब आपने हमें अपनाया और बड़े-बड़े राजाओं की आंखें थका देने वाली वस्तुए आपने हमे भात मे दीं। अभी कल की बात है। खाण्डव वन में नागों का सहार करने मे अर्जुन के पीछे आपकी ही शक्ति थी। श्रीकृष्ण! सत्य कहता हू, आप केवल हमारे मामा के पुत्र नहीं हैं, आपने हमारे जीवन मे वह स्थान ले लिया है, जो कभी मिट नहीं सकता। मेरा और मेरे भाइयों का यदि उत्कर्ष होगा तो आपके ही द्वारा होगा। इसलिए श्रीकृष्ण! इस राजसूय के विषय मे मैं आपकी स्पष्ट सम्मति के अनुसार ही चलना चाहता हू।"

श्रीकृष्ण बोले—"यदि तुम सब की इच्छा है, नारद का आग्रह है और स्वय महाराज युधिष्ठिर को कोई दुविधा नहीं है तो राजसूय यज्ञ कर लेना चाहिए।"

युधिष्ठिर आगे बढ़कर कहने लगे—"महाराज! यह बात नहीं है। हमारी इच्छा मन में रह सकती है, नारदजी का आग्रह एक ओर रखा जा सकता है। आज की परिस्थिति में राजसूय

*यज्ञ के अन्त में राजा और रानी के अनेक पवित्र जलों से करने वाला स्नान।

यज्ञ करना उचित जान पड़े तो आप 'हा' कह दीजिए। आप निश्चय जानिये 'हां' या 'ना' का निर्णय आप ही पर अवलंबित है।"

श्रीकृष्ण शान्ति-पूर्वक बोले— "तब मुझे तो तुम्हारे इस यज्ञ मे एक बड़ी बाधा दिखाई दे रही है।"

भीम ने आतुर होकर पूछा—"कौन-सी ?"

श्रीकृष्ण बोले—"तुम जरासंध को जानते हो ?"

भीम ने उपेक्षा से पूछा—"कौन, गिरिव्रज का जरासंध ?"

सहदेव बोला—"पाचाली के स्वयंवर मे जिसने घुटने टेके थे, वह ?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"हां, वही। परन्तु भीमसेन! वह ऐसा व्यक्ति नहीं है कि तुम और सहदेव उसे हंसी में उड़ा दो। आज है तो वह अस्सी बरस का बुड्ढा, परन्तु याद रखना कि हमारे-तुम्हारे जैसों की अच्छी तरह ख़बर ले सकता है!"

युधिष्ठिर चिंतातुर होकर कहने लगे—"जरासंध के विषय मे आप क्या कहना चाहते है ?"

"जबतक यह जरासंध है तबतक तुम्हारा राजसूय यज्ञ शान्ति-पूर्वक नही हो सकेगा।" श्रीकृष्ण बोले।

"इतना दुष्ट है जरासंध ?" नकुल ने कहा।

"दुष्ट तो है, साथ ही बलवान् भी।" श्रीकृष्ण बोले—उसके किये हुए मेरे घाव अभी तक भरे नहीं है। हम यादवों से मथुरा छुड़वाने वाला यही जरासंध है। आज इस ओर के राजाओं में जरासंध को सार्वभौम पद प्राप्त है। तुम्हारे राजसूय यज्ञ करने से उसका अचल सिंहासन डोल उठेगा। जब तक वह जीवित है तब तक तुम्हारा राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता।"

अर्जुन बोला—"हमारे राजाओं ने उसका सार्वभौम पद स्वीकार किया है ?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"भाई! तुम क्यों भूलते हो? सार्वभौम पद क्या सबके स्वीकार करने पर ही मनुष्य धारण करता है? सार्वभौम होने वाला क्या सबके हृदय खोलकर देखने बैठता है? वह अपनी तलवार के बल पर ही अपना पद स्थापित करता है। राजागण मन मे भले ही बड़बड़ाते रहे, उनकी गर्दने दबो देना ही सार्वभौम पद है। फिर किसी राजा ने जरा भी गर्दन को हिलाया-डुलाया तो उसे दबोच देना ही पर्याप्त है।"

"यह तो बड़ा अत्याचार कहा जायगा," युधिष्ठिर बोले।

"यह तो स्पष्ट है" श्रीकृष्ण ने कहा—"इस प्रकार का सार्वभौम पद अत्याचार पर ही स्थापित होता है, परतु इस पर लोक-कल्याण, विश्व-बन्धुत्व, प्रजा-सुख आदि की अनेक परतें चढाई जाती है। इसलिए वह नग्न अत्याचार दीख नहीं पड़ता और सब उज्ज्वल ही नजर आता है। छियासी राजाओं को वह बन्दी बनाए और कोई चू तक न करे, यह अत्याचार नहीं तो क्या है?"

"छियासी राजाओं को बन्दी?"

"हा! जरासंध तो एक पुरुष-मेध यज्ञ करने का विचार कर रहा है। इस यज्ञ की आहुतियों के रूप मे वह राजाओं का होम करेगा। छियासी राजा इकट्ठे हो गए है। चौदह और होते ही वह यज्ञ आरभ करेगा" श्रीकृष्ण ने कहा—

"महाराज! क्या कह रहे है?" अर्जुन बोल उठा।

श्रीकृष्ण ने शान्ति-पूर्वक कहा—"मै सच कह रहा हू।"

अर्जुन बोला—"इस युग मे पुरुष-मेध यज्ञ! इतना सुसस्कृत हो जाने पर भी मनुष्य मनुष्य का होम करते हुए हिचकिचाता नहीं?"

श्रीकृष्ण ने हॅसकर कहा—"भाई अर्जुन! तुमने अभी

ससार को अच्छी तरह नहीं देखा। मनुष्य की पशुता आज भी मिटी नहीं है, तिस पर ऐसे सार्वभौम राजा तो महा-पशु हैं। पशु-बल पर ही उनका सार्वभौम-पद निर्भर है। उनकी सुशोभित राजधानियां, पृथ्वी को कंपाने वाली सेनाए, बड़े-बड़े लोगों को चकित कर देने वाले उनके ठाट-बाट, निरपराध भी देखकर दब जाय, ऐसे प्रभावशाली न्यायासन, हृदय मे घुसकर बात का पता लगाने वाले गुप्तचर, यह सब उनके पशु-बल के स्तभ हैं। साधारण राजा तो यह सब देखकर ही जरासंध के पैरों में लोटने लगते हैं।"

अर्जुन बीच मे बोल उठा—"फिर भी कोई क्षत्रिय-पुत्र आवेश में नहीं आता ?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"कोई माई का लाल ही आवेश मे आ सकता है। तुम सब माई के लाल हो। तुम इतने बलवान् हो कि यदि चाहो तो भारतवर्ष को ऐसे जरासन्धों के त्रास से छुडा सकते हो। आज हमारी मातृ-भूमि ऐसे ही राजाओं के अत्याचारों से त्राहि त्राहि कर रही है। अर्जुन ! तुम चाहो तो जरासंध को मार सकते हो। जब तक जरासध जीवित है तबतक युधिष्ठिर की सामर्थ्य नहीं कि वे राजसूय यज्ञ कर सके।"

भीम तुरन्त बोल उठा—"तो अर्जुन ! चलो, हम उसे समाप्त कर आये। हिडिम्ब और बक जैसों को ठिकाने लगा चुके तो इस जरासंध की क्या बिसात ?"

अर्जुन ने कहा—"भीम ! ऐसा न समझो। जिस जरासंध के काल-यवन, शिशुपाल और रुक्मी जैसे साथी है, जिसने यादवों से मथुरा खाली करा ली, जिसने इतने अधिक राजाओं को बन्दी बना लिया और उनके मुख बन्द कर दिये, उस जरासंध को तुम ऐसा-वैसा न समझो।"

"अर्जुन ठीक कहते हैं," श्रीकृष्ण ने कहा—"जरासन्ध के शरीर मे कोई विचित्र चेतना है। तुम उसके दो टुकडे कर दो

तब भी फिर से जुड़ जाय, ऐसा उसका शरीर है। आज अब उसका पाप का घडा भर गया है, इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह मर जायगा। इस प्रकार के अत्याचारी राजा जब बहुत बडी विजय प्राप्त करते हैं तब उस विजय मे ही उनकी मृत्यु अकित हो जाती है। जरासंध आज अपनी प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुच गया है, इसीलिए अब उसे मरना ही चाहिए। तुम उसे मारोगे तो भारतवर्ष की समस्त प्रजा को शान्ति मिलेगी।"

भीमसेन सीना तानकर बोला—"अर्जुन! चलो, हम चल पड़े। इन्द्रप्रस्थ मे सिंहासन स्थापित करके यदि राजसूय यज्ञ न किया तो माता कुन्ती की गोद लजायगी। बोलो, क्या विचार है?"

अर्जुन ने गला साफ करते हुए कहा, "भीमसेन! जो तुम्हारा विचार, सो मेरा। श्रीकृष्ण को भी अपने साथ लेंगे। इन्होंने भी ऐसे कितनों को यम-सदन पहुचाया है। इनका मामा कंस, दानव केशी, मल्ल चाणूर, ये सब जरासध की भिन्न-भिन्न आवृत्तियां ही समझनी चाहिए। ऐसे दुष्टों के अत्याचारों से भारतवर्ष को छुडाना ही कृष्ण के जीवन का उद्देश्य है। श्रीकृष्ण! आप हमारे साथ आइए।"

श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले—"मेरी क्या आवश्यकता है? तुम दोनों ही पर्याप्त हो।"

अर्जुन ने विनती करते हुए कहा—"आपकी छत्र-छाया में हम जरासध-जैसे दस अत्याचारियो के लिए भी पर्याप्त होंगे; आपकी छत्र-छाया अवश्य चाहिए। वहाँ आपको जरासन्ध के साथ युद्ध करने की आवश्यकता नहीं होगी।"

"अच्छी बात है। जब जाना हो, मुझे पहले से कह देना।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"जब जाने की क्या बात ?" भीम बोला—"हम अभी चल पड़ेंगे।"

श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले—"जरासन्ध को चौदह राजाओं की कमी है। उनकी अपेक्षा उसे भीम मिल जाय तो चौदहों आहुतियाँ पूरी होजायं।"

"अथवा"—अर्जुन ने कहा—"सौ राजाओं की सौ आहुतियों के बदले अकेले जरासन्ध की एक ही आहुति पर्याप्त होगी।"

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर की ओर घूमकर बोले—"महाराज युधिष्ठिर! हम तीनों जा रहे हैं। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करेंगे। बन्दी बने हुए छियासी राजाओं की आवाज सारे देश में फैल गई है। आज जरासन्ध का काल उसे पुकार रहा है। महाराज युधिष्ठिर! आप बड़े भाग्यशाली हैं कि आपको भीम और अर्जुन-जैसे भाई मिले हैं।"

"परन्तु श्रीकृष्ण! इससे भी अधिक भाग्यशाली तो मैं आपको पाकर हूँ।" युधिष्ठिर बोले—"आप जैसे युग-पुरुष जिनके साथ हों, उन्हे चिन्ता किस बात की? जाइये, श्रीकृष्ण! तीनों शीघ्र वापस आइएगा।"

अर्जुन, भीम और श्रीकृष्ण तीनों रथ में बैठकर गिरिव्रज की ओर रवाना होगए।

: २ :

जरासन्ध-वध

"महाराज युधिष्ठिर!" रथ में से नीचे उतरते हुए श्रीकृष्ण बोले—"अपने भीमसेन को आशीर्वाद दीजिए। इसने जरासन्ध का वध किया है।"

"और भैया!" युधिष्ठिर के चरणों पर गिरते हुए भीम

बोला—"हमारे श्रीकृष्ण हमें कुशल-पूर्वक लौटा लाये हैं, इसके लिए आप कृतज्ञता प्रकट कीजिए।"

"परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर!" अर्जुन ने हँसते हुए कहा—"भीमसेन जरासन्ध के साथ युद्ध कर रहे थे और श्रीकृष्ण पीछे खड़े हुए इन्हे प्रेरणा दे रहे थे, यह सब मैंने शान्ति-पूर्वक देखा, अत मेरे लिए न आशीर्वाद है, न कृतज्ञता।"

रथ से उतरकर तीनों युधिष्ठिर के पीछे-पीछे सभा-गृह के विशाल खण्ड मे पहुँचे और बाते करने लगे।

युधिष्ठिर ने गम्भीर स्वर मे कहा—"जरासन्ध के साथ प्रकट मे चाहे भीम ने युद्ध किया होगा, परन्तु श्रीकृष्ण! यदि आप न होते तो मैं जिस रूप मे इन दोनों भाइयो को इस समय देख रहा हूँ, उसमे कदापि न देख पाता।"

"अवश्य महाराज!" अर्जुन बोला—"भीम तो घबरा गए थे।"

"ओह! ईश्वर!" भीमसेन आँखे फाडकर बोला—"कितना बड़ा था जरासन्ध! अस्सी बरस का बूढा, परन्तु कैसा उसका शरीर! कितनी चौडी छाती! मैंने बड़ा प्रयत्न किया; परन्तु वह मेरी भुजाओं मे न दब सका। मैं युद्ध करते-करते थक गया, पर वह गिरा नहीं और इधर गिरा कि उधर तुरन्त उठ खड़ा हुआ।"

युधिष्ठिर ने कहा—"तब तो जान पड़ता है, भीमसेन पर अच्छी तरह बीती।"

"भैया!" भीमसेन बोला—"मुझे तो अन्त मे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि जरासन्ध मर न सकेगा।"

श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले, "ऐसे जरासन्ध जब मरते है तब इसी प्रकार मरते है। मरने के अंतिम क्षण तक ऐसा ही मालूम होता है कि यह मरेगा नहीं, परन्तु जब मरते हैं तो क्षण-भर में

मर जाते है। संसार के सभी अत्याचारियों की यही दशा होती है। उनके जीवन की जड़े तो खोखली हो गई होती हैं, परन्तु ऊपर से देखने वालों को यह नहीं दीख पड़ता। इसलिए उन्हे तो ऐसा ही लगता है कि यह अचानक गिरा है। वस्तुतः तो वह कभी का मर चुका होता है।"

"सच बात है।" अर्जुन बोला—"जरासन्ध के मरने की बात मानने को कोई तैयार नहीं था।"

"होता कैसे ?" श्रीकृष्ण ने कहा—"इतना बड़ा स्थूलकाय सहसा गिर जाय, यह कोई माने तो कैसे माने ? लोगों को यह कहाँ पता कि ऐसे स्थूलकाय की हृदय-गति तो सहसा ही रुक जाती है।"

"भैया !" अर्जुन बोला—"जरासन्ध को मारकर जब हम बन्दी राजाओं को छुड़ाने कारागार मे गए तब बेचारे वे राजा-गण हाथ जोड़कर हमे कहने लगे कि क्यों हमें सता रहे हो ? जरासन्ध कभी मर नहीं सकता।"

"अच्छा, ऐसी बात ? जरासन्ध का इतना प्रभाव ?" युधिष्ठिर बोले।

"जरासन्ध का प्रभाव नहीं, राजाओं का भय।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—"जरासन्ध के राजाओं पर अत्याचार करने मे उसके अपने बल की अपेक्षा राजाओं का भय अधिक बड़ी वस्तु थी।"

"परन्तु श्रीकृष्ण !" युधिष्ठिर बोले—"जिस जरासन्ध ने यादवों से मथुरा छुड़ाई, जिसने छियासी राजाओं को बन्दी बनाया और जिसकी मगध पर धाक जमी हुई थी, उसे आप किस प्रकार मार सके ? आपको मार डालना तो जरासन्ध के बाएं हाथ का खेल था।"

"महाराज युधिष्ठिर !" श्रीकृष्ण बोले—"जरासन्ध को हमने किस प्रकार मारा, उसके नगर में किस प्रकार प्रवेश किया, वहाँ

कैसा वेश धारण किया और उसके साथ क्या-क्या बातें कीं, यह जानना हो तो अर्जुन आपको विस्तार से कहेंगे।"

"यह सुनने की किसे इच्छा नहीं ? परन्तु इसे विस्तार से कहने मे बड़ा समय लगेगा, इसलिए इस समय तो आप ही सक्षेप में सुना दें।" युधिष्ठिर आतुर हो उठे ।

"मैं ही सुना देता हूँ।" श्रीकृष्ण बोले—"जरासन्ध इतना बलवान् होने पर भी गरीबों की आहों से मर रहा था। महाराज युधिष्ठिर ! आपको अब ज्ञात होगा। जो सार्वभौम पद समस्त राजाओं की मैत्री और सहयोग के बदले, उनकी गर्दनों पर निर्मित होता है, उसे तो सुलगता हुआ ही समझना चाहिए। उस पद पर बैठा हुआ राज्य कब जलकर भस्म हो जायगा, इसका किसी को पता नहीं। ऐसे बलवान दीखने वाले राजा को एक ककड भी गिरा देने मे समर्थ हो जाता है। ईश्वर की सृष्टि में कौन-सी वस्तु बलवान और कौन-सी निर्बल है, इसका निश्चय करना सहज नहीं है। अन्यथा भीमसेन, जरासन्ध को मार सकता ? परन्तु भीमसेन के बल के पीछे लाखों भस्त लोगों के सकल्प का बल था, इसीसे भीमसेन की विजय हुई।"

"हमे तो आपका बल प्रतीत होता है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"आपको प्रतीत होता होगा।" श्रीकृष्ण बोले—"महाराज ! स्मरण रखिए, ऐसे दुःखी लोगों के आर्तनाद मे एक प्रकार की ईश्वरीय शक्ति होती है। ऐसे आर्तनादों से बडे-बड़े साम्राज्य मिट्टी मे मिल गए हैं इस जरासन्ध की क्या बिसात ? जो साम्राज्य गरीबों को पस्त करता है और मदमत्त होकर अपने बाहुबल पर विश्वास रखता है, उस साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। यदि जरासन्ध ने इस बात को समझा होता और हमारे साथ युद्ध करने की अपेक्षा बन्दी बनाये राजाओं को उसने मुक्त कर दिया होता, तो वह बच जाता।"

"यदि ऐसा करता तो वह जरासन्ध कैसे रहता ?" अर्जुन बोला—"श्रीकृष्ण ! जरासन्ध आपके मामा कंस का श्वसुर था। उसकी दोनों पुत्रियाँ रोज उसके कान भरती रहती थीं और हजारों चापलूस राजा हाँ मे-हाँ मिलाते रहते थे। ऐसी परि-स्थिति मे जरासन्ध ही क्या, हम भी हों, तो अन्धे बन जायं।"

"अस्तु !" युधिष्ठिर ने कहा—"अब जरासन्ध का विषय तो समाप्त हुआ। अब बताइये, क्या राजसूय यज्ञ करना उचित है ?"

"अवश्य !" श्रीकृष्ण बोले—"जरासन्ध चला गया तो एक बडी विपत्ति टल गई। अभी उसकी टोली के अन्य लोग पडे है, परन्तु जरासन्ध के जाने से वे भी कुछ शिथिल हो गये होंगे।"

"तो फिर", युधिष्ठिर ने कहा—"अर्जुन ! अब हम यज्ञ की तैयारी आरम्भ करे। श्रीकृष्ण ! इस कार्य की सफलता का भार आप पर है।"

"जिनके भीम और अर्जुन-जैसे भाई हैं, उन्हे सफलता देने वाला मैं कौन ?" श्रीकृष्ण बोले—"आपका शुभ सकल्प है, इसलिए सफलता अवश्य मिलेगी। अब आप तैयारी करे। मुझे अपनी सेवा में उपस्थित ही समझियेगा।"

"अर्जुन !" युधिष्ठिर ने कहा—"तुम चारों भाई मिलकर यज्ञ की पूर्व तैयारी करो। अब इस कार्य मे विलम्ब नहीं होना चाहिए। महाराज श्रीकृष्ण ! आप सब थके हुए है। अत. विश्राम कर ले। मैं माता कुन्ती और द्रौपदी को जाकर ये बाते सुनाता हूं।"

इतना कहकर चारों अलग-अलग होगए।

: ३ :

शिशुपाल-वध

महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भगवान् व्यास स्वयं ब्रह्मा बने, सुसामा आंगिरस उद्‌गाता, याज्ञवल्क्य मुख्य अध्वर्यु और धौम्य ऋषि होता बने।

समस्त भारतवर्ष के राजा-महाराजा, ब्राह्मण, प्रतिष्ठित वैश्य और शूद्र इस यज्ञ मे उपस्थित थे। नकुल स्वयं जाकर हस्तिनापुर से भीष्म, धृतराष्ट्र आदि हितैषियों को बुला लाया था; दुर्योधन कर्ण, शकुनी जयद्रथ आदि भी सज धजकर उपस्थित हुए थे। द्रोण, कृपाचार्य आदि भी अपने शिष्यों के पराक्रमों का आनन्द उठाने आये थे। द्रुपद, बलराम, सांब आदि पांडवों के उत्कर्ष से प्रसन्न होकर आये थे। इनके सिवा आंध्रक, द्रविड़, सिंहल बाह्लिक आदि से सारा इन्द्रप्रस्थ खचाखच भर गया था।

महाराज युधिष्ठिर यज्ञ की दीक्षा लेने के पश्चात् आये हुए राजा महाराजाओं को समारंभ के भिन्न-भिन्न कार्यों के पद पर नियुक्त करने लगे। भीष्म और द्रोण को उन्होंने समारंभ की सामान्य देख-भाल का काम सौंपा। ब्राह्मणों के स्वागत के लिए अश्वत्थामा को, राजाओं के स्वागत के लिए संजय को, रत्नों की परीक्षा के लिए कृपाचार्य को, भोजन की व्यवस्था के लिए दुःशासन को, राजाओं की ओर से आनेवाली भेंट स्वीकार करने के लिए दुर्योधन को और सारे खर्च का हिसाब रखने के लिए विदुर को नियुक्त किया गया। यज्ञ मे आये हुए ब्राह्मणों के पैर धोने का काम श्रीकृष्ण ने स्वयं ले लिया।

यज्ञ आरम्भ हुआ। ब्राह्मणों के मंत्रोच्चार से सारा यज्ञ-मंडप गूंज उठा। घृत और अन्न की आहुतियों से तृप्त होते हुए अग्नि की ज्वालाएं भभकने लगी। महाराज युधिष्ठिर का निजी

मंत्री सहदेव, अन्तर्वेदी मे खड़ा, आये हुए समस्त राजा-महाराजाओं की ओर दृष्टि डाल रहा था। नारद मुनि एकत्र हुए मानव-समूह को देखकर गहरे विचार में डूब गए थे।

इसी समय पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा—"बेटा युधिष्ठिर ! अब तुम इन राजाओं की पूजा करो। ये सब राजा-महाराजा आज बहुत वर्षों बाद हमारे आंगन मे आए हैं। इसके अतिरिक्त जिन राजाओं ने तुम्हारा सार्वभौम पद स्वीकार किया है, उनका पूजन इसलिए भी आवश्यक है कि तुम्हे राजसूय-यज्ञ करने का अभिमान न हो सके। इसलिए तुम प्रत्येक राजा को एक-एक अर्घ्य दो।"

युधिष्ठिर बोले—"पितामह ! आप जो कहते हैं, वह यथार्थ है। यह राजसूय यज्ञ करके मैं अभिमानी होना नहीं चाहता। समस्त भारतवर्ष के राजा-महाराजाओं के हृदय में मेरा स्थान बना रहे, यही मेरी अभिलाषा है। पितामह ? आप बताइये, एकत्र हुए इस सारे समाज में मैं सबसे प्रथम अर्घ्य किसे दूं ?"

भीष्म ने तुरन्त उत्तर दिया—"श्रीकृष्ण को। यहां एकत्र हुए समाज में ही नहीं, परन्तु सम्पूर्ण मानव-समाज में आज यदि कोई पुरुष प्रथम अर्घ्य का पात्र है तो वह श्रीकृष्ण हैं। इसलिए प्रथम अर्घ्य उन्हें ही दो।"

महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के समीप जाकर उन्हे विधि-पूर्वक अर्घ्य दिया और श्रीकृष्ण ने उसे स्वीकार किया।

परन्तु सभा में चेदिराज शिशुपाल बैठा था। वह इसे कैसे सहन करता ? श्रीकृष्ण को अर्घ्य मिलते न मिलते उसका क्रोध भभक उठा—"राजा युधिष्ठिर ! तुमने राजाओं की इस सभा में कृष्ण की प्रथम पूजा करके सारे समाज का अपमान किया है। कृष्ण इस प्रकार के राज-पूजन के योग्य नहीं है। भीष्म ने किस दृष्टि से कृष्ण के पूजन की सलाह दी, यह मेरी समझ में नहीं

आता। कृष्ण को तुम इन राजाओं में श्रेष्ठ समझते हो, परन्तु वह स्वय राजा कहा है? राजा बनने का सौभाग्य उसे प्राप्त ही नहीं हुआ और होनेवाला भी नहीं है। हां, समाज में वृद्ध-जन पूज्य माने जाते हैं, परन्तु इस सभा मे कृष्ण के पिता वसुदेव बैठे हैं, फिर भी तुम कृष्ण को किस प्रकार अर्घ्य दे सकते हो? मैं समझता हूँ कि आचार्य आयु में छोटे हों, फिर भी पूज्य होते हैं, परन्तु आचार्य द्रोण ये बैठे हुए हैं। महाराज युधिष्ठिर! तुम्हे पूजन करना था तो व्यास भगवान् नहीं दीख पड़े? भीष्म अच्छे न लगे? अश्वत्थामा या दुर्योधन दृष्टिगोचर नहीं हुए? तुम्हारे श्वसुर द्रुपद पर ध्यान न गया? केवल इस कृष्ण का ही ध्यान आया? मैं समझ रहा हूँ कि कृष्ण की पूजा करके तुमने इस सारे मानव-समाज का अपमान किया है और तुम्हें यह सलाह देने वाले भीष्म की बुद्धि का दिवाला निकल गया है। मैं यही कहूँगा कि कृष्ण का पूजन करके तुमने अपनी दीनता प्रदर्शित की है। कृष्ण! कुपात्र की पूजा करने वाला तो निंद्य है ही, परन्तु बिना अधिकार के ऐसी पूजा स्वीकार करने वाला भी उतना ही निंद्य है। इस पवित्र यज्ञ का हविष्य खा जाने वाला कुत्ता जिस प्रकार दण्ड का पात्र है, उसी प्रकार इस प्रथम अर्घ्य को स्वीकार करने वाले तुम भी दण्ड के पात्र हो। कृष्ण! युधिष्ठिर ने हम राजा-महाराजाओं का जितना अपमान किया है, उससे कहीं अधिक तुम्हारा अपमान किया है। नपुंसक का विवाह करना, जिस प्रकार उसके लिए बड़े अपमान की बात है, उसी प्रकार तुम जैसों को प्रथम अर्घ्य देना तुम्हारे अपमान की बात है। भारतवर्ष के राजा-महाराजा-गण! युधिष्ठिर के द्वारा धर्म-राज्य की स्थापना होगी, इस आशा से हम सब यहा आये हैं। आज हमने देख लिया कि युधिष्ठिर कितने धर्मात्मा हैं। इनके जैसे दीन और डरपोक राजाओं से हम सब दूर रहें, यही अच्छा

है। भीष्म वृद्ध होगए हैं, इसलिए उनकी बुद्धि भी उन्हे छोड़कर चली गई जान पड़ती है।" इस प्रकार बोलता हुआ शिशुपाल जब अपना आसन छोड़कर जाने लगा तब उसके साथ अन्य अनेक राजा भी उठ खड़े हुए।

शिशुपाल को जाते देखकर युधिष्ठिर घबराकर बोले—"शिशुपाल! तुम जो बोल रहे हो, वह उचित नही है। भीष्म पितामह धर्म के रहस्य को अच्छी तरह जानते हैं और श्रीकृष्ण से भी भली-भाँति परिचित है। श्रीकृष्ण ही प्रथम अर्घ्य के योग्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। व्यर्थ ही कठोर वाणी से तुम इस उत्सव मे विक्षेप क्यों कर रहे हो?"

युधिष्ठिर को इस प्रकार शिशुपाल को समझाते देखकर भीष्म ने कहा—"युधिष्ठिर! शिशुपाल को तुम्हारे इस प्रकार दीनता से समझाने की आवश्यकता नहीं। मै एक बार नहीं, दो बार नहीं, परन्तु हजार बार जोर देकर कहना चाहता हूँ कि सम्पूर्ण समाज मे—समस्त मानव-समाज मे—श्रीकृष्ण ही प्रथम अर्घ्य के योग्य हैं। हा, ये स्वय अभिषिक्त राजा नहीं हैं, इन्होंने अपने मस्तक पर राज-मुकुट धारण नहीं किया है, फिर भी अनेक मुकुटधारी राजाओं से बडे हैं। इन्होंने अनेक राजाओं के मस्तकों पर मुकुट रखे है और इनके प्रताप से उनके मुकुट स्थिर रहते हैं। शिशुपाल! तुम्हे यह पता है कि हमारे तुम्हारे जैसे सामान्य राजाओं के मुकुट प्रजा के हृदय मे स्थान नहीं बना पाते, परन्तु श्रीकृष्ण बिना मुकुट के प्रजा के हृदय में स्थान बनाये बैठे है। कौन कहता है कि श्रीकृष्ण वृद्ध नहीं? शिष्ट समाज में वृद्धत्व का माप कभी आयु से नहीं किया जाता। यदि ऐसा ही होता तो अनेक नीम और पीपल के वृक्षों को हमे सबसे वृद्ध समझना पड़ता। श्रीकृष्ण आयु मे छोटे होने पर भी बुद्धि मे बड़े हैं। जीवन के अनेक विकट प्रसंगों में भी इनकी बुद्धि स्थिर रह

सकती है, यह दुनिया ने देखा है। तुम चाहे जो समझो, मैं तो यही समझता हूँ कि श्रीकृष्ण को प्रथम अर्घ्य दिलवाकर मैंने इन समस्त राजाओं का मान बढ़ाया है। चेदिराज! श्रीकृष्ण का पूजन करके युधिष्ठिर ने उचित ही किया है। यदि तुम्हे और अन्य राजा महाराजाओं को यह बात पसन्द न हो तो तुम, जो उचित लगे, सो कर सकते हो।"

भीष्म जब इस प्रकार बोल रहे थे तब सहदेव आतुर हो रहा था। भीष्म के चुप होते ही वह तुरन्त बोल उठा—"श्रीकृष्ण का पूजन जिन लोगों को अच्छा न लगा हो, उनके माथे पर मैं अपना पैर रखता हूँ। ऐसे लोग यदि युद्ध की मांग करते हों तो उनके लिए भी सहदेव तैयार है। महाराज युधिष्ठिर तो श्रीकृष्ण का ही प्रथम पूजन करेंगे।"

इसी बीच शिशुपाल ने अन्य राजाओं के साथ मिलकर यज्ञ को भंग करने का संकेत किया और परिणाम-स्वरूप सारी सभा में कोलाहल प्रारंभ हो गया। सभा मे बढता हुआ शोर देखकर युधिष्ठिर अधिक घबराए और भीष्म से कहने लगे—"पितामह! यज्ञ मे विघ्न न हो और समस्त प्रजा का हित हो, इसके लिए आप जो कहेंगे वही करने को मैं तैयार हूँ।"

युधिष्ठिर को घबराते देखकर भीष्म ने ऊंचे स्वर मे कहा—"बेटा युधिष्ठिर! घबराओ मत। घबराने का कोई कारण नहीं है। जब तक सिंह सोया हुआ होता है तभी तक कुत्ते भौंका करते हैं। इस समय यह शिशुपाल नहीं बोल रहा है। शिशुपाल की और इन राजाओं की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, इसमे कोई सन्देह नहीं। काल जब-जब मनुष्य को दण्ड देता है, तब-तब उसे डंडे से नहीं मारता, परन्तु उसकी बुद्धि को कुमार्ग पर लगाता है। इस शिशुपाल की यही दशा समझो।"

भीष्म पितामह के इन वेधक वचनों से तिलमिलाकर शिशु-

पाल पीछे घूमकर बोला—"ओ भीष्म ! ओ कुरु-वंश के कलंक, ऐसे वचन बोलते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? जिस प्रकार अन्धा अन्धे को चलाता है उसी प्रकार आज तुम इन पाण्डवों को चला रहे हो। जिस कृष्ण की तुमने पूजा कराई, उसके काले कर्म सारा जगत् जानता है। इस कृष्ण ने अपने मामा का बध किया, यह क्या हम नहीं जानते ? जिनका अन्न खाकर बड़ा हुआ, उन्हें मारने वाला यह कृष्ण प्रथम अर्घ्य का अधिकारी कैसे हो सकता है ? इस कृष्ण की गोपियों के साथ की हुई लीलाएं क्या हम नहीं जानते ? भीष्म ! तुम मुझसे कहला रहे हो, इसलिए कह रहा हूँ। उन गोपियों के स्वामियों से जाकर पूछो तो तुम्हें पता लगेगा कि कृष्ण पूजा का कितना अधिकारी है। इस कृष्ण के पराक्रम को सारी दुनिया जानती है। काल यवन के आने पर यह पराक्रमी कृष्ण दुम दबाकर भाग गया था। यह सभी जानते हैं। इसके कार्यों की कोई गिनती नहीं। पूछो रुक्मी से। रुक्मिणी की सगाई किसके साथ हुई थी ? परन्तु इस लपट कृष्ण ने ही उसे भगाकर उसके सारे कुटुम्ब में विष का बीज बोया। अभी कल की बात है। जरासंध को इन तीनों आदमियों ने किस प्रकार मारा, यह इनसे पूछो। जरासंध को कपट से मरवाने वाले कृष्ण को प्रथम अर्घ्य देने वाला मूर्ख नहीं तो कौन है ? भीष्म ! इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। तुम्हारा सारा कुल ही इस प्रकार का है। केवल तुम्हीं ब्रह्मचर्य का आडम्बर किये बैठे हो। तुमने अम्बा का हरण किया और फिर उसे भट-कते छोड़ दिया, यह मैं भूला नहीं हूँ। नपुंसकों के ब्रह्मचर्य को साधु पुरुष महत्व नहीं देते। तुम स्वयं पापी हो। अतः कृष्ण जैसे पापी को प्रथम अर्घ्य दिलवाओ, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु याद रखना, तुम्हारी मृत्यु निकट है। तुम जैसे मूढ़

की सलाह को पांडव महत्त्व देते है, इससे यह समझो कि उनका भी काल निकट है।"

शिशुपाल के ऐसे कठोर वचन सुनकर भीमसेन का खून खौल उठा। "वह दात पीसता हुआ अपने आसन पर से उछल पडा और शिशुपाल को पकड़ने के लिए दौडा, परन्तु भीष्म ने उसे बीच मे ही रोक लिया। शिशुपाल भीम को इस प्रकार क्रोध से लाल देखकर बोला—"भीष्म। भीम को आने दो। भीमसेन को भी पता लगे कि चेदिराज का बाहुपाश कितना कोमल है। आ जा, भीमसेन! जरासध को तूने दुष्टता से मार लिया, पर यह शिशुपाल है।"

इस प्रकार बोलते हुए शिशुपाल को सबोधित करके भीष्म ने कहा "शिशुपाल! चेदिराज! अब सीमा हो चुकी है। श्रीकृष्ण केवल राजा ही नहीं, राजाओं का भी राजा है, वृद्ध ही नहीं, वृद्धो के भी वृद्ध है। ज्ञानी ही नहीं ज्ञानियो क भी ज्ञानी है, कारण श्रीकृष्ण युग-पुरुष हैं। बेटा युधिष्ठिर! मुझे इस शिशुपाल और इसके मित्रों पर तरस आ रहा है। शिशुपाल श्रीकृष्ण को पहचान नहीं सकता, इसलिए पामर है। यहां एकत्र हुए सब राजा-महाराजाओं से मुझे कहना चाहिए कि युग-पुरुष को परखना और परख कर उसका पूजन करना—उसके चरणो में शीश झुकाना, यह बड़ा कठिन काम है। ऐसा युग-पुरुष हमारी तरह दो हाथों और दो पैरों वाला होता है। इसलिए हमे वह साधारण मनुष्य ही प्रतीत होता है और इसी कारण उसे परखना अधिक कठिन हो जाता है। श्रीकृष्ण हमारे युग-पुरुष हैं। उनका अपना जीवन सर्वथा विशुद्ध है। जिन लोगो के अत करण पापों से घिर गए होते हैं, उन्हे ऐसे विशुद्ध जीवन मे भी मलिनता दिखाई देती है। वह शिशुपाल नहीं जानता कि गोपिया ऐसे युग-पुरुष के परिचय से धन्य होगई थीं, इस शिशुपाल को पता

नहीं है कि केशी, कालयमन, जरासंध आदि का नाश करना श्रीकृष्ण के जीवन का ध्येय है, यह शिशुपाल को ज्ञात नहीं है कि हमारी पृथ्वी पर राजाओं का जो भार समस्त प्रजा का पीडित कर रहा है उस भार को कम करने के लिए ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है। ऐसा ऋषियों को दीख पड़ रहा है। महाराज युधिष्ठिर आपके घबराने का कोई कारण नहीं। यह सभी जानते हैं कि हमारे युग की सर्व महेच्छाए श्रीकृष्ण के जीवन मे व्यक्त होती हैं। आज भारत को कष्ट मुक्त करने मे श्रीकृष्ण का बहुत बडा हाथ है। अब भी हम सब उनकी ओर दृष्टि लगाये बैठे हुए हैं। इन्हीं श्रीकृष्ण के जीवन मे छिद्र खोजना, उनके सद्गुणों को अवगुणों के रूप मे देखना और उनके जीवन-कार्य को न समझ-कर उनके विषय मे बुरी बातें बोलना, इसी का नाम है काल। काल से घिरे हुए इस शिशुपाल को बचाने मे आज कोई समर्थ नहीं।"

भीष्म इस प्रकार बोल ही रहे थे कि बीच मे ही शिशुपाल बोल उठा—"देख लिया तुम्हारा युग-पुरुष! ऐसे दुष्ट को युग-पुरुष कहते हुए तुम्हारी जिह्वा टूट क्यों नहीं पड़ती? युग पुरुष दूसरों की स्त्रियों के साथ मनमाना विहार किया करते हैं? युग-पुरुष दूसरों की ब्याही स्त्रियों के साथ विवाह कर लिया करते हैं? युग-पुरुष जरासन्ध को कपट से मार सकते हैं? यदि इस प्रकार के मनुष्य युग-पुरुष माने जायंगे तो पृथ्वी को रसातल जाना पड़ेगा। भीष्म! युग-पुरुष था जरासन्ध, जिसके कारागार मे बड़े बड़े राजागण चुपचाप बैठे थे! युग-पुरुष था कंस, जिसने गोकुल और मथुरा की माताओं को कंपा दिया। युग-पुरुष था कालयवन, जिसने ठेठ दक्षिण तक इन यादवों को निकाल भगाया। जो लोग इस कृष्ण को युग-पुरुष कहकर इसका गुण-गान करते हैं, वे बड़े मूर्ख हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

इतनी लम्बी गरमागरम बातचीत, महाराज युधिष्ठिर की घबराहट, सहदेव और भीमसेन का क्रोध, भीष्म की सिंह-गर्जना और शिशुपाल की प्रतिगर्जना, शिशुपाल के साथ उठ खडे हुए राजाओं का कोलाहल, इन सबके बीच श्रीकृष्ण जरा भी क्षुब्ध हुए बिना खडे थे। जिस प्रकार किसी महासागर की लहरें, बीच मे खडे हुए टीले से टकराकर टूट जाती है उसी प्रकार वे सब हलचलें और कोलाहल उनके साथ टकराये और स्वयं ही टूट गए। अन्त मे जैसे विश्व की गहराई मे से बोल रहे हो, इस प्रकार श्रीकृष्ण बोले- "यह जो कुछ बोला जा रहा है, वह शिशुपाल नहीं, उसका काल बोल रहा है। यह शिशुपाल मेरी बुआ का पुत्र है। अपने भरसक इसे न मारने का मैंने अपनी बुआ को वचन दिया है, परन्तु यह स्वय ही अपनी मृत्यु माग रहा है। यहा एकत्र हुए राजा-महाराजागण! आप कान लगाकर सुने। आज अनेक वर्षों से हमारी भारत-भूमि के गर्भ मे किसी भारी उथल-पुथल के लक्षण प्रकट होरहे हैं। हम क्षत्रियों को और विशेषकर राजाओं को समस्त प्रजा की रक्षा का काम सौंपा गया है, परन्तु हम रक्षा करने के बदले प्रजा की गर्दन पर सवार हो गए हैं। अतएव प्रजा बेचारी त्राहि-त्राहि कर रही है। याद रखो राजाओ! समस्त प्रजा की यह पुकार विश्व-नियता के दरबार मे पहुँच गई है और हमारा मद उतारने वाली शक्तियां पृथ्वी तल पर एकत्र होने लगी हैं। जो राजा लोग इन शक्तियों को पहचान कर सावधान हो जायगे, वे जीवित रहेंगे, बाकी सब, इन शक्तियों का ज्वालामुखी जब फटेगा, तब उसके खौलते रस मे भस्म हो जायंगे। यह शिशुपाल एक ऐसा ही मदमत्त राजा है। इसका एक दल है। जरासन्ध उसका नेता था। अब शिशुपाल ने वह स्थान लिया है। शिशुपाल! तू नहीं जानता कि आजतक के तेरे सारे अपराध तेरी माता के लिये मैंने सह लिए हैं। मैं अब भी

तेरे अपराध सहन कर सकता हूँ,परन्तु विश्व की नियामक सत्ता मुझसे कुछ और ही कह रही है। मैं चाहूँ या न चाहूँ, परन्तु धड़ से जुड़ा यह मदोन्मत्त सिर, धड से अलग होने के लिए उतावला हो रहा है। यदि मैं यह कहूँ तो असत्य नहीं होगा कि हमारे वर्त्तमान क्षत्रियों का मद उतारने और पीडित-भस्म प्रजा को राजाओं के अत्याचार से छुड़ाने का मुझे व्यसन होगया है। मुझे विश्वास है कि यह भारतवर्ष की पीड़ित प्रजा की बड़ी-से-बडी सेवा है। मैंने स्वयं अपनी शक्ति के अनुसार यह सेवा करना स्वीकार किया है। इसलिए तेरे जैसे अनेक अत्याचारियों के सिरों को मेरा सुदर्शन धड़ से अलग करेगा। शिशुपाल, अपने इष्टदेव को स्मरण कर ले!"

श्रीकृष्ण के इतना बोलते-न-बोलते सुदर्शन चक्र ने शिशु-पाल का सिर धड़ से अलग कर दिया।

युधिष्ठिर की आज्ञा से शिशुपाल का अग्नि-संस्कार हुआ और राजसूय यज्ञ के लिये आए हुए राजा-महाराजाओं को पांडवों ने विदा किया।

: ४ :

द्वैतवन में

पांडवों को जब तेरह वर्षों का वनवास मिला तब श्रीकृष्ण द्वारका मे नहीं थे। बाद में द्रौपदी के वस्त्र-हरण की और पांडवों के वनवास की खबर मिलने पर वे स्वयं पाण्डवों से मिलने वन में पहुँचे।

एक दिन पर्णकुटी के आंगन में पांडवों और द्रौपदी के साथ श्रीकृष्ण बैठे थे। तभी द्रौपदी ने प्रश्न किया—"श्रीकृष्ण! और तो कुछ नहीं, तुमने मुझे बहन के रूप मे स्वीकार किया है। लोग

मुझे पांचाली न कहकर कृष्णा कहते हैं। फिर भी मेरे वीर श्रीकृष्ण के जीवित रहते मेरी चोटी खींची गई! यह जब मैं स्मरण करता हूँ तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने भी मुझे त्याग दिया।"

"बहन! इस प्रकार दुखी न हो।" श्रीकृष्ण बोले—"जब यह सब हुआ तब मैं द्वारका में नहीं था। परन्तु इससे हुआ क्या? तुम नहीं जानतीं, परन्तु युधिष्ठिर जानते हैं कि इस प्रकार खींची गई चोटियां अगले दिन ही चक्रवृद्धि ब्याज के साथ अपना हिसाब चुका लेती हैं और ईश्वर के न्यायालय में ऐसे हिसाबों की अवगणना नहीं हो सकती।"

"परन्तु महाराज श्रीकृष्ण!" भीमसेन बोल उठा—"भरी सभा में देवी पांचाली के वस्त्र को खींचते उस अन्धे के पुत्र को जरा भी लज्जा नहीं आई।"

"यही उचित हुआ।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—"आजतक वे लोग तुम्हें गुप्त रूप से सता रहे थे और प्रकट में ऐसा व्यवहार करते थे जैसे तुम्हें बड़ा प्रेम करते हैं, परन्तु द्रौपदी का चीर खींचकर कौरवों ने अपनी पशुता को प्रकट कर दिया है। कौरवों की इस पशुता को अपने नग्न स्वरूप में देखकर संसार को अब कौरवों में विश्वास नहीं रहा है। आज दुर्योधन प्रजा का विश्वास प्राप्त करने के लिए आकाश-पाताल एक कर रहा है, तुम सबके दोषों का ढिंढोरा पीट रहा है, तुम्हारे शत्रुओं को मिलाने का प्रयत्न कर रहा है और तुम्हारे मित्रों में फूट डालने के लिए यत्नशील है, परन्तु उसे ज्ञात नहीं है कि तुम्हें वनवास देकर उसने अपने आदमियों का भी विश्वास खो दिया है।"

"आप चाहे जो कहें।" द्रौपदी बोली—"परन्तु आज जब

मेरे भीम अर्जुन वन मे भटक रहे है तब कौरव हस्तिनापुर के महलों में आनन्द मना रहे है।"

"देवी! यह सत्य है।" श्रीकृष्ण ने कहा—"यों देखने पर तुम दुख में पड़े हो और कौरव सुख मना रहे है, परन्तु जो लोग परिस्थिति के गर्भ मे दृष्टि डाल सकते हैं, वे स्पष्ट देख सकते हैं कि जहां हस्तिनापुर के महल कौरवों को सुन्दर बनायंगे, वहा यह वनवास तुम सबको अधिक तेजस्वी बनायगा। द्रौपदी! मै आजतक के समस्त इतिहास और पुराण पढ़ चुका हूँ। जगत् मे जिन लोगों के हाथों महान् क्रांतिया होनी होती है उन्हे क्राति की तपश्चर्या के रूप मे ऐसे दु:ख अवश्य सहने पडते हैं और दु:खों की शाला से गुजरे बिना क्रांति मे कभी आवेश नहीं आता।"

"महाराज! यह सब तत्त्व-ज्ञान की बाते है।" युधिष्ठिर बोले—"मै इन सबका दु:ख नहीं देख सकता। न जाने किस घडी में मुझे द्यूत खेलने की सूझ हुई और मैंने स्वीकृति दी।"

"यह ठीक है।" श्रीकृष्ण बोले—"तुम्हारा अपने लिए ऐसा सोचना उचित है। तुम द्यूत न खेलते तो अच्छा था, परन्तु संसार मे किस समय कौन-सी शक्ति काम करती है, यह कौन जान सका है? जानते हुए भी तुम्हे खेलने की इच्छा हुई, इसमे कौन जाने, विश्व-नियता का ही कोई संकेत हो? तुमने इन सबको दुखी किया है, यह सोचकर दुखी न हो। तुम सबके दु:ख सहने से कौरवों के पुण्यों का ह्रास हो रहा है। सारे कौरव और अंध धृतराष्ट्र भी सब दुष्ट हैं। परन्तु आज अभी उनके पीछे कुरु-कुल का तप जमा है। गाधारी जैसी सती, विदुर जैसा सत्य-वक्ता, भीष्म और द्रोण जैसे धर्मात्मा अभी कौरवों के पक्ष मे है। इसलिए कौरव उनके बल पर खड़े हैं। ज्यों-ज्यों तुम पर अधिक दु:ख पडेंगे त्यों-त्यों कौरवों के जीवन की जडे कटती जायगी

और जैसे दीमक से खाया गया वृक्ष सुन्दर दीखने पर भी एकाएक भूमि पर सोजाता है, वैसे ही एक दिन सारा कौरव-कुल सो जायगा।"

"महाराज श्रीकृष्ण!" सहदेव बोला—"मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप जो कुछ देख सकते है, उसका जरा सा भी अश दुर्योधन को दिखाई नहीं दे सकता। यह आश्चर्य की बात नहीं है?"

"अवश्य है।" श्रीकृष्ण ने कहा—"सहदेव! तुम्हे पता नहीं है। द्यूत सभा मे जब महाराज और शकुनी पासे फेक रहे थे, तब विकर्ण ने उन पासों की बोली सुनी थी, यह याद है? विकर्ण ने वह बोली सुनी और सारी कौरव-सभा को सुनाई, परन्तु दुर्योधन ने उस समय कान बद कर रखे थे और इस समय भी बद हैं। संसार के सब मदोन्मत्त राजाओं का यह लक्षण होता है कि वे आखे रहते भी नहीं देखते और कान रहते भी नहीं सुनते! सहदेव! उन मदोन्मत्त राजाओं के आस-पास ऐसा वर्तुल बन जाता है कि उनकी आंखोंको सत्य वस्तु दीखती ही नहीं, उनके कानों के साथ उनकी प्रिय बाते ही टकराती हैं। आगे चलकर ये राजा अपने आख-कान गवा बैठते हैं और बड़े वेग से काल के मुख मे समाते जाते है।"

"तो आपका आशय यही है न"—द्रौपदी से रहा न गया। "कि काल स्वय ही कौरवों का विनाश करेगा। यह सोचकर मेरे पाण्डव बैठे रहे और वनवास भोगते रहे?"

"बिलकुल नहीं।" श्रीकृष्ण चौंककर बोले। "वह काल तो तुम्हारे निमन्त्रण से ही आयगा। वह तुम्हारे हाथ-पैरों और तुम्हारी बुद्धि का उपयोग करेगा। तुम्हारी तपश्चर्या उसका आमन्त्रण बनेगी। मुझे तुम्हारे वनवास मे ईश्वरीय सकेत दीखता है। अर्जुन! तैयार हो जाओ। तुम इस वन मे पड़े-पडे दिन बिताने के लिए उत्पन्न नही हुए हो। तुमसे और मुझसे भी

जगत् के ऋषि-मुनियों को अनेक आशाएं हैं। यह समय है उन आशाओं को पूर्ण करने की तैयारी करने का। आज सारे भारतवर्ष मे किसी क्रांति के डंके बज रहे हैं। इस क्राति के लिए तुम्हारे तैयार होने की आवश्यकता है। सुदूर हिमालय के प्रदेश मे जाओ और पशुपति से विद्या प्राप्त करो। मै इसके चिह्न देख रहा हूँ कि उस विद्या के बल से दुष्ट राजाओं को कुचलने का सौभाग्य तुम्हे प्राप्त होगा। द्रौपदी ! तुम्हे किसी को निराश होने की आवश्यकता नहीं। यह निश्चय जानो कि यह वनवास तुम्हारे लिए भविष्य में आशीर्वाद-रूप सिद्ध होगा। महाराज युधिष्ठिर ! अब मै छुट्टी लूं ?"

"श्रीकृष्ण !" युधिष्ठिर ने गद्‌गद् स्वर मे कहा। "आपको छुट्टी देने के लिए जिह्वा नहीं उठती। द्रौपदी बड़े दिनों से प्रतिदिन आपको स्मरण करती और कभी-कभी रो लेती थी। आज आपसे मिलकर उसका भार हलका हो गया है। अधिक क्या कहूँ ? मै इन सबको वन मे लाया हूँ, इसका मुझे जो दु ख है, उसे आप समझ सकते हैं। वनवास के अन्त मे क्या होगा, यह ईश्वर ही जाने।"

द्रौपदी से न गया। बोली—"वनवास के अन्त मे दूसरा वनवास और दूसरे वनवास के अन्त मे मृत्यु !"

"द्रौपदी !" श्रीकृष्ण अधीर हो उठे। "इस प्रकार बोलकर महाराजा के व्यथित हृदय को और अधिक वेदना न पहुँचाओ। इस वनवास के अन्त मे सब मंगल हो जायगा।"

"भैया श्रीकृष्ण !" द्रौपदी बोली। "तुम जाना चाहते हो तो खुशी से जाओ, परन्तु यदि इस चोटी को तुम भूल गए तो सारे संसार मे मेरा कोई अन्य भाई नहीं है।"

"बहन !" श्रीकृष्ण आगे बोले। "तुम भूल रही हो। तुम मेरी बहन हो, यह बात तो है ही; परन्तु आर्यावर्त्त की किसी भी

स्त्री की चोटी खींची जाय और मैं बैठ रहूँ तो तुम देवकी के पेट से पत्थर जन्मा हुआ समझना। मैं बैठना चाहूँ तब भी विश्व की नियामक सत्ता मुझे बैठने नहीं देगी। इस प्रकार के दुष्ट राजा जब-जब ऐसे कृत्य करते है तब-तब मेरा हृदय मथित होता है और उनका कब नाश करू ,यही मन मे होता रहता है। देवी पांचाली ! यह सच है कि ऐसे दुष्ट राजाओं के अत्याचार दिन-पर-दिन बढ़ते जा रहे है, परन्तु साथ ही यह भी सच है कि उनके सिंहासनों के पायो को दीमक लग रही है। उनके सिंहासनों के नीचे मैं आज अनेक प्रवाहों को जाते-आते देख रहा हूँ। जगन्नियता को इस बलाबल के कैसे-कैसे प्रयोग करने शेष हैं, यह कौन कह सकता है ? परन्तु बहन ! मुझे इसका विश्वास है कि तुम्हारी एक चोटी खींचने के बदले मे अन्य अनेक चोटियां खींची जायगी। अब मुझे विदा दो।"

"भैया !" द्रौपदी बोली। "प्रसन्नता से जाओ।"

"श्रीकृष्ण !" युधिष्ठिर बोले।" हमारी सुधि लेने फिर शीघ्र ही आना।"

"सखे श्रीकृष्ण !" अर्जुन ने कहा। "मै क्या कहूँ, यह मुझे सूझ नहीं पड़ रहा है। अभिमन्यु का ध्यान रखना।"

"महाराज श्रीकृष्ण !" भीमसेन बोला। "बड़े भाई कहते हैं, इसलिए मानना पडता है, अन्यथा मै ऐसे वनवास को जरा भी न मानता। मैं तो एक बार में दो टुकड़े करने की बात जानता हूँ।"

"श्रीकृष्ण !" नकुल ने कहा। "आपके आने से सबको और विशेष कर देवी को शांति मिल गई।"

"और"—सहदेव बोला। "हम हताश हो गए थे, सो हममे नया बल आगया। श्रीकृष्ण काल के बलाबल को परख सकते हैं,

इसलिए जो बात हम जैसों की समझ में नहीं आती, वह अंत में इन्हें सूझ जाती है।"

"अच्छा, तो अब नमस्कार!" इतना कहकर श्रीकृष्ण रथ में बैठे और द्वारका की ओर चल दिये।

: ५ :

सन्धि की बातें

"महाराज युधिष्ठिर!" श्रीकृष्ण बोले। "मुझे यह उचित ज्ञान पड रहा है कि मुझे हस्तिनापुर जाकर सन्धि के लिए एक अन्तिम प्रयत्न कर देखना चाहिए।"

भीमसेन तुरन्त बोल उठा—"अभी आपके हस्तिनापुर जाने की बात हो सकती है?"

"क्यों नहीं?" श्रीकृष्ण ने कहा।

भीम से न रहा गया—"आज जब युद्ध के नगाडे बज रहे है और तलवारें म्यान से बाहर झाक रही हैं तब हमारी सन्धि की बात कौन सुनेगा?"

श्रीकृष्ण ने तुरन्त पूछा—"तुम सुनोगे?"

द्रौपदी बोली—"मेरे तो सुन-सुनकर कान पक गए।"

नकुल ने कहा—"हमारे सुनने पर भी जबतक दुर्योधन न सुने, तबतक क्या हो सकता है? देखिये न, वह सधि की झूठी-झूठी बातें भी करता है और कुरुक्षेत्र के मैदान मे सेना भी एकत्र करता जा रहा है। वह सन्धि की बाते इसीलिए तो सुनता है कि जिससे उसे और अधिक समय मिल जाय।"

"और" सहदेव ने कहा। "हम चाहे कितने ही शुद्ध हृदय से बातें करे, फिर भी दुर्योधन उसका दुरुपयोग ही करेगा।"

"स्नेह से पिलाया हुआ दूध भी सर्प के मुँह मे विष हो जाता है।" द्रौपदी बोली।

"देवी!" युधिष्ठिर शान्तिपूर्वक बोले। "फिर भी यदि श्रीकृष्ण कहते हैं तो एक और प्रयत्न करने में कोई हानि नहीं हैं।"

भीम गरज उठा—"हानि ही है। कौरव अपनी तैयारी किये जा रहे हैं और हम सन्धि की आशा मे ही बैठे हुए हैं।"

"भीमसेन!" श्रीकृष्ण ने कहा। कौरवों को दूसरों के बल पर लड़ना है, इसलिए उन्हे ना तैयारी करनी ही होगी; परन्तु वे चाहे जितनी बड़ी तैयारी करे, फिर भी वह अधूरी ही होगी।"

"हमें भी तो दूसरों से सहायता लेनी है।" नकुल बोला।

"हमें 'सहायता' लेनी है।" अर्जुन ने सहायता शब्द पर भार देते हुए कहा।

"कारण," श्रीकृष्ण ने बात पूरी की। "तुम दूसरो के बल पर निर्भर नही हो। अर्जुन को क्या तैयारी करनी है? दुर्योधन इस क्षण कहे तो इमी क्षण अर्जुन गाडीव चढा सकते है। इसीलिए मैं कहता हू कि यदि सधि का प्रयत्न निष्फल गया तो भी तुम्हे कुछ खोना नहीं पडेगा। खोने की बात यदि है तो कौरवों के लिए है।"

"परन्तु फिर भी," भीमसेन कुछ हिचकिचाहट से बोला। "हम बार-बार जो सधि की बात कर रहे हैं, इससे दुर्योधन हमे कायर समझता है।"

"शकुनी भी हमारा उपहास करता है।" द्रौपदी बोली।

"शकुनी का भीमसेन को कायर समझना ही उचित है।" श्रीकृष्ण ने कहा। "शकुनी जैसे पराक्रमी की दृष्टि मे भीम को कायर ही सिद्ध होना चाहिए।"

"तो फिर श्रीकृष्ण हो आय एक बार हस्तिनापुर।" अर्जुन ने राय दी।

"मुझे तो यह बिलकुल व्यर्थ मालूम होता है।" भीम ने कहा। "वहाँ कोई श्रीकृष्ण का कथन सुनने वाला नहीं है। उलटे वे लोग श्रीकृष्ण की निन्दा करेंगे।"

'फिर भी एकबार श्रीकृष्णको भेजना चाहिए।'अर्जुन बोला। "अभी तक समस्त कुरुकुल के सम्मुख हमारी वास्तविक स्थिति प्रकट नहीं हो सकी। महाराज श्रीकृष्ण हस्तिनापुर की सभा मे जाकर इसकी घोषणा करेंगे और यह निश्चय कर आयगे कि पांडव सधि या मृत्यु दोना मे से क्या चाहते हैं।"

"इतना ही नहीं," श्रीकृष्ण ने कहा। 'मैं सारे ससार की सभा मे पाडवों के अधिकार का घोषणा करूंगा और कौरवों को उनके नग्न स्वरूप मे मबके सामने उपस्थित करूंगा। भीमसेन! तुम यह न समझो कि मैं हस्तिनापुर जाने की बात केवल तुम पाडवों के लिए कर रहा हूँ। तुम कौरव-पाडवों का यह झगड़ा मुझे सारे जगत् का झगडा मालूम हो रहा है। हस्तिनापुर में जाकर यदि मैं कौरव-पाडवों में सन्धि करा सका तो सारे संसार में जो अशान्ति और वैर-द्वेष फैला हुआ है, उसका भी निवारण हो सकता है। इसीलिए मैं हस्तिनापुर जाने का आग्रह कर रहा हूँ। तुम्हारा प्रश्न आज एक प्रकार से विश्व का प्रश्न बन गया है।"

"तब आप अवश्य जाइये।" युधिष्ठिर बोले।

"परन्तु कहीं दुर्योधन की बातों में न आजाइएगा।" द्रौपदी बोली।

"दु शासन को स्पष्ट बता दीजिएगा कि भीम की गदा उसके रुधिर की प्यासी है।" भीमसेन ने कहा।

"मै तो यह खोज करने जा रहा हूँ कि रुधिर के प्यासों की

प्यास रुधिर के बिना कैसे शान्त हो सकती है ।" श्रीकृष्ण बोले । "द्रौपदी ! तुम ऐसी शका क्यों कर रही हो कि कौरव मुझे फुसला लेंगे ? पांडवों का अधिकार दीपक की तरह स्पष्ट है । मैं संधि चाहता हूँ । सधि के लिए मैं भरसक प्रयत्न करूँगा, परन्तु तुम यह विश्वास रखना कि वह सधि ऐसी होगी, जो तुम्हे शोभा दे । ऐसा न समझना कि पाडवों के लिए सर्वदा को दासता का लेख लिखाऊगा । जब ऐसा विकट प्रसंग आयगा तब मैं अपने स्वत के रुधिर से पाडवों के अधिकार का अमर लेख लिखूंगा, जिसे पांडवों के पास से ईश्वर तक न छीन सकेगा । बस, इतना पर्याप्त है न ?"

"आप पर हमे पूर्ण विश्वास है ।" अर्जुन बोला ।

"आपके हाथों में हम निर्भय है ।" नकुल ने कहा ।

"मैं त्रस्त होकर बोल रही थी, परन्तु आप पर मेरा विश्वास तिल मात्र भी कम नहीं है ।" द्रौपदी बोली ।

"आप हमारे केवट है । आप जो कुछ कर आयंगे वह हमे स्वीकार होगा ।" युधिष्ठिर ने कहा ।

"तो फिर मै जा रहा हूँ । अर्जुन ! मै सोचता हूँ, कौरव मानेंगे नहीं । यह मै भली-भाँति जानता हूँ कि वे अपने अभिमान में चूर हैं । उन्हे विश्वास है कि युद्ध होगा तो वे पाडवों को पीस डालेंगे । तुम्हारी छिपी शक्ति का उन्हे ज्ञान नहीं है । फिर भी मै उन्हे चेतावनी दूंगा । अत्यन्त विनय से परन्तु दृढता से मैं तुम्हारी माग उपस्थित करूँगा और प्रयत्न करूँगा कि जिससे पांडव और कौरव मिल-जुलकर एक दूसरे के साथ रह सकें । परन्तु परिणाम ईश्वर के हाथ है । फिर भी एक बात स्पष्ट है । आज जो अनेक राजा यह समझ रहे है कि पाडवों के दुराग्रह के कारण सधि नहीं हो रही है, उनकी आखें खुल जायगी

और उनके हृदय मे कौरवों के लिए जो स्थान बना होगा, वह रिक्त हो जायगा। द्रौपदी! अच्छा, अब जाता हूँ।"

"बहुत अच्छा, जाइये।"

: ६ :

सन्धि या युद्ध

"महाराज धृतराष्ट्र!" कौरव-सभा की असाधारण शान्ति को भग करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा। "मै पाडवों की ओर से सन्धि के लिए आया हूँ। मेरी साग्रह प्रार्थना है कि आप सधि स्वीकार करके कौरवों और पाडवों का हित-साधन करिये। महाराज! आप सारे कुरु-कुल के पूज्य हैं। महाराज पाडु के जाने के पश्चात् पाडवो के हित का भार भी आपने सँभाला है। आप यह समझते है कि महाराज शान्तनु के इस सिंहासन पर पाडवों का अधिकार है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। जब तक आपके पार्श्व मे पितामह और द्रोण बैठे है तब तक हम सब यही मानते हैं कि महाराज शान्तनु का पुण्य समाप्त नहीं हुआ। आप विचार करके पाडवो के अधिकार को स्वीकार करिये, जिससे केवल कुरु-कुल का ही नहीं, समस्त मानव-समाज का कल्याण हो।"

जब श्रीकृष्ण अपने आसन पर बैठ गये तब पितामह बोलने के लिए खड़े हुए। "धृतराष्ट्र!" भीष्म बोले। "श्रीकृष्ण जो कह रहे हैं, वह यथार्थ है। यदि पाडवों के साथ दुर्योधन सन्धि करेगा तो भीम और अर्जुन दुर्योधन की कीर्ति को सारे जगत् में फैलायँगे और जगत् तुम्हारे चरणो मे झुकेगा। बेटा दुर्योधन, तू समझ। आज तक सधि की बडी-बडी बाते हुईं और खतम हो गईं। आज स्वय श्रीकृष्ण आये हैं। वे आज संसार के

अद्वितीय युग-पुरुष हैं ! हम अपनी आंखों से जिन्हे नहीं देख सकते, उन छोटे-बड़े काल के समस्त बलों को ये देख सकते हैं और उनके परिणाम इनके हृदय में चित्रित हो जाते हैं। जो मनुष्य अपनी छोटी-सी बुद्धि की गणना को एक ओर रखकर इस महापुरुष की इच्छा के अधीन होगा, उसका जीवन धन्य हो जायगा। बेटा ! ये श्रीकृष्ण अपने हाथ मे जगत् के लिए शान्ति लेकर आए हैं, इसे तू समझ और उस शान्ति का स्वागत कर। यह न समझना कि मेरे जैसे वृद्ध के कथन मे कोई सार नहीं है।"

भीष्म के बैठने पर धृतराष्ट्र ने अपना मुख दुर्योधन की ओर घुमाकर कहा, "बेटा दुर्योधन ! श्रीकृष्ण और पितामह को उत्तर दो। ये दोनों हमारे कल्याण की बात करते हैं। मेरे लिए तो तुम और पाडव सब एक समान हो। भाई पांडु चले गए और यह भार मुझ पर डाल गए।"

धृतराष्ट्र के बात समाप्त करते-न-करते दुर्योधन फुफकारता हुआ उठा। "महाराज धृतराष्ट्र ! मैं बहुत पहले ही विचार कर चुका हूं और उत्तर भी दे चुका हूं। मेरे जैसा मनुष्य बार-बार विचार करना और बार-बार उत्तर देना नहीं जानता। यदि मैं इस प्रकार करने बैठूं तो मेरा हस्तिनापुर का राज्य एक दिन भी न चले। श्रीकृष्ण पाडवों के सम्बन्धी और अर्जुन के मित्र हैं, इसीलिए आए हैं। किसी को यह मानने की आवश्यकता नहीं कि श्रीकृष्ण युग-पुरुष हैं और इन्हे जगत् की शान्ति की चिन्ता है। भीष्म पितामह के समान वृद्ध जन भले ही ऐसा समझें। ये यदि ऐसा न समझें तो इनका वृद्धत्व इनके लिए भार-स्वरूप हो जाय। इस सभा मे बैठे हुए युवकों से पूछें तो आपको पता लगेगा कि कि भीष्म, द्रोण, विकर्ण आदि पागल है और उनके कथनानुसार चलने में बड़ा खतरा है। श्रीकृष्ण ! तुमने धृतराष्ट्र को अच्छा पाठ पढ़ाया, परन्तु इस दुर्योधन ने अभी अपनी बुद्धि बेच नहीं

दी है। इस सिंहासन पर पांडवों का अधिकार सिद्ध करने के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में रक्त के लेख लिखने पड़ेंगे। हाँ, यह दूसरी बात है कि तुम हम से प्रार्थना करो तो हम कुछ दे दे। परन्तु श्रीकृष्ण! तुमने विदुर चाचा के पास ठहरकर काम उल्टा कर दिया। तुम्हारी ये मीठी-मीठी बाते मुझे बहका नहीं सकतीं, समझे? अपनी सन्धि और शान्ति को जिस प्रकार लाये हो, उसी प्रकार वापस ले जाओ। युधिष्ठिर से कहना कि शीघ्र-से-शीघ्र युद्ध-भूमि में पहुच जाय। अब तो कुरुक्षेत्र जो निर्णय करेगा, वही दुर्योधन का निर्णय होगा।"

दुर्योधन के इन वचनो पर कर्ण और शकुनि ने हर्ष-ध्वनि की। श्रीकृष्ण ने सारी सभा की ओर दृष्टि डाली और खडे होकर बोले, "दुर्योधन! तुमने अपने हृदय की बात इतने स्पष्ट रूप से मुझे बता दी, इससे मुझे बडी प्रसन्नता हुई। परन्तु वैसे मुझे बड़ा खेद हो रहा है। तुम सबको मैं मृत्यु से घिरा हुआ देख रहा हू। जैसा कि भीष्म ने कहा, मै कोई महापुरुष नही। तुम सब की तरह मैं भी अपनी मां के उदर से पनपा हुआ एक साधारण मनुष्य हू। परन्तु मुझे ऐसा दीख रहा है कि मेरी सधि का तिरस्कार करके और पांडवो को युद्ध का आमंत्रण देकर तुम सब यमराज के मुख मे हाथ डाल रहे हो। दुर्योधन! सच कहता हूँ, यदि तुम पांडवों के साथ सन्धि कर लो तो तुम्हे मीठा फल मिलेगा। पाडव आज तक के सारे दुःख भूल जायंगे और कौरव-पाडव मिलकर पृथ्वी को कँपा देंगे।

"पाडवों ने अब तक बहुत सहा है। आज वे अपने पिता-स्वरूप धृतराष्ट्र से नम्रता-पूर्वक अपना अधिकार मांग रहे हैं। आजतक तुमने अकेले हाथों राज्य किया है, इसलिए उसे छोड़ते हुए तुम्हारा मन नहीं कर रहा। इसी बात का सारा रोना है। परन्तु दुर्योधन! दूसरों के उचित अधिकार छीनकर कोई

समृद्ध नहीं हुआ और न हो सकता है। दुर्योधन! पाडवों ने आजतक तुम्हारा अधर्म सहा, इससे यदि तुम उन्हें अशक्त समझते हो तो यह तुम्हारी भारी भूल है। यदि पाडव अजात-शत्रु युधिष्ठिर की आज्ञा न मानते होते तो तुम अपना यह राज्य कभी के गँवा चुके होते। यह समझ रखना कि यदि तुम समस्त भारत की सेना को अपने पक्ष मे कर लो तो भी उसे क्षण-भर मे उडा देने के लिए भीम और अर्जुन समर्थ हैं। दुर्योधन! क्षण भर के लिए यदि यह मान लिया जाय कि पाडव बेचारे निर्बल है और तुम्हे हरा नहीं सकते, क्षण-भर के लिए यह भी मान लिया जाय कि कुरुक्षेत्र के युद्ध मे पाडव हार गये और दुर्योधन की जीत का डका बज गया तब भी धृतराष्ट्र-पुत्र! तुम उस डके को झूठा समझना। जगत् की अव्यक्त-शक्ति तुम्हारा यह अधर्म सहन नहीं कर सकेगी। स्वय पांडव न सही, जगत् के किसी भी कोने से अन्य कोई अवश्य जागेगा और तुम्हारे हाथो से यह साम्राज्य छीन लेगा। ससार का यह सनातन नियम है। महाराज धृतराष्ट्र! आपका पुत्र दुर्योधन, सारे कुरु-वश को वेग से मृत्यु की ओर घसीटे जा रहा है। उसे रोकिये और वह न माने तो उसे बंधन मे रखिये। आज इसकी बुद्धि भ्रष्ट होगई है। इससे सारासार का ज्ञान खो दिया है। समस्त भारत के ब्राह्मण और ऋषि-मुनि आज एक जबर्दस्त सहार के चिह्न देख रहे हैं। इस संहार को रोकना अभीतक आपके हाथ में है। ईश्वर आपको इस सहार को रोकने की शुभ मति दे।"

श्रीकृष्ण जब इस प्रकार बोलकर बैठ गए तब सारी सभा मे एक प्रकार की धीमी-धीमी आवाज शुरू हो गई। एक ओर दुर्योधन और उसकी चांडाल चौकड़ी आपस में फुसफुसाने लगी, दूसरी ओर हस्तिनापुर का महाजन-मंडल इस विचार में पड़ गया कि दुर्योधन इस संधि को किस तरह स्वीकार करेगा।

एक ओर दुर्योधन के क्षत्रिय मित्र मूँछों पर ताव देते हुए श्रीकृष्ण का उपहास करने लगे, दूसरी ओर भीष्म, द्रोण और विकर्ण दुर्योधन को बन्दी करने की मत्रणा करने लगे। ब्राह्मण और ऋषि-मुनि इस चिन्ता से दुखी होने लगे कि श्रीकृष्ण का सधि-प्रयत्न निष्फल जायगा।

इसी समय सात्यकि श्रीकृष्ण के सिंहासन के समीप आया और उनके कान मे कुछ कहने लगा। सारी सभा का ध्यान सात्यकि और श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित हो गया। श्रीकृष्ण सुन्दर हास्य करके बोले, "महाराज धृतराष्ट्र! सात्यकि मुझे शुभ सवाद दे रहे है। आपका पुत्र और आपका साला शकुनी मुझे बन्दी करने का विचार कर रहे हैं, इससे बेचारे सात्यकि चिंतित और अधीर हो रहे हैं। परन्तु सात्यकि को ज्ञात नहीं है कि श्रीकृष्ण को बन्दी करना उतना सरल नही है, जितना कि दुर्योधन समझता है। दुर्योधन! तुम किसे बन्दी करोगे? तुम श्रीकृष्ण को बन्दी कर सकते हो, भीम को कर सकते हो, अर्जुन को कर सकते हो, कदाचित् पांडवों के लाख-दो लाख मित्रों को भी बन्दी कर सकते हो, परन्तु सारी जनता का जो असतोष आज तुम्हारे सामने खड़ा हुआ है, उसे तुम बन्दी नहीं कर सकते। तुम मुझे बन्दी क्यों करते हो? तुम चाहो तो मेरी हत्या कर सकते हो, पाडवों का भी वध करा सकते हो, परन्तु इससे यह न समझना कि हस्तिनापुर का सारा राज्य तुम्हारे हाथ में रह जायगा। कारण कि तुम्हारे राज्य के पाये अन्दर से खोखले हो गये हैं। तुम सोचते हो कि तुम्हारा राज्य इन बैठे हुए क्षत्रियों की तलवारों की नोक पर निर्भर है; परन्तु ऐसा सोचने वाला मूर्ख है। राज्य तो जनता के हृदय पर निर्भर है। तुम्हारा यह जन-समूह जिह्वा से चाहे न बोले, परन्तु उसके हृदय पढ़ते हुए मुझे प्रतीत हो रहा है कि उसके अन्तर से तुम्हारा शासन उठ गया

है और जिस राजा का राज्य जनता के हृदय से उठ गया, वह राज्य शस्त्रास्त्रों का अधिकाधिक सहारा देने पर भी टिक नहीं सकता। अनेक बार ऐसे राज्य को तोड़ने के लिए एक छोटा-सा कंकड भी पर्याप्त हो जाता है! दुर्योधन! आज मै तुम्हारे समीप वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण के रूप में नहीं आया हूँ, बल्कि तुम्हारे अधर्म के विरुद्ध जो मूक विद्रोह सारे भारतवर्ष में सुलग रहा है, उस विद्रोह को व्यक्त करने वाले एक व्यक्ति के रूप में आया हूँ। मुझे बन्दी करोगे तब भी तुम उस विद्रोह के विराट स्वरूप का क्या बिगाड़ लोगे? मुझे तो दुर्योधन की मूर्खता पर हँसी आरही है। दुर्योधन बेचारा समझता नहीं कि अपने राज्य को स्थिर रखने के लिए जो-जो उपाय वह काम मे लारहा है, वे सारे उपाय उल्टे राज्य के पाये में चोट मार रहे है। और पाडवों के प्रति लोगो का पक्षपात उत्पन्न कर रहे हे। महाराज धृतराष्ट्र! अब भो आप इधर ध्यान दीजिए। अभी सँभलने का अवसर है। इन भीष्म से पूछिये। मैने तो पांडवों को यह भो बता दिया है कि यदि मै तुम्हे केवल पॉच ग्राम दिलवा दूँगा तो उसमें भी तुम्हे सन्तोष मानना पडेगा।"

इतना कहकर श्रीकृष्ण बैठ गए। सारी सभा क्षण-भर के लिए विचार मे डूब गई और सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। इतने मे भीष्म उठे और बोले, "बेटा दुर्योधन! श्रीकृष्ण ठीक कह रहे है। श्रीकृष्ण को बन्दी करने का विचार तुझे कैसे आया? जब तक धृतराष्ट्र इस दुष्ट शकुनि को हस्तिनापुर से बाहर नहीं निकालेगे तबतक हमारा कल्याण नहीं। दुर्योधन! मान जा। पांच ग्राम दे देने से तुझे क्या कमी हो जायगी? मान जा और सबका आशीर्वाद प्राप्त कर।"

भीष्म को उत्तर देते हुए दुर्योधन बोला - "पितामह! अब मै छोटा नहीं हूँ। मै सब समझता हूँ। मैं मामा शकुनी की इच्छा

पर चलता हूँ, ऐसा आप न समझे। अन्त मे श्रीकृष्ण पांडवों को पाँच ही ग्राम देने के लिए कह रहे हैं, परन्तु आधा राज्य या पाँच ग्राम, कुछ भी उन्हे देने को मै तैयार नहीं हूँ। आप तो पाँच ग्राम को बात कह रहे हैं, परन्तु दुर्योधन तो उन्हे सुई की नोक के बराबर भूमि देने को भी राजी नहीं है। बस न ? मुझे यह बार बार की झक-झक पसन्द नहीं है। पाँच ग्राम ही क्यों, पांडव मारे हस्तिनापुर का और साथ-साथ त्रिलोक का राज्य भी ले--परन्तु वह कुरुक्षेत्र के मैदान में, हस्तिनापुर के सभा-गृह मे नहीं। श्रीकृष्ण ! तुम जाओ। तुम्हे अपना उत्तर मिल गया है।"

इतना कहकर दुर्योधन अपनी मूंछों पर बल देता हुआ बैठ गया। तब श्रीकृष्ण फिर बोलने के लिए खडे हुए। "महाराज धृतराष्ट्र, पितामह, आचार्य, कुरुवश के पुत्रो और सभाजनो! मै पाण्डवों की ओर से संधि-सदेश लेकर आया था और आपकी ओर से युद्ध-संदेश लेकर जा रहा हूँ। आपकी इस लडाई का कुन्ती के पुत्र स्वागत करेंगे, इसमे मुझे जरा भी सन्देह नहीं। जब मै आपके पास आरहा था तभी पाण्डवों ने मुझे कहा था कि आप व्यर्थ पानी को क्यों मथ रहे है ? परन्तु मेरे जैसों को इस प्रकार का पानी मथने मे भी शान्ति मिलती है। सन्धि का अन्तिम-से-अन्तिम प्रयत्न मैंने कर लिया, इससे मेरा हृदय हल्का हो गया है। इसके पश्चात् अब क्या होगा, यह ईश्वर के हाथ है। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम सब वेग-पूर्वक विनाश की ओर दौड़े जा रहे हो, इसी से मेरी बात तुम्हारे गले नहीं उतरती। काल की यही इच्छा है, यह सोचकर मैं विश्राम ले रहा हूँ। दुर्योधन ! अब मैं जा रहा हूँ। तुम्हे यह ज्ञात है कि इस युद्ध में मैं हाथ मे शस्त्र तक नहीं लूँगा। परन्तु मेरे वचन तुम्हे युद्ध के समय सत्य मालूम होंगे और आज जो बात समझ

मे नहीं आ रही है, वह युद्ध-भूमि मे समझ आयगी। ईश्वर जगत् का कल्याण करे।"

इतना कहकर श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र से विदा लेकर चलने लगे। धृतराष्ट्र ने सिंहासन पर से खडे होते हुए कहा—"श्रीकृष्ण! तुम्हारी बात बिलकुल सत्य है, परन्तु दुर्योधन नहीं मानता, इस से विवश हूँ। तुम्हारे आशीर्वाद से सब कुशल-मगल ही होगा।"

श्रीकृष्ण सभा से निकलकर रथ मे बैठे और दारुक ने रथ हाँक दिया।

: ७ :

अर्जुन का समाधान

"पाचाली!" छावनी के एक तम्बू के बाहर चक्कर लगाते हुए अर्जुन बोला—"मुझे आज नया जीवन मिला है। गत रात का अर्जुन और इस समय तुम्हारे साथ बाते करने वाला अर्जुन, दोनों एक दीखते हुए भी भिन्न हैं, यह निश्चय जानना।"

"प्रिय अर्जुन!" द्रौपदी बोली—"ऐसी क्या बात होगई कि शरीर से पसीना बह निकला, आँखों तले अँधेरा छा गया, शरीर जलने लगा और गांडीव हाथ से छूटने लगा? जिन लोगों को युद्ध का सचालन करने पर भी ऐसा होजाये, क्या उनकी वीरों में गणना हो सकती है?"

"पांचाली!" अर्जुन हँसता हुआ बोला—"इस प्रकार तो मैं बिलकुल कापुरुष हूँ! अवश्य। परन्तु धृष्टद्युम्न की बहन! यह स्मरण रखना कि युद्ध का संचालन करने वाले सभी शूर-वीर नहीं होते। अनेक शूरवीर कहलाने वालों की टाँगे उनकी पोशाक के अन्दर काँप रही होती है। शंख, भेरी आदि के नाद मे मस्त होकर बेचारे लड़ते है, इससे जगत् की आंखे उन्हे ठीक

रूप में देख नहीं सकती। देवी! वीर समझो या कापुरुष, परन्तु मैं मूढ़ अवश्य बन गया हू।"

"श्रीकृष्ण न होते तो भीष्मपितामह एक क्षण मे तुम्हारा सिर उतार लेते और सारे युद्ध का अन्त हो जाता।" द्रौपदी बोली।

"अवश्य!" अर्जुन ने कहा—"परन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ और होगी। मुझे स्वयं ज्ञात नहीं कि जब मैं द्वारका गया था तब शस्त्र-हीन अकेले श्रीकृष्ण और उनकी सम्पूर्ण सेना, इन दोनों मे से मैंने अकेले श्रीकृष्ण को क्यों पसन्द किया। मै स्वयं नहीं जानता कि ईश्वर के किस संकेत का अनुसरण करके मैंने श्रीकृष्ण को अपना सारथी बनाया। देवी! मैं समझा हू कि इन सबके पीछे परमेश्वर का कोई दैवी सकेत है। सकेत न हो तब भी इसमे कोई संदेह नहीं कि मुझे आज नया जन्म मिला है।"

"इस प्रकार तो तुम अनेक नये जन्म ले चुके हो।" द्रौपदी बोली—"तुम्हारे एक जीवन में पापी दुर्योधन ने तुम्हें अनेक जीवन जिलाये है।"

"यह दूसरी बात है।" अर्जुन ने कहा—"यों तो मनुष्य के जीवन में धूप-छांह आती ही रहती है। परन्तु आज के प्रसग ने मेरे जीवन मे बड़ा परिवर्त्तन ला दिया है। बारह घटे बीत चुके हैं, परन्तु मेरे हृदय मे अब गूँज हो रही है, जैसे हिमालय के ऊँचे-से-ऊँचे शिखर पर से परमात्मा की भेदक ध्वनि सुनाई दे रही हो और कुरुक्षेत्र के मैदान से मुझे कहीं-का-कही ले जा रही हो।"

"परन्तु प्रिय अर्जुन!" द्रौपदी ने पूछा—"यह मेरी समझ में नहीं आता। श्रीकृष्ण सब बातों में तो निपुण है ही, धर्म में

भी निपुण हैं। मुझे यह ज्ञात नहीं हुआ कि धर्म शास्त्र का अध्ययन उन्होंने कहां किया है।"

"यही विशेष बात है।" अर्जुन बोला—"धर्म-शास्त्र की पोथियां पढ़ने वाले उन पोथियों के अक्षरों में ही फंस जाते हैं। इन शास्त्रो के जंगल इतने सघन होते हैं कि एक बार भूलने पर रास्ते का पता लगना ही कठिन है। श्रीकृष्ण जैसे पुरुष शास्त्रों को नहीं पढते, परन्तु स्वयं शास्त्र ही उनके जीवन से उद्भव होते हैं।"

"श्रीकृष्ण ने तुम्हें यह समझाया कि यह युद्ध अवश्य करना चाहिए ?" द्रौपदी ने पूछा।

"यों नहीं।" अर्जुन बोला—"उन्होंने मुझसे कहा कि तू इस समय युद्ध का ही अधिकारी है, इसलिए यह जो युद्ध से भाग जाने की और भीख मागकर रोटी खाने की बाते कर रहा है, वे सब मिथ्या है।"

"ऐसा कहा ?" द्रौपदी प्रसन्न होते हुए बोली—"ठीक कहा मेरे भैया श्रीकृष्ण ने। महाराज को भी वह बात सुनाओ, जिससे वे जो बार-बार संन्यास लेन की बाते करते है, वे बन्द हों।"

"द्रौपदी !" अर्जुन बोला—"श्रीकृष्ण ने युदध करने के लिए कहा, परन्तु जिस प्रकार तुम कहती हो, उस प्रकार नहीं। तुम तो कौरवों से बदला लेने के लिए युद्ध का आग्रह करती हो, परन्तु श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म की दृष्टि से युद्ध करने को मुझे कहा है।"

"यह निष्काम-विष्काम मेरी समझ मे नहीं आता।" द्रौपदी बोली—"मै तो यह जानती हूँ कि कौरवों को तुम्हे मारना चाहिए।"

"फिर यही तो बड़ा भेद है न ?" अर्जुन ने कहा—"एक क्रिया को यदि एक मनुष्य राग से करता है तो वह उस के लिए

बन्धन होता है, परन्तु उसी क्रिया को दूसरा मनुष्य राग-द्वेष के बिना धर्म के रूप मे करता है तो वह उसके कल्याण में सहायक होता है।"

"तब श्रीकृष्ण बड़े धर्माचारी है, यही न ?" द्रौपदी बोली।

"द्रौपदी! तुम भूलती हो!" अर्जुन ने कहा—"यो कहो कि श्रीकृष्ण को हमने पहचाना नही है। देवी! व्रज की गोपियों से जाकर पूछो तो वे कहेगी कि हमारा यह बालकृष्ण बालकों के समान निर्दोष और प्रेम की मूर्त्ति है। आज भी गोपियां जमुना के तट पर उनकी मुरली की ध्वनि सुनती है और क्षणभर अन्तर मे गहरे उतरकर जीवन का आनन्द लेती है। चाणूर जैसे मल्ल से जाकर पूछो तो वह कहेगा कि श्रीकृष्ण बड़ा मल्ल है। मुझ जैसे से पूछो तो मैं कहूँगा कि खाण्डववन दहन करके वहा नई बस्ती बसाने मे श्रीकृष्ण मेरे अद्वितीय साथी थे। दुर्योधन और शकुनी से पूछो तो वे कहेगे कि श्रीकृष्ण बडे राजनीतिज्ञ है और किसी के हाथ मे आने वाले नहीं। विदुर से पूछो तो वे कहेगे कि श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर के अवतार है। व्यास भगवान् से पूछो, तो वे कहेगे कि श्रीकृष्ण हमारे युग पुरुष हैं। पांचाली! श्रीकृष्ण इनमें सब कुछ है और इससे बहुत अधिक है। आज मैने यह देख लिया है।"

"ऐसा आज तुमने क्या देखा ?" द्रौपदी ने पूछा।

"द्रौपदी! क्या बताऊँ ?" अर्जुन बोला—"मेरे जीवन की वे अनेक उलझने, जो किसी से नहीं सुलझ सकती थीं, श्रीकृष्ण ने आज एकदम सुलझा दीं। जब हिमालय पर तपस्या करने गया था तब मैं अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रमों मे रहा हूं। मैने योग, कर्म, अकर्म, ज्ञान और भक्ति की अनेक बाते सुनी हैं। परन्तु आज यह स्पष्ट होगया कि वे सब बाते मेरे लिए शून्य के समान थीं। कैसी उनकी विशेषता है! पर्वत पर से गिरते हुए

गगा के प्रवाह की तरह स्वच्छ और स्पष्ट उनका उपदेश है। जितनी स्पष्टता से मैं पांचाली को देख रहा हू, उतनी ही स्पष्टता से श्रीकृष्ण ने आज मुझे धर्म का दर्शन कराया। हमारे देश में भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी अपनी-अपनी सीमा बनाकर जो दुराग्रह खडे करते हैं, उनका हल श्रीकृष्ण के पास ही है।"

"श्रीकृष्ण स्वयं साख्य में विश्वास रखते है या योग मे ? उनके कथनानुसार ज्ञान सत्य है या भक्ति ?" द्रौपदी ने पूछा।

"द्रौपदी !" अर्जुन बोला—"क्षमा करना, मुझे तुम्हारे प्रश्न पर हॅसी आरही है। श्रीकृष्ण न साख्य मानते हैं, न योग, न ज्ञान, न भक्ति। वे विश्वास करते हैं केवल परमात्मा मे। यदि सांख्य परमात्मा की ओर ले जाता हो तो उसे मानते हैं, नहीं ले जाता हो तो नहीं मानते। योग परमात्मा की ओर ले जाता हो तो उसे मानते है, नहीं ले जाता हो तो नहीं मानते। यही बात ज्ञान और भक्ति के लिए है। उन्हे हमारे साख्य योग के झगडे से कोई मतलब नही, उन्हे परमात्मा से मतलब है। मैं यह सांख्य है, यह योग, यह कर्म और यह ज्ञान, इस प्रकार बहुत बका करता था, परन्तु श्रीकृष्ण ने मेरा सारा भ्रम दूर कर दिया है।"

"तो तुम्हे श्रीकृष्ण ने अपना नया धर्म सिखाया है ?" द्रौपदी ने पूछा।

"उनका कोई नया धर्म नही है। वे जो करते हैं, वही बोलते हैं और जब बोलते हैं तब आत्मा की गहराई से बोलते हैं। द्रौपदी ! सच कहूँ ? उन्होंने मुझे साख्ययोग आदि के द्वारा मानव-धर्म की झाकी कराई है। और मेरी आंख से परदा दूर कर दिया है। अतएव मैं श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहता हूँ।"

"उनके इस मानव-धर्म की विशेषता बताओगे ?" द्रौपदी ने पूछा।

"उसकी विशेषता एक ही है।"

"वह क्या ?"

"जहां धर्म का पालन करने से परमात्मा की हत्या होती हो, वहां धर्म को भी त्याग देना चाहिए।" अर्जुन ने संक्षेप में कहा—"मुझे आज प्रात काल ही श्रीकृष्ण ने कहा था कि अर्जुन! तू सब धर्मों का त्याग करके केवल परमात्मा को ग्रहण कर। इसी का नाम मानव-धर्म है। जो धर्म, प्रत्येक मनुष्य को भाई समझना सिखाने के बदले शत्रु बनाता है, वह धर्म नहीं है। हमारे साख्य योग वाले, कर्म ज्ञान वाले, ईश्वर निरीश्वरवादी भले ही आपस में लड़ ले, परन्तु धर्म के नाम पर लड़ने वालों की इस प्रकार कभी विजय नहीं हो सकती। दुनिया मे अनेक धर्म बने और अनेक बनेंगे। इन भिन्न-भिन्न धर्मों के जाल से छूटकर जो अपने अन्तर की आवाज के प्रति सच्चा रहेगा, वह परमात्मा के मार्ग पर होगा। अन्य सब मकड़ी की तरह अपने बनाए हुए जाल मे ही फंसकर रह जायगे। देवी! मैं आज धन्य हो गया।"

"फिर अब तो तुम अवश्य लड़ोगे। कहीं फिर तो गाडीव छोड़कर नहीं बैठ जाओगे ?" द्रौपदी बोली।

"मै सोचता हूँ कि अब फिर मै ऐसी दीनता नही दिखाऊँगा।" अर्जुन ने कहा—"देवी! क्षमा करना। इस दीनता ने इस समय मुझे बड़ा लाभ पहुँचाया है। ऐसी दीनता दिखलाने से ही आज मुझे यह सब अनुभव प्राप्त हुआ है। इस दीनता को छिपाए रखा होता तो श्रीकृष्ण के अमर वचन कैसे सुन सकता ? देवो! मुझे तो ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण ने केवल मुझ पर ही यह उपकार नहीं किया है; परन्तु जितने भी अर्जुन इस ससार मे है और जिन्होंने अपने रथ की बागडोर परमात्मा के हाथ में सौप दी है, उन सबको उद्देश्य करके कह रहे हों, इस

प्रकार श्रीकृष्ण ने मुझे यह सब सुनाया है। पांचाली ! यदि शब्द शरीर धारण कर सकते हों और वे शरीर अमर रह सकते हों तो मेरी शुभेच्छा है कि श्रीकृष्ण का यह उपदेश सारे आर्यावर्त्त में अमर रहे और मेरे जैसे अनेक मूढ़ जनों के लिए मार्ग दर्शक बने। देवी ! मैं कैसा मूर्ख हूँ कि श्रीकृष्ण को आजतक पहचान न सका। और इसका भी क्या विश्वास है कि फिर उन्हें न भूल जाऊँगा। श्रीकृष्ण ! तुममें इतना अधिक मनुष्यत्व है कि तुम्हारा देवत्व मन में ठहर ही नहीं सकता।"

"अर्जुन !" द्रौपदी बोली—"मेरे लिए तो सबसे अधिक आनन्द की बात यह है कि मेरे अर्जुन का हाथ गांडीव पकडने के लिए अधिक बलवान होगया। अब श्रीकृष्ण हमें इस युद्ध में विजय दिलवा दें, तो हम निश्चिन्त होकर बैठें। प्रिय अर्जुन ! रात बहुत बीत गई है, अब विश्राम करो।"

"बहुत अच्छा।" अर्जुन ने कहा—"अभी इस बारे में बहुत-सी बातें मन मे उठ रही हैं और इच्छा हो रही है कि उन सबको कहता जाऊँ, परन्तु अब कल कहूँगा। आज अब तुम भी विश्राम करो।"

अर्जुन अपने तम्बू में गया और द्रौपदी छावनी के दूसरी ओर चल पड़ी।

: ८ :

भीष्म की दृष्टि से

कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हुआ और युधिष्ठिर हस्तिनापुर के महाराजा बने। हस्तिनापुर का मुकुट मस्तक पर धारण करने के पश्चात् एक बार युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास गये। पितामह शर-शैया पर पड़े हुए थे। युधिष्ठिर ने निकट जाकर शीश झुकाया और शैया के एक ओर बैठ गए।

"युधिष्ठिर !" भीष्म ने पूछा—"अन्त में तुमने हस्तिनापुर का राज-मुकुट प्राप्त कर लिया न ?"

"पितामह !" युधिष्ठिर खिन्न होकर बोले—"रक्त की इतनी नदियाँ बहानेके पश्चात् मिला हुआ यह मुकुट मुझे कितना प्रिय लग रहा है, यह मेरा हृदय ही जानता है। आप जैसो को इस मुकुट के कारण जब बाणों की शैया पर पडे हुए देखता हूँ तब मुझे अपने प्रति तिरस्कार उत्पन्न होता है और अपनी पामरता का भान होता है।"

"बेटा युधिष्ठिर !" युधिष्ठिर को सान्त्वना दे रहे हो, इस प्रकार भीष्म बोले—"इस प्रकार खेद करने की आवश्यकता नही। मेरे जैसे वृद्ध को इतनी आयु मे भी कौरवों के साथ रह कर यदि तुम्हारे विरुद्ध लड़ना पडे तो मै बाण-शैया के ही योग्य हूँ। युधिष्ठिर ! वैसे जीवन मे किस मनुष्य को बाण-शैया पर नहीं सोना पडता ? मनुष्य मात्र के हृदय मे ईश्वर ने इस प्रकार की कीलें ठोकी हुई हैं। 'क्या करूं, क्या न करूं' की उलझन मे पडकर मनुष्य को जो अन्तर्वेदना होती है, वह बाण-शैया नहीं तो और क्या है ? यदि बाण-शैया किसी के लिए नहीं है तो एक मूर्ख के लिए और एक ज्ञानी के लिए नही है। युधिष्ठिर ! मै सामने एक नये सूर्य को उदय होते देख रहा हू। पुरानी रात को मैं अपने साथ लेकर सोया हूँ। जब इस अंधकार में से उस सूर्य का प्रसव होता है तब उसकी प्रसव-पीड़ा तो मुझे सहनी ही चाहिए न ? परन्तु आने वाले कल की आशा इस पीड़ा को भुला देती है और अभिनव आनन्द की कल्पना कराती है। बेटा ! तुम मेरी पीड़ा का विचार न करो। श्रीकृष्ण गये कि हैं ?"

"है ! माता कुन्ती ने उन्हें कुछ दिनों के लिए रोक लिया है।" युधिष्ठिर ने बताया।

"फिर तुम उन्हे अपने साथ क्यों नहीं लाये ?" भीष्म ने दृष्टि

घुमाकर कहा—उनका दर्शन करके मै अपने जीवन को अधिक धन्य बनाता।"

"पितामह!" युधिष्ठिर बोले—"श्रीकृष्ण के प्रति आपके सद्‌भाव को मैं जानता हूं।"

भीष्म तुरन्त बोल उठे—"सद्‌भाव नहीं, पूज्यभाव—भक्तिभाव कहो। तुम लोग उन्हे पहचानते नहीं। वे युग-पुरुष है। किसी और युग मे उत्पन्न हुए होते तो लोग उन्हे ईश्वर के अवतार के रूप मे पूजते। उनका दर्शन और उनका सत्सग जीवन की अमूल्य वस्तु है।"

"पितामह!" युधिष्ठिर ने कहा—"आप उन्हे वर्षो से युग-पुरुष के रूप मे जानते है। मेरे वे निकट संबंधी हैं और उनके कारण ही हम इस युद्ध मे विजयी हुए है। फिर भी युद्ध मे उन्होंने जो कुछ किया, उसकी बडी टीका हो रही है और मेरा उन पर पूज्यभाव होने पर भी उन टीकाओं का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है।"

"युधिष्ठिर!" भीष्म ने आश्चर्य से कहा—"लोग भूलते है। श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष की टीका करने वाले लोगो के पास उन्हे मापने का यन्त्र कहा है? हमारे तुम्हारे जैसे वामन-पुरुष उनके विराट् स्वरूप को पहचान ही कहा सकते है! ऐसे महा-पुरुष को पहचानने के लिए स्वय तपश्चर्या करके पवित्र होना चाहिए और फिर उनके जीवन-कार्यों पर दृष्टि डालनी चाहिए। मेरे कानों मे भी यह बात पडी है। अनेक लोग उन्हे नीतिज्ञ कहते है। मुझसे पूछो तो मैंने इस युद्ध मे उनके सारे कार्यों का अध्ययन किया है और इससे मेरा यह विश्वास अधिक दृढ़ हुआ है कि वे युग-पुरुष है। तुम धर्मात्मा हो, इससे यह बात तुम्हारी भी समझ में आती होगी। अन्य लोगों को तो उन्हे समझने के लिए अभी अनेक जन्म लेने पड़ेगे।"

"पितामह! आप ठीक कहते हैं।" युधिष्ठिर ने कहा—"देखिये, जब अर्जुन ने आपको गिराया तब सारी कौरव-सेना को उसमे श्रीकृष्ण का छल दिखाई दे रहा था।"

"बेटा!" भीष्म ने शान्ति-पूर्वक कहा—"जब मैंने अर्जुन पर गहरा वार किया तब अर्जुन भी घबरा गया। श्रीकृष्ण ने युद्ध में शस्त्र हाथ में न लेने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु जब अर्जुन रथ में गिर पडा तब वे स्वयं रथ का पहिया लेकर मेरी ओर दौडे।"

"हां, इसी घटना को लेकर लोग उन्हे प्रतिज्ञा तोड़ने वाला अधर्मी कहते हैं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"उन लोगों को धर्म-अधर्म की सूक्ष्म तराजू को स्पर्श करने का भी अधिकार नहीं है। युधिष्ठिर! आज भी जब मैं श्रीकृष्ण के रथ का पहिया लेकर दौड़ने की घटना याद करता हू तो मुझे हर्ष से रोमांच हो आता है और मेरे जीवन की थकान उतर जाती है। बेटा! जिन लोगों में ईश्वर-भाव नहीं है, जिन लोगों ने कभी दूसरों को हृदय से अपना नहीं समझा, जिन लोगों ने किसी एक ध्येय के लिए अपने जीवन का उपयोग नहीं किया और जिन लोगों को मानव हृदय के कोमल भावों का पता नहीं है, उन लोगों को मनमानी कहने दो। परन्तु जिस समय मेरे समान भीष्म सारी पांडव-सेना का कचूमर निकाल रहा हो, जिस समय पांडवों की एक-मात्र आशा अर्जुन अचेत होकर रथ में पड़ा हो, जिस समय क्षण दो क्षण मे ही सारे युद्ध का निर्णय होने की स्थिति उत्पन्न हो गई हो, उस समय अपने आप्तजनों की ओर से निश्चिन्त रहकर प्रतिज्ञा के अक्षरों को तौलते रहना उचित है, या प्रतिज्ञा-भग का प्रायश्चित्त सहकर आप्तजन की सहायता के लिए दौड़ना उचित है? श्रीकृष्ण के चक्र लेकर मेरी ओर दौड़ने में मुझे केवल उनका अर्जुन के लिए शुद्ध

प्रेम दिखलाई दिया और जब उनके जैसे महापुरुष प्रेम के वश होकर दौड़ पड़े तब मैं शस्त्र त्यागकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। युधिष्ठिर! ऐसे महापुरुषों का ऐसे प्रसंगों पर हम अपनी मति के अनुसार माप करते हैं, यह हमारी भूल है। भक्त-वत्सलता ईश्वरीय गुण है। मुझे तो चक्र लेकर दौड़ने में श्रीकृष्ण की महत्ता प्रतीत हुई थी और तुम जानते हो कि उनकी प्रतिज्ञा भी टूट नहीं सकी थी। तुरन्त ही अर्जुन ने पीछे से आकर उन्हें रोक लिया और उन्होंने फिर से अर्जुन के रथ की बागडोर हाथ में ले ली।"

"पितामह!" युधिष्ठिर बोले—"आप जो कह रहे हैं, वह उचित है। मेरे अपने विषय मे आपको पता होगा कि श्रीकृष्ण ने मुझसे असत्य बोलने को नहीं कहा था। जब द्रोणाचार्य को मारना था तब श्रीकृष्ण ने मेरे सामने दो बाते रखीं। या तो मुझे असत्य बोलकर द्रोण से शस्त्र त्याग करवाना और इस प्रकार विजय का मार्ग खोलकर अपने आप्तजनों के प्राण बचाना अथवा अपने सत्य पर दृढ़ रहकर इस मुकुट और आप्तजनों के जीवन की आशा छोड देना। मैंने स्वय अपनी खुशी से असत्य को और इस मुकुट को पसन्द किया। मुझे वही पसन्द हो गये। इसमे श्रीकृष्ण का जरा भी दोष नहीं था। हां, मैं अन्दर से निर्बल था। मेरी निर्बलता छिपी हुई थी, जो इस प्रकार बाहर आगई। इससे मुझे रोष हो और मैं श्रीकृष्ण को दोष दूं, तो यह और बात है। परन्तु पितामह! आपने सुना तो होगा ही। मेरे अर्जुन ने कर्ण को मारा, यह असंभव-सा लगता है। श्रीकृष्ण ने उस अधर्म को क्यों नहीं रोका, यह मैं नहीं समझ सकता।"

"बेटा युधिष्ठिर!" पितामह बोले—"धर्म-अधर्म का निर्णय इस प्रकार नहीं हुआ करता। धर्म-अधर्म समाज में

सापेक्ष वस्तु है। जिस कर्ण ने जीवन-भर तुम्हे सताया, तुम्हें वनों मे भी कष्ट पहुचाये और सुख न मिलने दिया, उसी कर्ण ने जब केवल रण-भूमि में आकर अर्जुन को धर्म-युद्ध के लिए चुनौती दी तो बडा अच्छा किया ? जिसने सारा जीवन तुम्हारे साथ छल-प्रपंच करने मे बिताया, वही जीवन-मरण के प्रसग पर तुम्हे धर्म का उपदेश दे, यह तो निरी धर्म की विडबना है। उस जिह्वा पर 'धर्म' शब्द आते ही उसे टूट पडना चाहिए। कर्ण को धर्म की बात करने का अधिकार ही नहीं था। हां, यह और बात है कि अर्जुन के लिए वह कार्य उचित था या नहीं। भीम ने जब दुर्योधन को गदा मारी तब वहा भी यही प्रश्न था। आजन्म अधर्म से तुम्हे सताने वाले कर्ण और दुर्योधन, अपनी मृत्यु के समय तुम्हे धर्म का स्मरण करायं, यह कितनी विचित्र बात है ? तुमने, भीम ने तथा अर्जुन ने जिस प्रकार तुमसे हो सका, उस प्रकार उन्हे मारा—उनके अनेक अधर्मों के सामने तुमने कदाचित् एकाध अधर्म कर लिया तो इसमे लोगों के भडकने की क्या बात है ?"

"लोग तो श्रीकृष्ण को दोष देते है।" युधिष्ठिर बोले।

"बेटा युधिष्ठिर!" भीष्म ने कहा—"श्रीकृष्ण जैसे पुरुष स्वय ज्योति होते है। शास्त्र, उनके धर्म-अधर्म के प्रमाण नहीं होते, परन्तु उनके जैसे पुरुष का व्यवहार ही धर्म-शास्त्र बन जाता है। अपनी धर्म-अधर्म की तुला से उन्हे तोलने की अपेक्षा उनके जीवन से अपने धर्म-अधर्म संबधी विचारों की फिर से जांच करना अधिक उचित है। उनके समान साधु-चरित्र पुरुष किस ईश्वरीय संकेत का अनुसरण करके कौन-सा काम करते हैं, यह समझना भी हमारे लिए कठिन है। देखो, गाधारी जैसी सती श्रीकृष्ण को शाप दे बैठी! गांधारी के समान सती आर्यावर्त्त ने नहीं देखी। हम तुम जैसों को ऐसी स्त्रियों के उदर से

जन्म लेने की इच्छा होती है, परन्तु जब उसने दुर्योधन के शव को देखा और उसकी मृत्यु की बात सुनी, तब उससे भी श्रीकृष्ण को शाप दिये बिना नहीं रहा गया। उस समय श्रीकृष्ण ने कितने आनन्द से उस शाप का स्वागत किया। अपनी मृत्यु के शाप को हसते हुए सह लेना और शाप देने वाले से यह कहना कि "तुमने उचित ही किया," यह क्या साधारण मनुष्य का काम है ? युधिष्ठिर ! ऐसे समय तो बड़े-बड़े योगी-मुनि भी अपनी सज्ञा खो बैठते है और कुछ-का-कुछ कर बैठते है। श्रीकृष्ण के समान स्थित-प्रज्ञ लोग ही स्थिर रह सकते हैं।"

"पितामह !" युधिष्ठिर ने कहा—"आप जो कह रहे है, वह सब मै मानता हूँ। परन्तु साधारण मनुष्य तो अपनी बुद्धि के अनुकूल ही इसका उत्तर मागेंगे। आपके दिये हुए उत्तर मेरे समान श्रद्धापूर्ण अन्तःकरण वाले को ही सन्तुष्ट कर सकते है।

"सच बात है।" भीष्म बोले—"जिनके अन्त करण टेढ़े हो गए है, उनकी समझ मे ये बाते आनी मुश्किल है। वे लोग तो ऐसे प्रसगों को श्रीकृष्ण के दूषण रूप मे ही मानेगे।"

भीष्म ने जरा विचार करके फिर कहा—"परन्तु बेटा! ऐसा हो तो भी क्या बात है ? सोचो कि श्रीकृष्ण ने इस प्रकार की कुछ भूले की है, तो भी क्या हुआ ? इससे महापुरुष के रूप में उनका स्थान और भी अधिक दीप्त हो उठता है। श्रीकृष्ण चाहे जैसे है, फिर भी मनुष्य है। उनके हाड़-मास मे मनुष्य का रुधिर बह रहा है। हमारी तरह ही उन्होंने एक स्त्री के उदर से जन्म लिया है। वे चाहे कितने ही उच्च हो, फिर भी जीवन में कभी-कभी मनुष्योचित साधारण-सी भूल उनसे हो सकती है। ऐसी भूले वे करते है, क्योंकि वे मनुष्य है, और फिर भी वे महापुरुष तो है ही। मेरे जैसे भक्त को तो उनकी ऐसी-ऐसी भूलें ही अधिक आकर्षित करती है। इस प्रकार के मानवीय स्खलन से उनकी

दिव्यता अधिक सुशोभित होती है और हम मनुष्यों को अधिक आशा प्रदान करती है।"

"पितामह! आप सत्य कह रहे हैं।" युधिष्ठिर बोले— "जिस प्रकार अन्धकार में लोग अनेक प्रकार की झूठी-सच्ची भूतों की कल्पनाएं कर लेते हैं, उसी प्रकार जिसके विषय में लोग कुछ जानते नहीं अथवा जान नहीं सकते, उसके संबंध में वे अनेक कुतर्क किया करते है। श्रीकृष्ण के साथ यही बात हुई है। हमारे इतने निकट होने पर भी हम अनेक बार उन्हे साधारण मनुष्य समझ बैठते है, तो फिर अन्य लोगों की तो बात ही क्या है?"

"बेटा।" भीष्म ने कहा—"संसार के सभी महापुरुषों के भाग्य में यही बात लिखी होती है। वे जबतक जीवित रहते हैं तबतक जगत् उन्हे पहचान नहीं सकता और उनके चले जाने के पश्चात् हाथ मलता है। श्रीकृष्ण के साथ भी ऐसा ही होगा। ऐसे पुरुषों से कुछ दूर रहा जाय तो कदाचित् उन्हे पहचानना सहज हो। उनके आस-पास चिपटे हुए लोगों को तो मरा हुआ ही समझो। हमारे समान साधारण मनुष्यों को ऐसे विचार आने लगते है कि 'हमारे पैरों की तरह ही उनके पैर है, हमारे समान ही वे खाते-पीते और घूमते-फिरते है, फिर वे महापुरुष कैसे?' और परिणाम-स्वरूप हम उन्हे पहचान नहीं सकते; परन्तु यह तो बड़ी लम्बी बाते हो गई।"

"पितामह! बडा अच्छा हुआ। आज आपने मेरा थोड़ा-बहुत अज्ञान दूर कर दिया। आप पर मैंने बडा श्रम डाला है, इसके लिए क्षमा करेगे। अब मुझे आज्ञा दीजिये।"

"बेटा युधिष्ठिर!" भीष्म ने युधिष्ठिर की ओर देखकर कहा—"मेरा श्रम तो उलटे दूर होगया है। श्रीकृष्ण जैसे पुण्य-पुरुष को स्मरण करके तो जीवन-भर का श्रम दूर हो जाता है। फिर

आज जब मै जीवन के किनारे बैठा हुआ हूँ तब तो उन्हे स्मरण करके धन्य ही हो गया हू। बेटा! अभी मेरे शरीर को गिरने में थोड़ा समय लगेगा। इस बीच यदि तुम फिर आओ तो श्रीकृष्ण को साथ लेते आना। मेरी ओर से उनसे यह विनती कर देना।"

"जो आज्ञा। आप अब अपने ऊपर अधिक श्रम न डालें।"

इतना कहकर युधिष्ठिर रथ में बैठे और हस्तिनापुर की ओर चल दिये।

: ६ :

अवतार-कृत्य

"पितामह!" शर-शैया के पास बैठे हुए श्रीकृष्ण बोले। "अब यह देखना रहा है कि महाराज युधिष्ठिर अपने धर्म-राज्य का स्थापन किस प्रकार करते हैं।"

"महाराज!" भीष्म ने कहा। "केवल आपको यह देखने की आवश्यकता नहीं। कुरुक्षेत्र के मैदान मे अर्जुन के रथ की बाग-डोर थामकर बैठे हुए आपको जगत् ने देखा है। इसके बाद के नये युग-निर्माण मे भी आप ही पाडवों के पथ-प्रदर्शक होंगे। जगत् के ब्राह्मणों को ऐसी ही आशा है।"

"भीष्म!" श्रीकृष्ण बोले। "बड़े भव्य महल को तोड़ डालना सहज है, परन्तु उसकी जगह छोटी-सी झोंपडी खड़ी करना सहज नहीं है। हिमालय के सघन बनों को एक अगारे से भस्म कर डालना सहज है, परन्तु एक छोटे से वृक्ष को पानी सींचकर पनपाना सहज नहीं है। देश के बड़े-बड़े प्रदेशों को एक बार में उजाड़ देना सहज है, परन्तु एक छोटा-सा टीला नया बसाना सहज नहीं है। पितामह! सारे मानव-समाज को कुचल-

कर बैठे हुए साम्राज्यों को उखाड डालना सहज है, परन्तु उसके स्थान पर छोटा-सा धर्मराज्य स्थापित करना सहज नहीं है ।"

"आज पाडवों को यह कठिनाई दिखलाई दे रही होगी ।" भीष्म ने कहा ।

"अवश्य ।" श्रीकृष्ण बोले । "उस दिन अभिमानी राजाओं का गर्व चूर्ण करने मे गांडीव की टंकार और भीम की गदा दोनों समान थे, आज हजारों सनाथ क्षत्रियों को पालकर बड़ा करने मे वह गाडीव और गदा निरर्थक है । कौरवों को उनके अन्याय का भान कराने के लिए पांडवों की रक्तवर्ण ऑखों की आवश्यकता थी । आज हजारो अनाथ स्त्रियों के ऑसू पोंछने के लिए किसी कोमल हाथ की आवश्यकता है । पाचाली को अपने रोष की तृप्ति के लिए उस दिन अपनी चोटी दु:शासन के रुधिर में भिगोने की आवश्यकता हुई होगी, परन्तु आज ऐसी समाज-व्यवस्था खड़ी करनी होगी कि प्रतिदिन सारे आर्यावर्त्त की स्त्रियां अपनी चोटियॉ फूलों से गूॅथ सके । उस दिन आर्यावर्त्त के अनेक राजा-महाराजाओं ने अपनी-अपनी क्षत्रिय-जनता पांडवों के चरणोंमे सौप दी थी । आज नये राष्ट्र-निर्माण में अनेक राजा-महाराजाओं को अपनी ब्राह्मण-जनता का साथ देना पड़ेगा । पितामह ! धर्म-राज्य की स्थापना के ऐसे अनेक प्रश्न महाराज युधिष्ठिर के सामने प्रतिदिन उपस्थित होने लगे हैं और अजातशत्रु युधिष्ठिर उन्हे किस प्रकार सुलझाते हैं, यह सारा जगत् निर्निमेष दृष्टि से देख रहा है ।"

"तब तो युधिष्ठिर को महान् परीक्षा मे से निकलना पड़ेगा ।" भीष्म युधिष्ठिर की ओर घूमकर बोले ।

"नि:सन्देह ।" श्रीकृष्ण ने कहा । "कौरवों के सामने धर्म-युद्ध की पताका फहराने वाले युधिष्ठिर को, सारे लोक समूह को दिलाई हुई आशाऍ पूर्ण करनी होंगी । कौरवों को दुष्ट

कहने वाले पाडवों को अपनी साधुता सिद्ध करनी पड़ेगी। दुर्योधन को गर्विष्ठ कहने वाले युधिष्ठिर को विजय के क्षणों में अधिक नम्र बनना होगा। धृतराष्ट्र को प्रजा का अभिभावक हित-रक्षक कहने वाले पाडवों को प्रजा-हित का सच्चा रक्षक बनाना पड़ेगा। अपनी एक चोटी के लिए सारा महाभारत मचवानेवाली द्रौपदी को समस्त स्त्री समाज की चोटियों को सुरक्षित करने वाली राज्य-व्यवस्था उत्पन्न करवानी होगी।"

"युधिष्ठिर का मुकुट इनके लिए बड़ा भारी सिद्ध होगा।" भीष्म बोले।

"प्रत्येक राजा को मुकुट भारी पड़ता है, परन्तु युधिष्ठिर को विशेष पडेगा, कारण कि इन सारी आशाओं को इन्होंने ही पनपाया है। परन्तु पितामह ! फूल के समान हलका मुकुट पहनने मे क्या आनन्द है ? वैसे हलके मुकुट हवा का एक हल्का-सा झोंका आते ही उड़ जाते है और भूमि पर गिरकर टूट जाते हैं।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"महाराज श्रीकृष्ण !" भीष्म धीरे-से बोले। "आप ठीक कह रहे हैं। युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं। अत अपने भार को वहन करने में जरा भी नहीं घबरायंगे। परन्तु महाराज ! आपने नवयुग के निर्माण की बात छेड़ी है। इसलिए मेरा भी कुछ कहने को मन कर रहा है। आज आर्यावर्त्त कुरुक्षेत्र के घोर सग्राम के परिणाम भोग रहा है। अठारह अक्षौहिणी सेना कुरुक्षेत्र में सदा के लिए सोगई। उसके पीछे कितनी स्त्रियाँ विधवा हुईं, कितने बालक अनाथ बने, महाजनों के व्यापार को कितना धक्का पहुँचा, यह सब जब महाराज युधिष्ठिर अपनी दृष्टि से देखेंगे तब उन्हें ध्यान आयगा कि छोटे-से मुकुट के लिए कितना मूल्य देना पड़ा है। परन्तु मैं इन सबके अतिरिक्त एक और गहरी बात आपसे कहूँगा। इस युद्ध ने जो वातावरण पैदा किया, वाता-

वरण में 'मारो-काटो' की ध्वनियोंकी जो गति दी, वैर और 'बदले' की जो हृदय घबराने वाली भावना फैलाई, उसका क्या बनेगा? युद्ध के मध्य निर्मित हुआ युद्ध का मानस क्या युद्ध के समाप्त होने से नष्ट हो जायगा? महाराज! आप महापुरुष हैं, इसलिए आप अधिक समझ सकते हैं, परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य सब विघ्नो की अपेक्षा, युद्ध का यह मानस ही धर्म-राज को अधिक कष्ट देगा और नवयुग के निर्माण मे बाधक बनेगा।"

श्रीकृष्ण ने भीष्म की बात सुनते ही आंखे बन्द कर ली थीं। उन्हे धीरे-से खोलते हुए वे बोले—"पितामह! आपने जगत् के रोग को भली-भांति परख लिया है। धर्म-युद्ध की पताका के नीचे लड़ने वाले सब धर्म-बुद्धि से ही लड़ते हो, ऐसा नहीं होता। समाज के जीवन में जब युद्ध-जैसे भयंकर झंझावात आते हैं तब महा संहार हो जाता है और सृष्टि फिर नया क्रम आरम्भ करती है। इस युद्ध के लिए भी ऐसा ही समझो। नवयुग किस प्रकार निर्मित होता है, यह तो ईश्वर के अधीन है, परन्तु जिसे ऋषि-मुनि कलियुग का नाम देते हैं, उसे समाप्त हुआ समझें। आज नहीं तो कल यह युग अपना प्रभाव अवश्य दिखलायगा। आपके कल्पित युद्ध के मानस का विचार करने पर ज्ञात होता है कि वह युद्ध का मानस आज अभी हवा मे घूम रहा है। बाह्य युद्ध आज समाप्त हो गया है, इसलिए वह नया क्षेत्र खोज रहा है। आजतक वह शस्त्रास्त्रों की लड़ाई मे रुका हुआ था, परन्तु अब यदि उस युद्ध के मानस का उपयोग, समाज के भीतरी कलह शान्त करने मे, लोगों की आर्थिक दशा सुधारने में, राज्य के शासन कार्यों में और इसी प्रकार की अनेक प्रवृत्तियों में कर लिया जाय तो नये युग के निर्माण मे युधिष्ठिर को बड़ी अनुकूलता प्राप्त हो जाय। परन्तु मुझे भय है कि ऐसा नहीं

होगा। संसार के आजतक के इतिहास पुराण पढ़कर देखे जायं, तो मालूम होगा कि जिन्होंने शत्रुओं को नष्ट करके विजय प्राप्त की है, वे पीछे से आपस मे लडे हैं और कभी-कभी समाप्त भी हो गए हैं।"

"महाराज श्रीकृष्ण!" भीष्म शान्ति-पूर्वक बोलने लगे— "युद्ध समाप्त होने पर युद्ध के मानस को हटा देना और जब फिर युद्ध आरम्भ हो तब धर्म-बुद्धि से युद्ध के मानस को धारण करना, यह आप-जैसे महापुरुष के लिए ही संभव है। साधारण लोग तो 'धर्मयुद्ध' की घोषणा होते ही उसमें मिल जाते हैं और युद्ध की समाप्ति पर भी वेग कम नहीं कर सकते, ऐसा इतिहास का अनुभव है। इसी कारण अनेक बार ऐसे युद्धों में रुधिर की जितनी नदिया बहती हैं, उनकी अपेक्षा युद्ध के अंत मे कहीं अधिक बहती दृष्टि-गोचर होती है। महाराज! इसके विषय मे कुछ सोचा है?"

"इसके विषय में मुझे थोड़े ही सोचना है।" श्रीकृष्ण ने हसते हुए कहा।

"यह कैसे हो सकता है?" भीष्म ने आश्चर्य से कहा— "आपको नहीं तो क्या इस शैया पर पड़े-पडे मुझे सोचना है? आप ही को यह विचार करना है। धर्म राज्य स्थापित करने का मनोरथ और कर्त्तव्य युधिष्ठिर का है, परन्तु यदि यह धर्म-राज्य स्थापित न हुआ तो इसका सारा दोष लोग आपके सिर मढ़ेंगे। मैं आपके जीवन के रहस्य से अच्छी तरह परिचित हू। आपने जन्म से लेकर आजतक अनेक अत्याचारियों को समाप्त कर दिया है। अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि आपने इसी के लिए जन्म धारण किया है। परन्तु उन अत्याचारियों को हराकर उनकी जगह कौन लेगा, यह निश्चित करने की आवश्यकता नहीं है? अत्याचारियों का हटना तो

आधा कार्य हुआ, शेष आधा और न हुआ तो प्रथम आध का क्या अर्थ ? दुर्योधन के अत्याचार का स्थान यदि किसी और का अत्याचार लेने वाला हो तो इससे दुर्योधन का अत्याचार कहीं अधिक अच्छा नहीं था ? यदि अत्याचार स्वयं नष्ट न हो तो अत्याचारियों के बदलते रहने से समाज का कोई लाभ नहीं। बल्कि पुराने अत्याचारी से लोग अभ्यस्त हो चुके होते हैं, इसलिए कुछ कम ही कष्ट प्रतीत होता है।"

"पितामह !" श्रीकृष्ण बोले—"आप तो मुझे बड़े गहरे पानी में ले गए हैं, परन्तु आज मैं इतना ही कह सकता हूं कि राज-मद से छके हुए कौरव मिट गये और पांडव हस्तिनापुर के स्वामी बन गये। इस युद्ध में विजयी होने से पहले पाडव जिस तपश्चर्या में से गुजरे हैं, उससे मैं कह सकता हूँ कि उन्हे राज-मद नहीं चढेगा। वैसे तो आज अपने कुल मे भी मैं इस युद्ध मानस को देख रहा हू। द्वारका छोडे मुझे बड़ा समय हुआ, परन्तु युद्ध से लौटे हुए सात्यकि, कृतवर्मा आदि युद्ध का मानस अपने साथ ही लेते गये हैं। इसके अतिरिक्त जिन लोगों के बलराम जैसे अग्रसर मदिरा पीते हों, उन लोगो में इस युद्ध के मानस को फूट निकलते कितनी देर लगती है ? ऐसे हिंसात्मक युद्धों मे ये दोष अनिवार्य हैं और जबतक ईश्वर हमे दूसरे प्रकार के युद्ध के मार्ग पर लगावे, तबतक इन दोषों को भी हमें आवश्यक रूप मे स्वीकार करना ही पडेगा।"

"महाराज श्रीकृष्ण !" भीष्म बोले—"जब आपने सती गांधारी का शाप सहर्ष स्वीकार किया तब मुझे ऐसा जान पड़ा था कि आपने यह सब देख लिया है।"

"पितामह !" श्रीकृष्ण ने कहा—"यह सब मेरे ध्यान से बाहर नहीं है। जिस प्रकार कुरुकुल का विनाश आज हम सबने देखा है, उसी प्रकार अपने यादव-कुल का संहार भी मैं देख

रहा हू। मेरे सात्यकि, कृतवर्मा आदि जब इस युद्ध से द्वारका गये हैं तब वे युद्ध का मानस लेकर गए है। ऐसे मानस के सुलग उठने के लिए जिस तैयारी की आवश्यकता है, वह सारी आज यादवों मे विद्यमान है। यादवों मे अन्दर-ही-अन्दर फूट है। यादव-युवक जगत् के ब्राह्मणों का अपमान करने मे अपने यौवन को धन्य मानते है। यादवों मे मदिरा के व्यसन ने घर कर लिया है। यादवों ने पश्चिमी समुद्र-तट पर विदेशी आक्रमणों को रोकने के लिए जो शिविर बनाया है, उसका उन्हे बड़ा गर्व है। यह सारी सामग्री तैयार है। केवल उसमे जलती हुई दियासलाई डालकर भडकाने की देर है। और पितामह! मुझे भास हो रहा है कि हमारा विनाश भी आ पहुँचा है।"

"महाराज श्रीकृष्ण!" खिन्न स्वर मे भीष्म बोले—"यदि भविष्य में ऐसा ही होना है तो यह सब किस लिए? आपने जन्म से लेकर आज तक अनेक अत्याचारियों के गर्व गलित किये और जरासन्ध तथा शिशुपाल के समान मदान्ध राजाओं के धड मस्तक से अलग कर दिये। भीष्म और द्रोण जैसे महारथी युद्ध में कुचले गये। दुर्योधन और कर्ण जैसे कुरुक्षेत्र में सो गए। यह सब आपके कारण हुआ। पृथ्वी का भार उतारने के लिए आपने यह सब किया। फिर भी यदि अभी आपके लिए यादवों का विनाश देखना शेष है तो यह सब किसलिए?"

"भीष्म!" श्रीकृष्ण ने शान्ति-पूर्वक कहा—"आप भूल रहे है। जन्म लेकर मैंने स्वयं ऐसे अभिमानियों का गर्व चूर्ण करने मे जीवन बिताया है, यह सच है। इसका मुझे जन्म से ही व्यसन होगया है। दलित लोगों को जब ऐसे अत्याचारियों के हाथ से छुड़ाता हूं तब मेरे हृदय मे दीपक जल उठते हैं। अब यदि काल की इच्छानुसार मेरे यादव भी ऐसे गर्विष्ठ हो जायं और उनका गर्व उतरने मे उनका विनाश हो जाय तो भी मैं क्या कर

सकता हू ? मै समझता हूँ कि हमारे आर्यावर्त्त की प्रजा ने बहुत समय तक यह अभिमान सहन कर लिया है। आज अब काल अपना विराट् स्वरूप लेकर उठा है और वह किसी भी व्यक्ति या समूह के इस अभिमान को टिकने नहीं देगा। यादव यदि इस बात को न समझे और अन्दर-ही-अन्दर लड़ मरे तो मैं क्या कर सकता हूँ ? यादवों मे जब आपस मे यह गृह-कलह छिड़ेगा तब मै तो काल भगवान् को स्मरण करूँगा और अपने जीवन को समेटकर चलता बनूँगा। स्वय मेरे यादव ही जब इस प्रकार करेंगे तब मेरे जीने का प्रयोजन भी नहीं रहेगा।

"महाराज श्रीकृष्ण!" भीष्म धीरे से बोले—"मै तो वैसे ही कह रहा हू।"

"आप वैसे ही कह रहे होंगे, परन्तु मै ठीक कह रहा हूँ।" श्रीकृष्ण ने कहा—"उस काल के पूर्व-चिन्ह मै देख रहा हूँ।"

"तो फिर महाराज!" भीष्म बोले—"आपने जो कौरवों का संहार कराया और धर्मराज को राज्य दिलाने का कष्ट उठाया, वह व्यर्थ हुआ ?"

"व्यर्थ क्यों हुआ ?" श्रीकृष्ण ने कहा—"मैंने जो कुछ किया है, वह मेरे लिए तो व्यर्थ हो ही नही सकता। भारतवर्ष के दलित-जनों की सेवा करने के लिए मैंने यह मार्ग ग्रहण किया, इससे मुझे सतोष है। अब भी जब तक जिऊँगा तब तक अभिमानियो का अभिमान दूर करने का प्रयत्न करता ही रहूँगा। वैसे मैंने यह कब समझा है कि दुनिया से अत्याचार और गर्व एकदम अदृश्य हो जायँगे ? आज क्षत्रिय गर्वोन्मत्त होकर लोगों को पीडित कर रहे थे तो उनका गर्व गलित करने का काम मैंने हाथ मे लिया, कल समाज का कोई दूसरा वर्ग गर्वोन्मत्त हो उठेगा तो कोई अन्य पुरुष मैदान मे आयगा। मैं अपने जीवन को अच्छी तरह बिता दूँ, इतना ही क्या मेरे लिए पर्याप्त नहीं है ?

वैसे तो बेचारा मनुष्य यह समझ ही कैसे सकता है कि ईश्वर कब संसार को हरी-भरी वाटिका और कब ऊजड़ अरण्य बनायगा, कब पहाड़ी प्रदेश के समान और कब लहराते हुए सागर के समान बनायगा।"

"महाराज !" भीष्म ने हाथ जोड़कर कहा। "आप मुझे पागल समझें तो भी कोई हानि नहीं, परन्तु मैं तो आपको ईश्वर का अवतार ही मानता हूँ। भारत के ऋषि-मुनियों ने तो आपको कभी से पहचान लिया है। आपने और अर्जुन ने भारतवर्ष के गर्विष्ठ क्षत्रियों को साफ करके नवयुग के लिए भूमि तैयार की है। अब उस भूमि में क्या उगेगा और क्या नहीं उगेगा, यह देखना आपका काम नहीं है। श्रीकृष्ण ! जिस युग को आपने साफ किया है, उसका एक साधारण मनुष्य मैं, आपके चरणों में मस्तक रखता हूँ। जीवन के किनारे बैठा हुआ मैं आज आपको अंतिम प्रणाम करता हूँ। आप जाइये और आपका जो अवतार-कृत्य बाकी रह गया हो, उसे पूरा करिये। काल को तो अपना काम पूरा करते ही रहना है। प्रभो ! भीष्म का आपको अंतिम प्रणाम !"

"पितामह !" श्रीकृष्ण खड़े होते हुए बोले। "आपने मुझे बहुत बड़ा बना दिया। मुझे जो सूझ पड़ा, वही मैंने आजतक किया। करने की योग्यता ईश्वर ने मुझे अधिक दी, इसके लिए उसका कृतज्ञ हूँ, अन्यथा कृष्ण का यह शरीर और किस काम आने वाला था ? लोक-सेवा का ऐसा अवसर मुझे मिला, इसके लिए मैं अवश्य गर्वित हूँ। पितामह ! आपको आज बड़ा कष्ट हुआ। आपके शरीर में जबतक प्राण हैं तबतक मेरे जैसे लोग किसी-न-किसी आशा से आपको कष्ट देते ही रहेंगे। पुराण-युग के जितने कल्याणकारी तत्त्व आपसे प्राप्त हो सकते हैं, उतने अन्य किससे हो सकते हैं ? इसीलिए नवयुग के विधाता अर्जुन

ने आपको शर-शैया पर सुला दिया है। उत्तरायण सूर्य के न उगने तक आप शर-शैया पर पड़े रहे, इसी मे नवयुग का कल्याण है। अब मैं आज्ञा लेता हूं।" यों कहकर श्रीकृष्ण रथ में बैठ गए।

"प्रभो! भीष्म का अन्तिम प्रणाम।" भीष्म शर-शैया पर से जरा ऊँचे उठकर रथ को देखते रहे। रथ धीरे-धीरे अदृश्य होगया और पृथ्वी पर अन्धकार की छाया फैल गई।

: १० :

परीक्षित-जन्म

"भाई विदुर!" एक विशाल सिंहासन पर पड़े हुए धृतराष्ट्र बोले।" आज अब मेरी बाहे टूट गई हैं। इसलिए तुम जो कहो, उसे करने के लिए यह धृतराष्ट्र तैयार है, परन्तु तुम मेरे हृदय की बात सुनना चाहो तो मैं कहूँगा कि श्रीकृष्ण के जैसा ठग और कोई नहीं है।"

"भैया! आप भूलते हैं।" विदुर ने कहा।

"मैं धृतराष्ट्र भूल सकता हूँ! दुर्योधन का पिता भूल सकता है! तुम लोगों ने कृष्ण को अभी पहचाना नही है। विदुर! मैं सच कहता हू। मेरे पुत्रों को मरवाने वाला और उससे प्रसन्न होने वाला यदि कोई व्यक्ति है तो वह कृष्ण है। तुम विचार तो करो। यदि ऐसा न होता तो सती गांधारी उसे शाप देती! जिसने जीवन-भर असत्य का उच्चारण नहीं किया उसी गांधारी ने जब शाप दिया तभी मै समझ गया था कि वह बड़ा धूर्त्त है। आज उसके अच्छे दिन आये हुए हैं, इसलिए मुझे कुछ भी नहीं कहना है।"

'भैया!" विदुर ने कहा। "श्रीकृष्ण जैसे परम पुरुष के

साथ आप अन्याय कर रहे हैं। उनका नाम लेते ही भव-भव के पाप नाश होते हैं, ऐसा उनका निर्मल जीवन है।..."

"निर्मल जीवन!" धृतराष्ट्र बीच में ही बोल उठे। "ऐसी निर्मलता उसे ही मिली रहे!"

"उनकी त्याग-वृत्ति", विदुर ने आगे कहा, "उनकी सत्य-प्रियता, उनकी निर्भयता, ये सब असाधारण है। इसीलिए व्यास भगवान् जैसे जगत् के ब्राह्मण भी उनका महापुरुष के रूप में सम्मान करते है।"

"विदुर!" धृतराष्ट्र ने हाथ लम्बा करते हुए कहा। "तुम जैसे भक्तों के महापुरुष कह देने से ही वह महापुरुष होगया? अपनी दृष्टि से हम जिसे अनेक प्रपच करते हुए देखे, हजारों मनुष्यों के बोच जिसे असत्य और अधर्म का आचरण करते देखे, उसे महापुरुष कैसे मान ले? उसके काम तो देखो। मामा को मारने वाला कौन था, कृष्ण; मथुरा छोड़कर भागनेवाला कौन था, कृष्ण, रुक्मिणी को उठाकर भाग जाने वाला कौन था, कृष्ण, गोप-जनों के घर बिगाड़ने वाला कौन था, कृष्ण, युधिष्ठिर से झूठ बुलवाने वाला कौन था, कृष्ण, मेरे पुत्र का अधर्म से मरवाने वाला कौन था, कृष्ण। यह तुम्हारा कृष्ण है! कृष्ण यदि महापुरुष हो तो फिर दुनिया में धूर्त्त-लफंगा किसे कहा जाय, यही एक प्रश्न है?"

"भैया!" विदुर ने नि.श्वास छोड़कर कहा। "आपकी आँखों से श्रीकृष्ण ऐसे ही दिखाई पडेंगे। उन्हे देखने के लिए आपने ऐसी ही ऐनक लगाई हुई है। जब तक यह ऐनक नहीं उतरेगी तब तक वे आपको ऐसे ही दिखाई देंगे।"

"जैसा है, वैसा ही तो दीखेगा न?" धृतराष्ट्र बोले। "हॉ, पर उसकी बुद्धि तीव्र है। सबको उलटा-सीधा समझाकर और अनेक चालें चलकर अपनी सोची हुई बात पूरी कर लेता है। मेरा दुर्योधन उसके जाल मे नहीं फँसा, इसलिए उसे मरवाकर

उसने चैन ली। कृष्ण बडा ही दुष्ट है। एक बार कोई उसकी दाढ़ में फँसा कि फिर निकलना कठिन है। यदि ये सब बातें किसी मनुष्य को महापुरुष बना सकती है तो ऐसे महापुरुष को दूर से ही नमस्कार है! ऐसे लोगों ने ही दुनिया को ठग-ठगकर चौपट कर दिया और लोग इतने मूर्ख हैं कि ऐसे ढोंगी को ही पूजते हैं। विदुर! मैं तुम्हारी बात नहीं मानूंगा।"

"जैसी आपकी इच्छा!" विदुर ने कहा।

"हाँ, मैं भी माना करता था कि कदाचित् कृष्ण जो कहता है, वह धर्म होगा। मुझे उससे भय भी लगता था, परन्तु वह धूर्त मेरे भय से लाभ उठाकर मेरे दुर्योधन को ही धमकाकर काम निकालने चला! तुम सबों ने कृष्ण के हाथ का अस्त्र बनकर मेरे कुल का नाश कर डाला। ईश्वर तुम्हे इसका बदला दिये बिना नहीं रहेगा और मै यह भी देखूँगा कि मुझे और गांधारी को ऐसी दशा में लाने वाला कृष्ण कितने सुख से मरता है।"

"भैया!" विदुर ने शान्ति-पूर्वक कहा। "इन सब पुरानी बातों को छोड़िये। अब हम आज की नई बात को ले!"

"कौन-सी?" धृतराष्ट्र ने पूछा।

"उत्तरा के गर्भ की।" विदुर बोले। यह तो आप जानते हैं कि पाडव दिग्विजय के लिए हिमालय की ओर गये हैं। आज उत्तरा को प्रसव हुआ, परन्तु मरा हुआ पुत्र जन्मा।"

"मरा हुआ तो होना ही था! अश्वत्थामा ब्राह्मण-पुत्र था। उसने जब उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र छोड दिया तो और हो भी क्या सकता था? कहो न अपने कृष्ण से कि उस पुत्र को जीवित करे? धृतराष्ट्र और गांधारी की संतति का उच्छेद कर दिया तो क्या कुन्ती और पाडु की सतति बच रहेगी?"

"परन्तु भैया!" विदुर ने कहा—"उस मरे हुए पुत्र को श्रीकृष्ण ने जीवित कर दिया।"

"है ?" धृतराष्ट्र आंखें फाड़कर बोले—"वह जीवित नहीं हो सकता। किसी ने तुम्हे झूठे समाचार दिये है।"

"किसी ने नहीं दिये, मेरी अपनी आखों देखी बात है।" विदुर ने कहा।

"क्या सचमुच वह जीवित हो गया ? कदाचित् क्षण-दो-क्षण के लिए झूठी सांस चलती दिखा दी होगी !" धृतराष्ट्र ने शका की।

'नहीं भैया ! ऐसी बात नहीं है। मैं उसे श्वास लेते और रुदन करते देखकर आया हूँ।" विदुर ने कहा।

"तो यह होगी उस कृष्ण की ही कोई करतूत!" धृतरा ने अपनी राय दी।

"यही बात है।" विदुर ने कहा। "परन्तु जिसे आप करतूत कहते है, उसे ही मैं उनकी ईश्वरीय शक्ति कहता हू।"

"ठीक, ठीक। और कहो, फिर आगे क्या हुआ ?" धृतराष्ट्र ने पूछा।

"मरा हुआ पुत्र उत्पन्न हुआ, इससे सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती और उत्तरा ने रोना-धोना आरम्भ कर दिया। उनका विलाप सुनकर श्रीकृष्ण अन्दर गये और मरे हुए बालक को अपनी गोद मे सुलाया।"

"फिर ?"

"फिर पानी से आचमन करके श्रीकृष्ण बोले "

"क्या बोले ? बच्चे, जीवित हो जा। यही न ?"धृतराष्ट्र ने आतुरता से कहा।

"वे जो कुछ बोले—वह जगत् के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों मे लिखा जायगा। महाराज धृतराष्ट्र ! आप अपनी इच्छा के अनुसार मानने का अधिकार रखते हैं। आप पुत्र-शोक से विह्वल हैं, इसलिए ऐसे महापुरुष को यथार्थ रूप में पहचानना

नहीं चाहते, परन्तु यदि तटस्थ होकर सुनें तो आपको पता चले।"

"परन्तु वे क्या बोले–यह तो पहले कहो ?" धृतराष्ट्र ने धैर्य खोकर पूछा।

"पुत्र को गोद मे लेकर उन्होंने कहा–'मैंने आज तक हसी में भी असत्य-भाषण नहीं किया और युद्ध से विमुख नहीं हुआ। मेरे इस पुण्य से यह बालक जीवित हो जाय। मेरी धर्म-प्रियता और धर्म के अधिष्ठाता ब्राह्मणों के प्रति रखे हुए पूज्य भाव के कारण अभिमन्यु का पुत्र जीवित हो जाय। मैंने विजय मे भी दूसरों का विरोध नहीं किया, इस बात को लेकर इस बालक के प्राण लौट आयं। कस और केशी का मैंने धर्म से नाश किया हो तो यह बालक फिर से सचेतन हो।" श्रीकृष्ण इतना बोल भी न पाये थे कि पुत्र के शरीर मे चेतना आई और वह रोने लगा।"

"तब तो श्रीकृष्ण ने बड़ा ही जादू किया!" धृतराष्ट्र ने कहा।

"भैया! आप इसे जादू कहेगे ? श्रीकृष्ण ने इन वचनो से सारे संसार के न्यायालय में अपनी साधुता सिद्ध की है और ईश्वर ने उस पुत्र को जीवित करके उस साधुता पर मुहर लगा दी है।" विदुर कहते गये। "उन्होंने यदि यत्र-मंत्र से पुत्र को जीवित करने का प्रयत्न किया होता तो मैं भी विचार करता; परन्तु यह तो सत्य की, निर्वैर की, निर्भयता की और भूत-दया की जीवन-भर उपासना करने वाले एक समर्थ प्रतिभाशाली पुरुष की प्रार्थना थी। ईश्वर ने उस प्रार्थना को स्वीकार करके श्रीकृष्ण को महापुरुष के रूप में स्वीकार किया है।"

"विदुर! सत्य कहूं ?" धृतराष्ट्र बोले। "वह पुत्र मरा हुआ नहीं होगा, परन्तु ब्रह्मरन्ध्र मे उसके प्राण रुक गये होंगे। इसी से सबको मरा हुआ प्रतीत हुआ होगा। श्रीकृष्ण ने उसे गोद मे सुलाकर माथे मे कुछ किया होगा, इससे वह जीवित होगया।

इसके लिए इतना बड़ा आडम्बर न किया होता तो भी काम चल सकता था, परन्तु आडम्बर न करे तो तुम जैसे लोग उसके पैरों मे किस प्रकार लोटें ?

"भैया !" विदुर ऊबकर बोल रहे हों, इस प्रकार कहने लगे। 'मैं आपसे हार गया। जिस-जिस बात को मैं श्रीकृष्ण के जीवन का रहस्य मानता हू, उसे ही आप उनकी धूर्त्तता का चिन्ह रूप समझते हैं।"

"है भी यही बात।" धृतराष्ट्र बोले—"जब तुम विशेष रूप से उसकी बात करने आये हो तब मुझे अपने विचार तुम्हे स्पष्ट ही बताने चाहिएं। परन्तु यह बात किसी से न कहना। अभी मुझे युधिष्ठिर के साथ दिन बिताने हैं। वैसे कृष्ण हैं जबर्दस्त, इसमें कोई सन्देह नहीं। उसके जैसा अन्य कोई नहीं।"

"भैया !" विदुर ने कहा—"अब मैं आज्ञा लेता हूं।"

"देखना विदुर ! बुरा न मानना।" धृतराष्ट्र बोले—"वह विशेष मनुष्य है, यह तो मुझे भी जान पडता है। सच पूछो तो मैं उसे समझ नहीं सकता। उसका सारा जीवन इतना विचित्र है। तुम्हारी बात मेरे गले नहीं उतरती। महापुरुषों के ऐसे काम होते हैं ? न उसमे दया है, न सत्य है, न शास्त्रों के प्रति पूज्य भाव है, न किसी से लज्जा है, न कोई दिव्य शक्ति है। जिधर देखो उधर काले कर्म ही दृष्टि पड़ते हैं। ऐसे पुरुष को कौन महापुरुष कहे ?"

"भैया ! मैं जा रहा हूं।" विदुर ने कहा।

"अच्छा भाई, जाओ।" धृतराष्ट्र ने विदा देते हुए कहा। "बुरा न मानना। यह तो हम दोनों की निजी बातें हैं। मेरे लिए बात करने को एक तुम्हीं तो हो। इसलिए जो मन में आया, कह दिया है। मुझे एक यही दु.ख है कि तुम सबों को उसने भ्रम में डाल दिया है।"

विदुर बड़े भाई से विदा होकर चल दिये और धृतराष्ट्र फिर लेट गये।

: ११ :

यादवस्थली

महाराज युधिष्ठिर का अश्वमेध-यज्ञ पूरा हुआ और श्रीकृष्ण द्वारिका लौट आए। आज तक जिस राज-मद को उतारने के लिए श्रीकृष्ण ने जीवन बिताया था और जिस राज-मद को भारतवर्ष से उखाड़ डालने के लिए कुरुक्षेत्र में 'महायुद्ध' आरम्भ हुआ था, वही राज-मद आज स्वयं यादवों के अन्दर आ घुसा। द्यूत और मदिरा का यादवों को व्यसन हो गया। महाराज वसुदेव ने मदिरा का निषेध किया, परन्तु यादव उस निषेध को पार कर गये। युवक यादव धर्म और समाज के अनेक बंधनों को तोड़ने लगे। तपश्चर्या या संयम उनकी समझ मे वैदिकों का व्यसन था।

एक बार अनेक यादव-कुमार मौज मे आ गए। द्वारिका की सीमा पर एक तपस्वी आये थे। कुमार उस तपस्वी के पास पहुँचे और उसके साथ अनुचित विनोद करने लगे। तपस्वी ने सब सह लिया।

थोड़ी देर के बाद कुमारों ने श्रीकृष्ण के पुत्र सांब को स्त्री का वेश धारण कराया और उसका बड़ा-सा पेट बनाकर उसे तपस्वी के पास लाये।

"महाराज!" एक युवक बोला—"यह स्त्री आपसे आशीर्वाद लेने आई है।"

तीसरे युवक ने कहा, "यदि आप सच्चे योगी है तो बताइये कि इस स्त्री के क्या उत्पन्न होगा?"

सांब भली-भांति वेश सजाकर खडा था। तपस्वी ने जरा ऊपर देखा और साब को नख से शिख तक निहारकर वह फिर अपनी दृष्टि नीचे करके भूमि खोदने लगा।

तुरन्त ही एक युवक बोल उठा—"महाराज! कुंडली में क्या आता है?"

महाराज चुप न रह सके। बोले, "कुंडली के हिसाब से तुम सबकी मृत्यु आती है।"

युवक ने धृष्टता से पूछा—"मृत्यु हमारी या तुम्हारी, यह बात तो पीछे होगी, परन्तु इस स्त्री के पेट से क्या जन्मेगा, यह तो पहले बताओ। कुछ ज्योतिष लगाना भी आता है या यों ही भगवे कपड़े पहन लिये है?"

तपस्वी कुछ क्रोध से बोला—'सचमुच जानना चाहते हो? तो लो सुनो। इस स्त्री के पेट से जो जन्मेगा, उससे तुम सबका विनाश होगा। गर्भ में वह कभी से परिपक्व हो चुका है। जाओ, अपने सब वृद्धों से कह दो कि तैयार रहे।"

ऋषि के शब्द सुनकर साब स्तब्ध रह गया। बाकी सब युवक खिलखिलाकर हँस पड़े और कहने लगे, "महाराज! यह स्त्री नहीं, साब है। आप ऐसी ही गप्पे हांका करते हैं न?"

तपस्वी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। और साब आदि यादव घर की ओर चल दिये।

❀ ❀ ❀

एक बार यादव ग्रहण के कारण समुद्र-स्नान के लिए प्रभास गए। द्वारका मे राजा वसुदेव ने प्रकट रूप मे मदिरा-निषेध कर दिया था। प्रभास मे यादवों ने उस निषेध को कुचल डाला।

एक यादव बोला—"मदिरा के लिए निषेध हुआ है, यह भूल गया?"

"निषेध द्वारका के लिए है, प्रभास मे पी जा सकती है।" दूसरे ने उत्तर दिया।

"ऐसे उत्सव के दिन मदिरा न पी तो फिर पीनी कब ?" तीसरा बोला—

"सच बात तो यह है कि ऐसे सरस पेय के लिए निषेध करने का वसुदेव को कोई अधिकार नहीं।" एक ने कहा।

"भाइयो !" बीच मे ही दूसरा बोला—"तुम्हे ऐसी उल्टी-सीधी बातें क्यों सूझती हैं ? चढाते जाओ न भले-मानस ! ऐसी चर्चाए तो छोटे बच्चे किया करते हैं।"

"परन्तु भाई !" फिर एक ने कहा। "हम इन श्रीकृष्ण और बलराम के देखते पिये, यह ठीक नहीं। चलो, जरा दूर जाकर पिये।"

"चल हट !" तुरन्त ही युवक बोल उठा—"हमें इस प्रकार का ढोंग नहीं आता। पियें भी, तो चोरी से क्यों पियें ? ऐसा ढोंग तुम्हीं करो। अन्दर कुछ और बाहर कुछ और, यह तुम्हें ही करना आता है। हम तो हैं सीधे आदमी।"

"परन्तु," पहले ने उत्तर दिया—"जो शोभा दे, वही करना चाहिए। रह नहीं सकते, इसलिए गुप्त रूप से पी लेते हैं, परन्तु इस प्रकार सबके देखते पीने मे लज्जा नहीं आयगी ? ऐसा हम कौन-सा पुण्य-कार्य कर रहे हैं कि अन्दर और बाहर और की बात कह रहे हो ? इतनी मर्यादा भी छोड़ दोगे तो फिर एकदम हाथ से निकल जाओगे। अब भी मान जाओ।"

"जाओ, जाओ !" उत्तर मिला—"अपने राम तो पियेंगे और अवश्य पियेंगे। बलराम और श्रीकृष्ण के देखते पियेंगे। उन्हे पता लगेगा तो वे महाराज वसुदेव से कहकर निषेध हटवा देंगे।"

"परन्तु जानता है ?" एक ने धीरे-से कहा—"बलराम स्वय

क्या करते हैं? जरा-सी उन्हें भी दे दो तो झगडा ही मिट जाय। इतनी लम्बी चर्चा करने की जरूरत ही क्या है?"

"फिर थोड़ी-सी श्रीकृष्ण को भी।" दूसरा बोला।

"वे कभी नहीं पीते।" पहले ने कहा।

"पीते नहीं, यह तो सभी जानते है। परन्तु देने मे क्या हानि है? पीलेंगे तो ठीक है, अन्यथा हम तो पीने के लिए है ही।" किसी ने समर्थन किया।

× × ×

सात्यकि और कृतवर्मा, दोनों यादव थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में सात्यकि पांडवों की ओर से लड़ा था और कृतवर्मा कौरवों की ओर से। जब अश्वत्थामा ने काल-रात्रि को पाचालों का शैया मे वध किया तब कृतवर्मा उसके साथ सम्मिलित था।

एक बार प्रभास मे यादव-वीर कुरुक्षेत्र की कड़वी-मीठी बाते स्मरण कर रहे थे। साब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न आदि श्रीकृष्ण के पुत्र भी उपस्थित थे। सात्यकि ने कहा—"कृतवर्मा! और तो सब ठीक है, परन्तु तेरे जैसे मनुष्य ने रात्रि को पाचालों के वध मे भाग लिया, यह मुझसे सहन नहीं होता।"

कृतवर्मा गरम होगया, "तो इसमे कौन-सा बडा पाप हो गया? कहता तो हूँ कि जो होगया, सो होगया।"

"फिर भी तुझे उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए।" सात्यकि बोला।

"प्रायश्चित्त तुझे करना चाहिए—भूमिश्रवा को मारा था, इसलिए।" कृतवर्मा ने कहा।

"कृतवर्मा, कृतवर्मा!" सात्यकि चिढ़ उठा। "तू अपनी मर्यादा की सीमा न लाँघ। तेरे जैसे अघोर कर्म आज तक किसी यादव ने नहीं किये और फिर भी मुझे कहने चला है! तुझे मेरी प्रतिष्ठा से ईर्ष्या होती है?"

"ईर्ष्या होने की क्या बात है ?" कृतवर्मा फिर झल्ला पड़ा। तुझे अभिमान हो गया है, इसीलिए ऐसी उखड़ी बातें कर रहा है। श्रीकृष्ण ने तुझे बहुत सिर पर चढा लिया लगता है।"

सांब ने शान्ति के साथ कहा—"दोनों शान्त हो जाओ। इन बातों मे कोई सार नहीं है। क्यों व्यर्थ झगड़ रहे हो ?"

"कृतवर्मा !" सात्यकि ने ललकारा—"मेरा पराक्रम और प्रतिष्ठा सहन न होती हो तो आ जा मैदान मे !"

प्रद्युम्न ने बीच में पडकर कहा—"पर तुम दोनों व्यर्थ लड़ रहे हो।"

"यह सात्यकि लडना चाहता है, इसलिए कोई-न-कोई बहाना खोज रहा है।" कृतवर्मा बोला।

"भाई, मैं लडना तो नहीं चाहता।" सात्यकि बोला। "परन्तु तू सारे यादव कुल को कलक लगा रहा है, इसलिए बोल रहा हू।"

चारुदेष्ण अपनी जगह से उठकर सात्यकि के निकट आया और बोला—"अब छोड़ो भी इस बात को !"

"छोडे कैसे ? सात्यकि को अपना पराक्रम जो दिखाना है !" कृतवर्मा ने सार निकाला। "सात्यकि ! यदि यह कुरुक्षेत्र होता तब तो तुम्हें अभी बता देता।"

सात्यकि एकदम खड़ा होगया। उसका हाथ तलवार पर पड़ा और वह कृतवर्मा की ओर दौड़ा। कृतवर्मा तो सुलग ही रहा था। देखते-देखते कोलाहल बढ़ गया और सूखे घास के ढेर मे चिनगारी पड़ने पर जिस तरह आग भड़क उठती है, उसी तरह सारे यादव भडक उठे। आपस मे युद्ध आरम्भ होगया। सारे यादव एक या दूसरे पक्ष में सम्मिलित हो गये। मार-काट मच गई। पहले यादव मूसल हाथ में लेकर लड़े और बाद मे जो कुछ भी हाथ मे आया वही शस्त्र बन गया। प्रभास के

किनारे पड़ी हुई रेत का यादवों ने शस्त्र रूपमें खुलकर उपयोग किया। यादवों के इस कलह की श्रीकृष्ण को भी खबर मिली। अनेक यादव उनको भी मारने दौड़े। श्रीकृष्ण के पुत्रों ने यथा-रीति इस युद्ध मे भाग लिया और लडते हुए मर गए।

इस महाकलह के परिणाम-स्वरूप सारे यादव मर गये, केवल श्रीकृष्ण और बलराम बाकी बचे। सागर के तट पर खड़े-खडे श्रीकृष्ण ने यह यादवस्थली देख ली—उसी तरह, जैसे कोई महासागर में तैरते हुए जहाज को एकाएक डूबते हुए देखता है, जैसे पर्वत के शिखर पर खड़ा हुआ आदमी नीचे के किसी जगल में दावानल लगते देखता है। सागर के तट पर सोये हुए समस्त यादवों के शवों पर एक दृष्टि डालकर श्रीकृष्ण द्वारका आये और सीधे वसुदेव के महल में गये। देवकी माता भी वहा उपस्थित थीं। दोनों के चरणों में श्रीकृष्ण ने मस्तक टेका, दोनों को महा-सहार के समाचार सुनाए और आज्ञा मांगी।

यादवों के समाचार सुनकर वसुदेव को बड़ा ही खेद हुआ और देवकी तो स्तब्ध ही हो गई।

"माताजी!" श्रीकृष्ण ने कहा। "मुझे आज्ञा दीजिये। अब मेरा समय भी आ पहुँचा है। बलराम से अपनी प्रतीक्षा करने के लिए कह आया हूँ।"

देवकी की आँखों से आँसू बह चले बोली, "बेटा! हमें इसी तरह छोड़ जाओगे?"

"माताजी!" श्रीकृष्ण बोले। "यह जीवन ही ऐसा है।"

"परन्तु कृष्ण!" वसुदेव ने कहा। "यादवों को यह क्या सूझा?"

श्रीकृष्ण ने शांति से उत्तर दिया, "पिताजी! यह काल का बल है, अन्यथा सात्यकि और कृतवर्मा दोनों समझदार और शक्तिशाली थे। यादव उन पर अभिमान कर सकते थे। वे दोनों लड़ पडे और सारे कुल का संहार होगया!"

"तुमने या बलराम ने उन्हे रोका भी नहीं ?" देवकी बोली।

"माताजी !" श्रीकृष्ण ने कहा। "काल किसी को तलवार से नहीं मारता वरन् मनुष्य की बुद्धि को ही पलट देता है। ऐसे समय पर समझदार लोगों की समझ भी छिप जाती है। संसार मे किस समय कौन-से बल काम कर रहे होते हैं, यह जानना बड़ा कठिन है। पिताजी ! जीवन-भर मदोन्मत्त राजा-महाराजाओं का विनाश करने पर भी आज जब वह मद यादवों में ही प्रविष्ट होगया तब मेरे हाथ नीचे गिर गये। जिस प्रकार कौरवों की हरी-भरी वाटिका कुरुक्षेत्र में छिन्न-भिन्न होगई, उसी प्रकार आज हमारी यादवों की वाटिका भी वीरान होगई। उसे देखकर ही मै आरहा हूँ। पिताजी ! अब तो समझदारी से प्रभु की गोद में सिर रखना और उसकी इच्छा के अधीन होकर रहना, यही एक मार्ग है। मेरे यादवों के इस नाश का साक्षी बनाने मे भी कोई ईश्वरीय संकेत होगा, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। आप मुझे आज्ञा दीजिये।"

"परन्तु," देवकी बोली। "इन सब स्त्रियो और बच्चों का क्या होगा ?"

"माताजी !" श्रीकृष्ण ने कहा। "मैं दारुक को अर्जुन के पास हस्तिनापुर भेज रहा हूँ। अर्जुन आकर इन स्त्रियों और बच्चों को ले जायगा।"

"और यह द्वारका ?" वसुदेव ने पूछा।

"द्वारका पर तो आप काल को मँडराया हुआ समझे।" श्रीकृष्ण बोले। "द्वारका जैसी अनेक राजधानियाँ सागर की गोदी में समा गई हैं। जगत् के किसी गूढ़ संकेत का अनुसरण करके काल-महासागर की लहरें कभी-कभी सारे मानव-सागर को निगल जाती हैं। कुछ वर्ष पहले ये लहरें कुरुक्षेत्र के मैदान पर फिर आई थीं और आज द्वारका पर फिरी हुई समझें।

पिताजी ! माताजी ! कृष्ण का अंतिम प्रणाम ! अब मैं और विलम्ब नहीं कर सकता।"

इतना कहकर फिर से एक बार माता-पिता के चरणों में सिर रखा और दोनों को रोते छोड़कर श्रीकृष्ण चल पड़े। द्वारका से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे पैर टिकाकर खड़े होगये। जरा नाम के किसी भील ने बाण मारा और वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

अभी, आज भी श्रीकृष्ण की समाधिवाला वह वृक्ष 'मोक्ष-पीपल' के नाम से पहचाना जाता है।

श्रीकृष्ण का जन्म कंस के कारावास में हुआ, बाल्यावस्था में उन्होंने अपने निर्दोष खेलों और मधुर बाँसुरी से गोपियों को पागल बना दिया; युवावस्था में पृथ्वी को पीड़ित कर रहे कंस और केशी जैसे अनेकों का वध किया, मथुरा छोड़ने के बाद द्वारका और खाडवप्रस्थ जैसी कई जगहों पर नई बस्तिया बसाईं, शिशुपाल, जरासन्ध, रुक्मी जैसे अनेक अत्याचारियों से राजा-प्रजा दोनों को मुक्ति दिलाई; जरा बड़ी आयु में घोर आंगिरस नामक गुरु के पास रहकर योग और तत्त्व-ज्ञान का अभ्यास किया, आगे चलकर अर्जुन के रथ की बागडोर थामकर पाडवों को संकट से पार उतारा, सुदामा जैसे बाल-मित्र की दरिद्रता दूर की और अत मे, कोई जिसे समझ नहीं सकता, ऐसे किसी संकेत का अनुसरण करके, जिस प्रकार कुशल बाजीगर अपनी बाजी समेट लेता है, उस प्रकार फैली हुई बाजी समेटकर इस संसार से कूच कर गये।

आज पाँच हजार वर्षों को पार करके श्रीकृष्ण का जीवन हमें प्रेरणा दे रहा है और हमारे सम्मुख ईश्वरावतार की अनेकानेक कल्पनाएँ खड़ी कर रहा है।